ISSN 2250-2769

इतिहास दिवाकर

पीयर रिव्यूड मूल्यांकित अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १५ अंक १-३ चैत्र-आश्विन मास कलियुगाब्द ५१२४ अप्रैल-अक्तूबर २०२२

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का चिन्तन राष्ट्रवाद की भारतीय अवधारणा के अनुरूप था — डॉ. सुरेन्द्र डी. सोनी — ५
- गांधी के कांग्रेस का सुभाष से असहयोग और उनका महाभिनिष्क्रमण — डॉ. धर्मचन्द चौबे — १६
- सुभाष चन्द्र बोस : मानवता एवं राष्ट्र सेवा — डॉ. शिव भारद्वाज — २७
- सुभाष चन्द्र बोस एवं एमिली शेंक्ल के मध्य पत्र व्यवहार — डॉ. रजनी मीणा — ३७
- Raising Funds and Azad Hind Bank — Kapil kumar — ४६
- Thoughts of Subhash Chandra Bose and Hindu concept of Socialism : An Appraisal — Lucky Sharma, Mukesh Sahay — ६२
- Netaji's contribution and views about India's freedom — Dr. Hari Mohan Sharma, Hari K. Sharma — ७३
- The Crusader of Indian freedom : Netaji Subhash Chandra Bose — Dr. Sumer Khajuria — ८०
- A study of the role played by Netaji Subhash Chandra Bose in Azad Hind Fauj — Dr. Ankush Bhardwaj, Shivam Sharma — ९०
- Netaji's Idea of Bharata and Bharatiya Nationalism — Deepesh Chaturvedi — १०३

वैदिक गणित

- Application of Vedic Mathematics in Algebra — Pankaj Kumar, Lavlesh Kumar — ११३

गांव का इतिहास

- सिरमौर का ऐतिहासिक गांव : झकान्डो — बी.आर. ठाकुर — १२६

पुस्तक समीक्षा

- इतिहास लेखन में लोकगाथाओं का योगदान — डॉ. शिव भारद्वाज — १३८
- विभाजनकालीन भारत के साक्षी — निरुपमा कुमारी — १४०

ध्येय पथ

- गतिविधियां — ऋषि भारद्वाज — १४२
- सम्पादक के नाम पत्र — १५८

इतिहास दिवाकर

पीयर रिव्यूड मूल्यांकित अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १५	अंक १-३	चैत्र-आश्विन मास	कलियुगाब्द ५१२४	अप्रैल-अक्तूबर २०२२

सम्पादक

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

सहायक आचार्य इतिहास विभाग

सरदार पटेल विश्वविद्यालय, मण्डी (हि.प्र.)

ई-मेल : rakesh.sharma9131@gmail.com

दूरभाष : 9418107730, 7018113630

सह सम्पादक

डॉ. राजकुमार

सहायक आचार्य इतिहास विभाग

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय

क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला (हि.प्र.)

ई-मेल : rajkumarhp2505@gmail.com

दूरभाष : 8219708010

सदस्यता शुल्क

प्रति अंक	- ₹ ५०.००
आजीवन (१५ वर्ष)	- ₹ २०००.००
संस्थागत	- ₹ ५०००.००

THE PUBLICATION OF THIS JOURNAL HAS BEEN FINANCIALLY SUPPORTED BY THE INDIAN COUNCIL OF HISTORICAL RESEARCH. THE RESPONSIBILITY FOR THE FACTS STATED OR OPINIONS EXPRESSED IS ENTIRELY OF THE AUTHOR AND NOT OF THE ICHR.

व्यवस्थापक

प्यार चन्द परमार

दूरभाष : ६४१८०-५६१६६

टंकण एवं सज्जा

रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान

गांव व डाकघर नेरी, जिला हमीरपुर,

पिन - १७७००१ (हि०प्र०) दूरभाष : ०६४१८४-८५४१५

Website : www.ssneri.com

E-mail : itihasdivakar@gmail.com

शोध पत्रिका का सम्पादकीय कार्य पूर्णतः अवैतनिक है। शोध निबन्धों में प्रयुक्त दृष्टि एवं विचार लेखक के व्यक्तिगत हैं। इसका इतिहास शोध संस्थान नेरी से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए स्वामी/प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।

सम्पादकीय

स्वतन्त्रता संग्राम में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की भूमिका का पुनरावलोकन

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी ने आज़ादी के अमृत महोत्सव काल में 'भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन : वृत्तान्त, स्मृतियां एवं नेपथ्य–नायक' विषय पर सफल राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया तथा 'स्वराज संघर्ष में हिमाचल के नेपथ्य–नायक', 'इतिहास लेखन में लोकगाथाओं का योगदान' तथा 'पावन पत्राचार (श्रीगुरुजी एवं एकनाथ रानडे द्वारा ठाकुर रामसिंह को प्रेषित पत्रों का संकलन)' नाम से महत्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन भी किया। विगत् माह शोध संस्थान नेरी तथा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस स्मारक राजकीय महाविद्यालय हमीरपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में, 'भारत के स्वतंत्रता संग्राम में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की भूमिका का पुनरावलोकन' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का भी आयोजन किया गया। जिसका वित्त पोषण मौलाना अबुल कलाम आज़ाद एशियाई अध्ययन केन्द्र, कलकत्ता द्वारा किया गया।

भारत के अमृत काल में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की १२५वीं जयन्ती का उत्सव पूरे देश में हर्षोल्लास से मनाया गया। इसी वर्ष नवीन संसद भवन 'विस्टा' के निर्माण तथा उसमें नेताजी के जन्मदिवस पर भारत के प्रधानमंत्री द्वारा उनकी आदमकद प्रतिमा का अनावरण करना, एक स्वतन्त्रता सेनानी के प्रति सच्ची श्रद्धाजंलि का उदाहरण है। सुभाष का जन्म २३ जनवरी, १८६७ को पिता जानकी दास बसु और माता प्रभवती के घर कटक में हुआ था। चौदह भाई-बहनों में वे नवीं संतान थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा मिशनरी स्कूलों में हुई। मिशनरी स्कूलों और उनके परिवारिक वातावरण में बहुत अन्तर था। घर का वातावरण जहाँ पूर्ण भारतीय था वहीं शिक्षा में अंग्रेजियत का प्रभाव था। हालाँकि अपने नैतिक शिक्षा और चरित्र की शिक्षा का श्रेय उन्होंने अपने प्रधानाध्यापक बनी माधव को दिया है परन्तु स्वामी विवेकानन्द के साहित्य ने उनके जीवन को अन्य की अपेक्षा अधिक प्रभावित किया। जिसके कारण सुभाष का मन योग, सेवा व अध्यात्म की ओर अधिक प्रवृत्त हो गया। सुभाष को भारतीय संस्कृति, परम्परा तथा सभ्यता पर प्रारम्भ से ही गौरव था। उच्च शिक्षा के लिए वर्ष १६१६ में उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। भारतीय सिविल सर्विस की प्रारंभिक परीक्षा में उन्होंने चौथा स्थान प्राप्त किया। परन्तु आईसीएस की परीक्षा पास कर और उससे त्याग पत्र देकर साम्राज्यवादी शक्ति के अधीन काम न कर राष्ट्र के उत्थान को उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य मान लिया।

भारत पहुंचने पर वे महात्मा गांधी से प्रभावित होकर उनसे मिले व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य बन गए। जब १६२४ में चितरंजन दास कलकत्ता नगरपालिका के पहले महापौर बने तो सुभाष चन्द्र बोस ने मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में पद ग्रहण किया। उनकी प्रशासनिक कुशलता से अंग्रेज इस हद तक भयभीत हुए की उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। भारतीय इतिहास के पन्नों पर सुभाष का चिंतन, नीति, राष्ट्र के लिए समर्पण भाव अद्वितीय है, जो भारतीय युवाओं को अखण्ड ऊर्जा प्रदान करती है। उन्होंने एकनिष्ठ लक्ष्य के निमित्त अपने त्याग और बलिदान द्वारा इतिहास में अमिट छाप छोड़ी। नेताजी विचार, अभिव्यक्ति व व्यवहार में हमें राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में एक अद्वितीय व्यक्तित्व के रूप में सक्रिय दिखाई देते हैं। उन्होंने अपने प्रेस वक्तव्यों तथा अध्यक्षीय भाषणों द्वारा देश की जनता को एक तरफ सार्वजनिक आन्दोलन की ओर उन्मुख किया तो दूसरी तरफ ब्रिटिश-सत्ता के प्रति विरोध एवं राष्ट्रीयता की भावना प्रज्जवलित की।

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में उन्होंने अखिल भारतीय युवक सम्मेलन कलकत्ता में २८ दिसम्बर, १६२८ को दिए अपने भाषण में कहा, 'मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो आधुनिकता के जोश में अपने अतीत के गौरव को भूल जाऊँ। हमें भूतकाल को अपना आधार बनाना है। भारत की अपनी संस्कृति है, जिसे उसे अपनी सुनिश्चित धाराओं में विकसित करते जाना है। हमारे पास विश्व को देने के लिए दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान में बहुत कुछ नया है और उसकी ओर सारा संसार टकटकी लगाए हुए है। एक शब्द में कहूं तो हमें नए-पुराने का मेल करना है। हमारे कुछ अच्छे विचारक और कार्यकर्त्ता इस महत्त्वपूर्ण कार्य में पहले से ही लगे हुए हैं। हमें एक ओर पुनः वेदों पर जाने वाली प्रकृति और दूसरी ओर आधुनिक यूरोप के फैशन और अर्थहीन परिवर्तन के लिए नकल करने वाली प्रकृति का मुकाबला करना है। वे भारतीय राष्ट्रवाद के विषय में कहते हैं कि 'भारतीय राष्ट्रवाद न तो संकुचित है, न स्वार्थी और न आक्रामक। यह मानवजाति के उच्चादर्शों – सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् से प्रेरणा ग्रहण करता है। भारतीय राष्ट्रवाद, सत्यता, ईमानदारी, मानवता और सेवा एवं त्याग की भावना की शिक्षा देता है।' (महाराष्ट्र प्रान्तीय अधिवेशन पूना में अध्यक्षीय भाषण, ३-५-१६२८)। उनकी जीवन की गहराईयों के प्रति जिज्ञासा, तरुणयुवा के सपने, राष्ट्रप्रेम, त्याग व नवनिर्माण के सपने स्पष्ट दिखाई देते हैं। आज आज़ादी के ७५वें वर्ष में समाज और राष्ट्र को लेकर उनके विचार पूरी तरह प्रांसागिक दिखाई देते हैं। उनके राजनीतिक विचार व आध्यात्मिक चिन्तन रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द घोष, और कवि रविन्द्रनाथ टेगोर जैसे दूरदृष्टा मनीषियों से प्रभावित हैं।

आज जब भारत आज़ादी का अमृत-महोत्सव व नेताजी की १२५वीं जयन्ती वर्ष मना रहा है, इतिहास दिवाकर का यह संयुक्तांक उनको समर्पित है। स्वतंत्रता संग्राम कि गाथा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान को स्मरण किए बिना अधूरा है। अतः इस अंक में नेताजी के जीवन एवं कार्यों को उद्धृत करता हुआ कुछ चुने हुए शोधपत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं। इन अंको के अध्ययन अवश्य ही पाठकों के मध्य उनकी छवि को साफ-साफ़ प्रतिबिंबित करेगा। पत्रिका के संवीक्षण स्तम्भ में १० शोधपत्र शामिल किए गए हैं। 'वैदिक गणित' एवं 'गांव का इतिहास' शोध पत्रिका का स्थायी स्तम्भ है और इसे इस बार भी जारी रखा गया है। इस अंक में दो पुस्तक समीक्षाएं व ध्येय-पथ में संस्थान की गतिविधियों में ठाकुर रामसिंह की १०७वीं जयन्ती समारोह, नवसंवत्सर परम्परा उत्सव, साधारण सभा व निदेशक मण्डल बैठक, गांव का इतिहास व जलरंग चित्रकला कार्यशाला, केन्द्रीय शिक्षामंत्री धर्मेन्द्र प्रधान की शोध संस्थान आगमन, दो दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद जैसे महत्वपूर्ण घटनाक्रमों को संक्षिप्त रूप से शामिल किया गया है।

शोध संस्थान का परिवार बढ़ता जा रहा है और इसी क्रम में ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान, नेरी व सरदार पटेल विश्वविद्यालय,मण्डी के बीच ५ सितम्बर, २०२२ को समझौता ज्ञापन (MOU) पर हस्ताक्षर किया गया। यह समझौता प्रदेश व देश में इतिहास, कला जैसे विभिन्न विषयों पर हो रही नवीन शोध कार्यों को अवश्य एक नई दिशा प्रदान करेगा। विद्वानों, इतिहासविदों व सुधी पाठकों के परामर्श से इतिहास दिवाकर के आगामी अंक अक्तूबर व अप्रैल में अर्धवार्षिक प्रकाशित किये जाएंगे।

आप सभी को दीपोत्सव की शुभकामनाएं।

विनीत,

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

ISSN 2250-2769

संवीक्षण

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का चिन्तन राष्ट्रवाद की भारतीय अवधारणा के अनुरूप था

डॉ. सुरेन्द्र डी. सोनी

शोध सारांश

यह ध्रुव सत्य है कि राजनीति अत्यन्त क्रूर होती है। देखा गया है कि कोई देश जब किसी विदेशी शक्ति से संघर्ष करके स्वाधीन होता है, तो जिन लोगों के हाथ में सत्ता आती है – वे इतिहास में अमर होने का प्रयास करते हैं। वे चाहते हैं कि वे सभी व्यक्ति पृष्ठभूमि में चले जाएँ, जो संघर्ष में या तो उनके साथ थे या उनसे आगे थे। भारत में भी यही हुआ। अँगरेजों को जब भारत से भगा दिया गया और सत्ता भारतीयों के हाथ में आ गई तो नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जैसे पराक्रमी नायक को संस्थागत रूप से उपेक्षित करने का प्रयास किया गया, किन्तु लोक के स्तर पर उनकी प्रियता इतनी अधिक थी कि यह सम्भव नहीं हुआ। हाँ, स्वाधीनता के पश्चात् शासकीय स्तर पर उन्हें वह सम्मान नहीं दिया गया, जो एक 'उदात्त राष्ट्रवादी' को मिलना चाहिए था। यह भी कहा गया कि वे मुख्य धारा के 'नेशनलिस्ट' नहीं थे और उन्होंने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए हिटलर, मुसोलिनी व तोजो जैसे साम्राज्यवादियों से सम्पर्क किया था। सुभाष चन्द्र बोस के जीवन का हम गहराई से अध्ययन करें – तो समझ में आता है कि उनकी मूल धारा 'राष्ट्रवाद' की भारतीय अवधारणा के अनुरूप थी। यह अलग बात है कि 'शत्रु का शत्रु मित्र होता है' की नीति पर चलकर उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए ब्रिटेन के विरोध में खड़े देशों का साथ लेना पसन्द किया। उन्हें असन्तोष इस बात का था कि गाँधी जी के नेतृत्व में काँग्रेस अँगरेजों से सीधे टकराने के बजाय उनकी सुविधा से अपना संघर्ष करना चाहती थी। फलतः उनका काँग्रेस से मोह भंग हो गया और वे प्रतिक्रियावादी हो गए। उन्होंने सशस्त्र संघर्ष का पथ चुना। इस संघर्ष का नतीजा यह हुआ कि पूरे भारत में क्रान्ति की एक लहर दौड़ गई। अँगरेजों के भारत छोड़ने का एक कारण नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द सेना भी थी। इतिहास का कोई ईमानदार अध्येता यह बात नहीं कहेगा कि सुभाष चन्द्र बोस के योगदान की उपेक्षा की जानी चाहिए थी। सुभाष चन्द्र बोस का पूरा संघर्ष भारत-राष्ट्र को स्वाधीन कराने के लिए था। अपने कथन व लेखन में वे जिस 'भारतीय समाजवाद' की बात कर रहे थे, वस्तुतः वह 'राष्ट्रवाद' ही था। इस शोध लेख में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की विचारधारा के कुछ विशेष पक्षों को उजागर करते हुए यह मत स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि वे मूल रूप से 'राष्ट्रवादी' थे और उनका 'राष्ट्रवाद', जिसे उन्होंने अनेक स्थानों पर 'नेशनलिज्म' कहा है, पूर्णतया भारतीय संस्कारों पर आधारित था।

संकेत शब्द : *राष्ट्रवाद, राष्ट्रबोध, भारतीय समाजवाद, हीगलवाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद, कम्युनिज्म, सुभाषिज्म, सुभाषवाद, वामपंथ, दक्षिणपंथ, काँग्रेस, फॉरवर्ड ब्लॉक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, ऋग्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, गरुड़–पुराण, विष्णु–पुराण, सनातन धर्म।*

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के जन्म की एक सौ पच्चीसवीं जयन्ती पर २३ जनवरी २०२१ को म्यूनिख के भारतीय वाणिज्य दूतावास ने अपने आधिकारिक ट्विटर हैण्डल पर उनकी पुत्री प्रो. अनीता बी. पफ, जो जर्मनी में रहती हैं, का एक वीडियो-सन्देश प्रसारित किया था।[1] अपने सन्देश में वे कहती हैं

कि उनके पिता एक धर्मनिष्ठ हिन्दू थे तथा वे अन्य सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णु थे। उन्होंने कहा कि वे एक ऐसे भारत की कल्पना करते थे – जो आधुनिक, प्रबुद्ध तथा इतिहास, दर्शन व धर्म की परम्पराओं में गहराई से निहित हो। 'यजुर्वेद' में कहा गया है[३] – **वयं राष्ट्रे जागृयात पुरोहिता स्वाहा :।** (६.२३)

प्रो. अनीता का यह वक्तव्य उनके पिता को उन लोगों के विरुद्ध, जो उन्हें कम्युनिस्ट या कुछ और मानते हैं एक राष्ट्रवादी व्यक्ति सिद्ध करता है। हमें यह मानकर ही चलना चाहिए कि भारत में जन्मा कोई भी व्यक्ति यदि धार्मिक होगा, तो वह राष्ट्रवादी भी होगा – क्योंकि भारतीय राष्ट्रवाद का उत्स धर्म ही है।

कोई कह सकता है कि किसी व्यक्ति की पुत्री के एक छोटे-से सन्देश के आधार पर उसे धार्मिक क्यों माना जाना चाहिए और क्यों ही इस आधार पर उसके राजनैतिक चिन्तन की विवेचना की जानी चाहिए..? यह जरूरी तो नहीं कि पुत्री ने अपने पिता का सही मूल्यांकन किया हो..! यह प्रश्न उन्हीं लोगों के अनुकूल हो सकता है, जिन्हें भारत की सनातन सामाजिक व्यवस्था में 'धर्म' जैसी उदात्त अवधारणा की महत्ता का ज्ञान नहीं है – अन्यथा यह तो भारतीय सामाजिकी का साधारण-सा अध्येता भी जानता है कि यहाँ की पुत्रियाँ अपने पिता के मन को जितना अच्छी तरह समझती हैं, उतना तो उस व्यक्ति के बारे में बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ लेने वाला व्यक्ति भी नहीं जान सकता..। प्रो. अनीता अपने पिता के लिए असत्य सम्भाषण क्यों करेंगी..? विशेष रूप से उस स्थिति में, जब वे अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम चरण में हैं और उनका कोई राजनैतिक स्वार्थ भी नहीं है। यदि एक बार के लिए हम प्रो. अनीता के इस कथन से स्वयं को अलग कर लें कि उनके पिता एक धार्मिक व्यक्ति थे, तो भी हमें उनके व्यक्तित्व के ऐसे कितने ही पहलू दिखाई देंगे – जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि वे एक पूर्ण धार्मिक व्यक्ति थे और इसीलिए राष्ट्रवादी भी थे।

सही बात तो यह है कि आधुनिक भारत के इतिहास में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस एक ऐसे नायक हुए हैं, जिनकी सफलता उनके समकालीन रहे उन राजनेताओं को सहन नहीं हुई, जो अँगरेजों के चले जाने के बाद इस देश की राजनैतिक सत्ता पर अपना नियन्त्रण चाहते थे। इसीलिए उन्हें उपेक्षित किया गया, नहीं तो आज वे आधुनिक भारतीय इतिहास-लेखन के केन्द्र में स्थिर होते और उनके अवदान पर पर्याप्त विमर्श भी हो रहा होता। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के व्यक्तित्व के दो पक्ष हमारे सामने हैं – एक पक्ष तो यह है कि उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रत्यक्ष रूप से सैनिक संघर्ष किया और दूसरा पक्ष यह है कि उन्होंने 'भारतीय समाजवाद' के सैद्धान्तिक आधार पर अपनी राष्ट्रीय विचारणा को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। देश की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जो संघर्ष किया, उसकी चर्चा तो फिर भी हो जाती है, किन्तु राष्ट्र के सम्बन्ध में उनका चिन्तन क्या था, इस विषय पर सामान्यतः चर्चा नहीं होती है।

'इण्डिया' व 'नेशन'की अवधारणा का अनैतिक आरोपण

दुर्भाग्य की बात है कि भारत का इतिहास-लेखन पश्चिम का मुखापेक्षी है, क्योंकि स्वाधीनता के पश्चात् इतिहास-लेखन का भारतीय आधार तैयार ही नहीं किया गया। स्वाधीनता मिलने के बाद

ISSN 2250-2769

अपने पहले ही भाषण में प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने यह कहकर इतिहासकारों को एक प्रस्थान-बिन्दु दे दिया था कि 'इण्डिया' के रूप में एक नए 'नेशन' का उदय हो रहा है।[३] उन्होंने भारत को 'इण्डिया' व राष्ट्र को 'नेशन' कहकर देश को एक तरह से उसकी जड़ों से काट दिया। स्वाधीनता के बाद भारत का इतिहास लिखने के जो राजकीय समूह बने, उनका नेतृत्व कम्युनिस्ट लेखकों को सौंपा गया, क्योंकि सत्ता में आए दल के पास इतिहासकारों का ऐसा समूह नही था, जो आने वाली पीढ़ियों के हृदय में भारत को 'इण्डिया' के रूप में स्थापित कर सके और यह बता सके कि कुछ गिने-चुने लोगों ने अँग्रेजों के जाने के बाद इस भूमि की बिखरी हुई इकाइयों को जोड़कर एक 'नेशन' बनाने का काम शुरू किया। इन कम्युनिस्ट लेखकों में वे लोग भी शामिल हो गए, जो स्वयं को वामपंथी कहते थे।

'वामपंथ' अथवा 'साम्यवाद': प्राचीन भारत की अवधारणा

स्वाधीनता के पश्चात् जो इतिहास-लेखक स्वयं को 'कम्युनिस्ट' कह रहे थे, उनके लिए 'वामपंथ' और 'कम्युनिज्म' में कोई मूलभूत अन्तर नहीं था और इसीलिए वे सुभाष चन्द्र बोस को या तो ठीक तरह से समझ नहीं पाए या उन्होंने इसका प्रयास नहीं किया। वस्तुतः 'वामपंथ' अथवा 'साम्यवाद' मूल रूप से सामाजिक समरसता की भारतीय अवधारणा ही है और उसका कम्युनिज्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसे लोगों ने नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को भी 'कम्युनिस्ट' ही मान लिया, क्योंकि उन्होंने 'वामपंथ' की ओर अपना झुकाव प्रकट किया था। सुभाष चन्द्र बोस 'वामपंथ' को तो भारत के अनुकूल मानते थे, लेकिन 'कम्युनिज्म' को नहीं मानते थे। शिशिर कुमार बोस अपनी पुस्तक 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस' में लिखते हैं – 'सुभाष चन्द्र की धारणा थी कि कई कारणों से भारत में कम्युनिज्म नहीं अपनाया जा सकेगा। भारत का आन्दोलन अनिवार्यतः एक राष्ट्रवादी आन्दोलन था – भारतीय जनता की राष्ट्रीय मुक्ति का आन्दोलन। उनका मत था कि भारत को एक संयोजनशील अथवा समतापरक सिद्धान्त का सर्जन करना होगा, जिस पर भावी भारतीय समाज की नींव रखी जा सके। इस सिद्धान्त को 'साम्यवाद' कहते हैं। प्राचीन भारत में यह शब्द सामाजिक विरोधाभास मिटाकर प्राप्त की गई समरूप स्थिति को अभिव्यक्त करता था।'[४]

स्पष्ट है कि सुभाष चन्द्र बोस जिस 'वामपंथ' की बात करते थे, वह वस्तुतः प्राचीन 'साम्यवाद' के परिप्रेक्ष्य में भारतीय 'राष्ट्रवाद' ही था। वे जानते थे कि भारत भूमि से निसृत 'राष्ट्रवाद' की अवधारणा संकुचित नहीं है, इसलिए वह भौगोलिक सीमा-रेखाओं से परे भी है। यह अलग बात है कि उस समय सुभाष चन्द्र बोस द्वारा प्रयुक्त किए गए 'वामपंथ' शब्द को यूरोपीय देशों में भड़क रहे 'कम्युनिज्म' के बराबर खड़ा कर दिया गया। यह समझा गया कि सुभाष जब भी श्रमिक वर्ग की बात करते हैं, तो वे 'कम्युनिज्म' के हवाले से ही करते हैं – जबकि वास्तविकता यह है कि उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि भारत, रूस की तरह, 'कम्युनिज्म' या 'मार्क्सवाद' की प्रयोग-भूमि नहीं हो सकता।

समुद्र से समुद्र तक पृथ्वी एक 'राष्ट्र'

सुभाष जानते थे कि भारतीय वाङ्मय में 'राष्ट्र' की जो अवधारणा दी गई है, उसके समतुल्य

ISSN 2250-2769

अवधारणा दुनिया में अन्य किसी देश से निसृत नहीं हुई है। भारत में 'राष्ट्र' केवल एक मानचित्र में आबद्ध राजनैतिक इकाई नहीं है। भारत में 'राष्ट्र' मूलतः एक सांस्कृतिक अवधारणा है। इस अवधारणा में लोक-मंगल का विषय सर्वोपरि है और यह लोक-मंगल केवल भौतिक नहीं है। यहाँ लोक-मंगल से अभिप्राय लोक के आध्यात्मिक उत्कर्ष से भी है। जिन देशों का निर्माण दुनिया के नक्शों पर सीधी रेखाएँ खींचने से हुआ है, वे 'राष्ट्र' के भारतीय विचार को कभी नहीं समझ सकते। उन्होंने तो, विशेषतः यूरोप व अमेरिका महाद्वीपों के देशों ने, नक्शों पर रेखाएँ खींच-खींचकर इस धरती को खण्डित करके 'नेशन' बना दिए हैं – जबकि हमारे यहाँ 'राष्ट्र' की कल्पना भूमि को छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित करके नहीं की गई है। यहाँ तो समुद्र से समुद्र तक पृथ्वी को एक 'राष्ट्र' माना गया है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' की आठवीं पंचिका में एक स्थान पर यही बात कही गई है –

पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराळिति।[५]

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, जिनका जन्म भारत के एक धार्मिक परिवार में हुआ था और वे स्वयं एक लगनशील अध्येता थे, राष्ट्र की इस अवधारणा को समझे नहीं हों – यह हो नहीं सकता था।

भारत का विश्व को अपूर्व उपहार : 'राष्ट्रवाद'

सुभाष बाबू समझते थे कि केवल भारत ही ऐसा देश है, जो इस दिग्भ्रम के शिकार हो रहे विश्व को अन्तिम रूप से सँभालेगा, क्योंकि हमारे ही ऋषियों ने पूरी वसुधा को कुटुम्ब मानते हुए सभी के सुखी, नीरोग, मंगलमय और दुःख का भागी न बनने की कामना की है। ऋषियों की इस कल्पना को भारतीय प्रतिदिन दोहराते हैं –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदुखभाग्भवेत्।।[६]

सुभाष को जब लंदन से इण्डियन पॉलिटिकल कॉंफ्रेंस की अध्यक्षता करने का निमन्त्रण मिला, तो ब्रिटिश सरकार ने उन्हें चतुराई से केवल दो यूरोपीय देशों में जाने का वीजा ही दिया, ताकि वे कॉंफ्रेंस में भाग न ले सकें। इसलिए उन्होंने आयोजकों को अपना लिखित भाषण भेजा। इस भाषण में उन्होंने बड़ी कुशलता से दुनिया में अन्य देशों के साभ्यतिक-सांस्कृतिक योगदान की सराहना करते हुए भारतीय राष्ट्रवाद को प्रकट कर दिया।

'सत्रहवीं शताब्दी में संवैधानिक एवं लोकतान्त्रिक सरकार के विचार से इंग्लैंड ने विश्व-सभ्यता में उल्लेखनीय योगदान दिया। इसी तरह अठारहवीं शताब्दी में फ्राँस से विश्व-संस्कृति को सबसे अनूठा योगदान मिला स्वाधीनता, समता और बन्धुता के उसके विचारों की बदौलत। उन्नीसवीं शताब्दी में मार्क्सवादी दर्शन के जरिए सर्वाधिक अनुपम भेंट दी जर्मनी ने। बीसवीं शताब्दी में विश्व-सभ्यता और संस्कृति को रूस ने सर्वहारा क्रान्ति, सर्वहारा प्रशासन तथा सर्वहारा संस्कृति विषयक अपनी उपलब्धियों से समृद्ध किया और अब विश्व-सभ्यता और संस्कृति को अगला अपूर्व उपहार देने के लिए गुहारा जाएगा भारतवर्ष को..!'[७]

विश्व-सभ्यता और संस्कृति को 'राष्ट्र' की उदात्त अवधारणा के रूप में भारत ने सहस्राब्दियों पूर्व ही अपूर्व उपहार दे दिया था, किन्तु वह काल के अन्धकार में कहीं छुप गया था। सुभाष बाबू का

संकेत इसी ओर था कि यह अन्धकार अब छँटेगा और उजाला अपना प्रखर रूप दिखाएगा। इस उजाले की अभिव्यक्ति ही तो 'अथर्ववेद' में हुई है कि कल्याण की कामना करने वाले, आत्मिक सुख को प्राप्त कर चुके ऋषिगण जब तप और दीक्षा को प्राप्त करते हैं, तो 'राष्ट्र' और उसका भौतिक बल, उसका आत्मिक ओज उत्पन्न होता है। ऐसे 'राष्ट्र' के लिए हम सभी झुकते रहें, उसे नमस्कार करते रहें और उसकी व्यवस्था का सम्मान करते रहें –

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु।।[८] (१६.४१.१)

नौजवान भारत सभा के कराची अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस ने भारत के युवाओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि उन्हें इस ऐतिहासिक तथ्य का स्मरण करना चाहिए कि भारतवर्ष विश्व-प्रसाद की आधारशिला है और स्वाधीन भारत निश्चित रूप से संसार में साम्राज्यवाद के विनाश का मार्ग प्रशस्त करेगा।[९] नौजवान भारत सभा, जिसके अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस ने यह बात कही, राष्ट्र के महान् क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह द्वारा गठित किया हुआ संगठन था। भगतसिंह को भी अधिकतर अध्येताओं द्वारा कम्युनिस्ट बताया जाता है। होना तो यह चाहिए कि भारत-भूमि को परतन्त्रता से मुक्ति दिलाने के लिए अपना बलिदान देने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पहले हमें राष्ट्रवादी मानें और उसके बाद कुछ और मानें, लेकिन होता इसके विपरीत है। जो भगतसिंह महान् राष्ट्रवादी वीर सावरकर का ग्रंथ 'भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम' अपने पास रखता हो, वह निश्चित रूप से पहले भारत माँ का लाडला पुत्र है और उसके बाद किसी विचार को मानने वाला व्यक्ति है। यही कारण है कि नौजवान भारत सभा के अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस के मन से देश-भक्ति का ज्वार फूट पड़ा। सुभाष के अवचेतन में निश्चित रूप से उस समय प्राचीन भारत का गौरव करवट ले रहा था।

सुभाष चन्द्र बोस जब कहते हैं कि भारत संसार में साम्राज्यवाद के विनाश का मार्ग प्रशस्त करेगा, तो 'अथर्ववेद' के प्रथम अध्याय के इक्कीसवें सूक्त का स्मरण हो आता है, जिसमें 'राष्ट्र' के एक ऐसे नेता 'इन्द्र' की कल्पना की गई है – जो अग्रगामी होकर हमारा मंगल करेऔर हमारे शत्रुओं का नाश करे –

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः।।
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यत।
अधमं गमया तमो यो अस्मा अभिदासति।।
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः।।
अपेन्द्र द्विषतौ मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम।।[१०]

सच्चा राष्ट्रवादी शत्रुहन्ता होता है। अपनी जीवन-यात्रा में सुभाष चन्द्र बोस ब्रिटिश हुकूमत के समक्ष कहीं भी रक्षात्मक दिखाई नहीं देते हैं। वे सदैव आक्रामक रहे हैं। उन्होंने बार-बार रेखांकित किया

ISSN 2250-2769

कि बिना सैन्य बल के शत्रु को हराया नहीं जा सकता..! 'अथर्ववेद' में यही तो कहा गया है कि हमारा नेता ऐसा होना चाहिए – जो शत्रुओं का नाश करे और उसके आयुधों को नष्ट करे। काँग्रेस का समर्पण प्रिय वर्ग जब इस रास्ते पर चलने के लिए या सीधी कार्रवाई करने के लिए तैयार नहीं हुआ, तो सुभाष ने काँग्रेस के भीतर ही एक प्रतिक्रियावादी समूह खड़ा किया, जिसे 'वामपंथी' अभिहित किया गया। ध्यातव्य है कि सुभाष चन्द्र बोस की दृष्टि में यह 'वामपंथ' प्राचीन भारत का 'साम्यवाद' ही था और इसका 'कम्युनिज्म' से कोई ताल्लुक नहीं था। सुभाष चन्द्र बोस के स्वभाव में यदि शत्रुओं के प्रति समर्पित होने का भाव नहीं था, तो यह 'राष्ट्र' की वैदिक अवधारणा के अनुरूप ही था।

१६२८ में कोलकाता में जब काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था, तब सुभाष उसमें इसी मनःस्थिति को लेकर सम्मिलित हुए थे कि वरिष्ठ नेताओं के ऐसे किसी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे, जिसमें पूर्ण स्वाधीनता की बात न हो। अधिवेशन में जब यह प्रस्ताव आया कि भारत को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने के लिए ब्रिटिश सरकार को एक साल की मोहलत दी जाए, तो सुभाष ने इसमें संशोधन प्रस्तुत कर दिया कि भारतीय जन का जो मानस है तथा विश्व-पटल पर जो घटनाएँ घट रही हैं, उन्हें देखते हुए हमें अविलम्ब व पूर्ण स्वतन्त्रता के मुद्दे पर डटे रहना चाहिए। उन्होंने कहा कि वे देश की जिस युवा पीढ़ी का नेतृत्व कर रहे हैं, वह तो इस विषय पर काँग्रेस का विभाजन तक झेलने के लिए तैयार है।[११]

ध्यान रहे कि इस समय तक सुभाष चन्द्र बोस काँग्रेस के भीतर ही एक वॉलण्टियर कोर का गठन कर चुके थे तथा वे ही इसके जनरल ऑफिसर कमांडिग थे। इस कोर का स्वरूप अर्द्धसैनिक बल जैसा था। इसके सदस्य सैनिक का वेश धारण करते थे। बोस, यदि भारत की स्वतन्त्रता के लिए यह सब कर रहे थे, तो वे निश्चित रूप से वेद-सम्मत राष्ट्रीय अवधारणा के प्रतिलोम नहीं जा रहे थे। हम देखते हैं कि इसी जज्बे के कारण सुभाष काँग्रेस से एक तरह से अलग हो जाने के बाद 'फॉरवर्ड ब्लॉक' का गठन करते हैं। भारत-राष्ट्र को इसका गौरव पुनः प्राप्त हो, इसीलिए तो वे स्वयं को भारत से विस्थापित करते हैं और जान पर खेलकर पहले जर्मनी और वहाँ से जापान जाते हैं। जापान जाकर वे आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व करते हैं और अंग्रेजों से सशस्त्र संघर्ष करते हैं। १७ जनवरी १६४१ को भारत छोड़ने से लेकर १८ अगस्त, १६४५ को कथित रूप से हुई विमान-दुर्घटना तक का उनका सफर एक सामान्य व्यक्ति का सफर नहीं था। यह सफर था भारत-राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए प्राण-प्रण से जूझ रहे एक महायोद्धा का, जिसे ज्ञात था कि इस सफर का अन्त किन कष्टों से भरा हुआ है। असल में राष्ट्र के लिए लड़ना ही सुभाष चन्द्र बोस जैसे वीरों का होता है। उन लोगों की लड़ाई को हम लड़ाई कह ही नहीं सकते, जो शत्रु की सहूलियत देखकर उसी के तय किए हुए स्थल पर पूर्व-निर्धारित निर्णयों के अनुसार लड़ते हैं। ऐसे लोग राष्ट्रवादी नहीं हो सकते।

'राष्ट्रबोध' की शाब्दिक अभिव्यक्ति है 'राष्ट्रवाद'

भारत के सन्दर्भ में राष्ट्रवाद की अवधारणा को समझने के साथ-साथ हमें यह भी समझना चाहिए राष्ट्र के साथ 'वाद' शब्द जोड़कर दुनिया में चल रहे अनेक वादों-साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद आदि-की संगति में हमने केवल अकादमिक सुविधा हासिल की है। एक सच्चे

भारतीय का मन राष्ट्रवाद से पूर्व राष्ट्रबोध में रमा होता है। राष्ट्रवाद तो राष्ट्रबोध की शाब्दिक अभिव्यक्ति मात्र है। यहाँ के बच्चे घरों में विभिन्न अवसरों पर 'जम्बूद्वीपे भरतखण्डे..' जैसे मन्त्र सुनते हुए ही बड़े होते हैं। बाद में वे वेद का यह स्वर भी सुनने लगते हैं – 'माताः भूमिः पुत्रोऽम् पृथिव्याः।' कुछ और बड़े होते हैं, तो उन्हें समझ में आने लगता है कि जन्मभूमि तो स्वर्ग से भी बढ़कर होती है – 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गाऽपि गरीयसी।' इससे आगे उनके मन में भारत-राष्ट्र वैसा अभिव्यक्त होने लगता है, जैसा 'विष्णु-पुराण' में बताया गया है–

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।[१२] (२.३.१)

स्पष्ट है कि भारत युगों-युगों से राष्ट्र है और इसका उस 'नेशन' से कोई सम्बन्ध नहीं है, जो यूरोप में प्रचलित है।

सुभाष चन्द्र बोस का राष्ट्रबोध : न हीगलवादी, न मार्क्सवादी

सुभाष के व्यक्तित्व का निर्माण भी भारतीय संस्कृति के राष्ट्रबोध उत्पन्न करने वाले उदात्त तत्वों से ही हुआ था। यह जानने के बाद कि समुद्र के उत्तर व हिमालय के दक्षिण की समस्त भूमि भारतवर्ष है और इसकी सन्तानें भारती हैं, वे नहीं सहन कर सकते थे कि अँगरेज इन सन्तानों को अपने अधीन रखें..! वे जानने लगे थे कि सफलता उसके लिए है, जिसके पास निर्वाह का स्वतन्त्र साधन है – न कि उसके लिए, जो निर्वाह हेतु दूसरों पर निर्भर है। जो दूसरों पर निर्भर है, वह शरीर से जीवित होते हुए भी मरे हुए से बेहतर नहीं हैं। 'गरुड़-पुराण' में यही कहा गया है –

स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता ।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोपि ते मृताः ।।[१३] (१.११५.३७)

युवा सुभाष के विचार-सागर में अनेक द्वीप ऐसे दिखाई देते हैं, जिन पर ध्यान देने से किसी भी अध्येता की यह प्रारम्भिक अवधारणा बन सकती है कि वे हीगलवादी अथवा मार्क्सवादी थे। ऐसे स्थिति में हमें उनके जीवन का व्यावहारिक पक्ष देखना चाहिए, जिससे हम पाएँगे कि उनमें एक प्रकार का आध्यात्मिक बल था – जो न तो हीगलवादियों में पाया जाता है और न ही मार्क्सवादियों में पाया जाता है। इस आध्यात्मिक बल ने सुभाष के व्यक्तित्व में एक प्रकार की दिव्यता स्थापित की। यही कारण है कि १९२५ के अक्टूबर माह में वे माँडले जेल में दुर्गा-पूजा का आयोजन करने के लिए सुविधा व वित्त की माँग करते हुए अनशन करते हैं।[१४] बिना राष्ट्रबोध हुए कोई राजनैतिक कैदी दुर्गा-पूजा के आयोजन के लिए अनशन नहीं करता। तभी तो उन्होंने कहा कि यूरोपियों ने चाहे भारत के इतिहास की गणना दशकों या सदियों में की हो, भारत के इतिहास की गणना वस्तुतः सहस्राब्दियों में की जानी चाहिए। वे कहते हैं कि भौगोलिक रूप से, नृवंश विज्ञान व इतिहास की दृष्टि से, भारत किसी भी पर्यवेक्षक के लिए एक अन्तहीन विविधता का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ जोड़ने वाला सबसे बड़ा कारक हिन्दू धर्म रहा है।[१५] उत्तर या दक्षिण अथवा पूर्व या पश्चिम, आप जहाँ भी यात्रा करें – वही धार्मिक विचार, वही संस्कृति और वही परम्परा मिलेगी। सभी हिन्दू भारत को एक पवित्र भूमि के रूप में देखते हैं। वे शंकराचार्य, विवेकानन्द व

ISSN 2250-2769

अरविन्द के आदर्शों, पवित्र नदियों तथा चार धामों की बातें करते हैं। 'रामायण' व 'महाभारत' देश में समान रूप से लोकप्रिय हैं। इस तरह सुभाष भारत के राष्ट्रवाद की सीधी-सरल स्थापना करते हैं। सुभाष ने अँगरेजी भाषा के लिए कहा था कि यह भारत की परिस्थिति, इतिहास व सामाजिकी की उपेक्षा करती है और एक सीमा तक यह अवैज्ञानिक भी है।

अपने राष्ट्र के इतिहास व संस्कृति के प्रति गौरव का बोध किसी राष्ट्रवादी को ही हो सकता है, क्योंकि वह सनातन धर्म का मर्म समझता है। तभी तो कोई सुभाष नाम का युवक स्वामी विवेकानन्द से 'आत्मनो मोक्षार्थम् जगद्धिताय च'[१६] का ऋग्वेदीय आदर्श ग्रहण कर लेता है। यदि सुभाष द्वारा अपनी माता, भाई, मित्रों आदि को लिखे पत्रों का अनुसन्धान किया जाए, तो उनके राष्ट्रबोध की पुष्टि में एक बहुत बड़ा ग्रंथ रचा जा सकता है।

यह एक विचारणीय बिन्दु है कि जब सुभाष का हृदय राष्ट्रप्रेम के भाव से भरा हुआ था, तो वे भारतीय मनीषियों के साथ-साथ हीगल व मार्क्स की बातें क्यों करने लगे थे? इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि वे हीगलवाद, मार्क्सवाद, लेफ्टिस्ट आदि प्रत्ययों का उल्लेख स्थान-स्थान पर करते हैं। इसके पीछे जो सबसे बड़ा कारण दिखाई देता है, वह यह है कि काँग्रेस में उनका प्रवेश ही एक उग्र राष्ट्रवादी के रूप में हुआ था। सुभाष ने अनुभव किया कि काँग्रेस का नेतृत्व तो अँगरेजों से टकराना ही नहीं चाहता। वह तो संवैधानिक तरीकों से स्वतन्त्रता नहीं, बल्कि स्वतन्त्रता जैसी कोई चीज हासिल करना चाहता है। गाँधी जी के आन्दोलनों से सुभाष का विरोध नहीं था — लेकिन वे चाहते थे कि गाँधी ही जब इतने लोकप्रिय हैं और जनता उन्हें महात्मा मानती है, तो वे अपने आन्दोलनों को किसी ठोस नतीजे तक लेकर क्यों नहीं जाते..? इस आक्रोश ने सुभाष को प्रतिक्रियावादी बना दिया और इसी कारण वे लेफ्टिस्टों की भाषा बोलने लगे।

'सुभाषिज्म' या 'सुभाषवाद'

गाँधी जी के दबाव में काँग्रेस-अध्यक्ष का पद त्यागते समय उनका आक्रोश चरम पर था और अँगरेजों से सीधे टकराने का कोई मार्ग काँग्रेस से निकलता न देखकर ही उन्होंने लेफ्टिस्ट धारा अपनाने की बात कही थी। उनका 'फॉरवर्ड ब्लॉक' वस्तुतः उनके आक्रोश की अभिव्यक्ति ही था। फॉरवर्ड ब्लॉक आज भी सक्रिय है, लेकिन तब के फॉरवर्ड ब्लॉक तथा आज के फॉरवर्ड ब्लॉक में काफी अन्तर है। 'आल इण्डिया फॉरवार्ड ब्लॉक'[१७] आज एक राजनैतिक दल है। यह दल कैसा है और क्या करता है, यह हमारे अन्वेषण का विषय नहीं है। हमारे लिए इस दल का इतना ही महत्व है कि इसे सुभाष चन्द्र बोस ने गठित किया था और उनके आदर्शों की विवेचना करने के लिए इसके मूल में झाँककर देखना आवश्यक है। दल की वेबसाइट को देखने से पता चलता है कि दल अपने आप को 'सुभाषिस्ट' कहता है। वेबसाइट पर 'आइडियोलॉजी ऑफ नेताजी' शीर्षक से एक खण्ड बना हुआ है। इस खण्ड के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'सुभाषिज्म' या 'सुभाषवाद' अपने आप में मार्क्सवाद से पूरी तरह अलग है। यद्यपि यहाँ सुभाष के वे उद्धरण भी उपलब्ध हैं, जिनका सम्बन्ध हीगलवाद या मार्क्सवाद से स्थापित किया जा सकता है। यहाँ

सुभाष को थीसिस, एंटीथीसिस व सिंथेसिस की बात करते हुए भी उद्धृत किया गया है, लेकिन आगे जाकर यह भी स्पष्ट कर दिया है कि सुभाष धार्मिक व्यक्ति थे और उनका भारतीय समाजवाद में दृढ़ विश्वास था।

किसी व्यक्ति का धार्मिक होना व उसका भारतीय समाजवाद में गहरा विश्वास प्रकट करना किसी भी स्तर पर उसके राष्ट्रवादी होने से कम नहीं हो सकता। फिर जब वह व्यक्ति अपनी आई. सी. एस. की नौकरी छोड़ते समय अपने भाई को यह लिखता हो कि केवल बलिदान व पीड़ा की माटी पर ही हम अपने राष्ट्रीय भवन को खड़ा कर सकते हैं और यह मार्ग उसने स्वयं चुना है[१८] – तो वह न हीगलवादी है और न ही मार्क्सवादी है। वह निश्चित रूप से खरा राष्ट्रवादी है..! यह अलग बात है कि उसके इस राष्ट्रवाद पर कोई उसके नाम का आवरण डाल दे और उसे 'सुभाषिज्म' कह दे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में सम्मिलित होने का विकल्प

यहाँ यह प्रश्न भी उठ सकता है कि सुभाष चन्द्र बोस ने काँग्रेस की समझौतावादी नीति के विरूद्ध लेफ्ट का मार्ग ही क्यों चुना? इसके स्थान पर वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में भी तो सम्मिलित हो सकते थे, जिसकी स्थापना डॉ. हेडगेवार ने १९२५ में की थी और वह बहुत तेजी से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पथ पर आगे बढ़ने लगा था। इस प्रश्न का उत्तर स्वयं सुभाष चन्द्र बोस ने ही दे दिया था कि संघ का मार्ग सही है, लेकिन मैं राजनीति के पथ पर बहुत आगे बढ़ गया हूँ। स्पष्ट है कि वे भारतीय समाजवाद या राष्ट्रवाद का लक्ष्य प्रत्यक्ष राजनीति द्वारा प्राप्त करना चाहते थे। प्रत्यक्ष राजनीति में उन्हें काँग्रेस के अस्पष्ट रवैये के कारण, विकल्पहीनता की स्थिति में, लेफ्ट की ओर झुकना पड़ा। लेफ्ट मार्ग अर्थात् वाममार्ग उनकी दृष्टि में प्राचीन भारत के 'साम्यवाद' का मार्ग ही था, यह वे स्पष्ट कर ही चुके थे। उनका वाममार्ग शुद्ध रूप से भारतीय साम्यवाद पर था, तभी तो १९३७ में जब क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद के पक्षकार वीर सावरकार को रिहा किया गया – तब उन्होंने, वाममार्गी होते हुए भी, उनके पक्ष में बयान दिया। कहा जाता है कि वे सावरकर को काँग्रेस में लाना चाहते थे, लेकिन सावरकर हिंदू महासभा में सम्मिलित हो गए – इसलिए बाद में वे उनके विरोधी हो गए। फिर भी यह माना जाता है कि सावरकर ने ही सुभाष को देश से बाहर जाकर संघर्ष करने की सलाह दी थी। एक तथ्य यह भी है कि बंगाल प्रान्त की काँग्रेस कमेटी को उन्होंने श्यामा प्रसाद मुकर्जी के नेतृत्व वाली बंगाल हिन्दू महासभा के साथ निर्वाचन में गठबन्धन करने की अनुमति दी थी। यह गठबन्धन उम्मीदवारों के चयन के विषय को लेकर सात दिन में ही टूट गया, लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात यह है स्वाधीनता के बाद श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने कहा था कि सुभाष की सेना एक कारण थी, जिससे भारत स्वाधीन हुआ। कहना चाहिए कि भारत के इतिहास में स्वामी विवेकानन्द यदि 'संन्यासी योद्धा' थे, तो नेताजी 'योद्धा संन्यासी' थे।[१९] भारत को अंगरेजों से मुक्त करवाने में उनकी प्रमुख भूमिका थी।

इण्डिया सेंटर, सरकार, तिरंगा, जन-गण-मन और जय हिन्द !

सुभाष की जीवन-शैली, विचार-सरणि, राजनैतिक पद्धति और भारत के प्रति अगाध श्रद्धा को

ISSN 2250-2769

देखते हुए निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे एक प्रतिबद्ध राष्ट्रवादी थे। उनका राष्ट्रबोध स्पष्ट था और इसी कारण राष्ट्र की सेवा में उन्होंने अपना सब कुछ होम दिया था। १५ अगस्त, १६४७ को विश्व-पटल पर जो घटना घटी, उसके विषय में हम सब जानते हैं – लेकिन हमें यह भी जानना चाहिए कि इस तिथि से पूर्व ही 'दिल्ली चलो' के आह्वान की प्रतिच्छाया में २१ अक्टूबर, १६४३ को सिंगापुर में सुभाष चन्द्र बोस ने अन्तरिम आजाद हिन्द सरकार की स्थापना कर दी थी। वे इस स्वाधीन सरकार के राष्ट्राध्यक्ष व प्रधानमन्त्री थे। इस सरकार को जापान, जर्मनी व इटली सहित नौ देशों ने मान्यता प्रदान की थी। इस सरकार की पहली कार्रवाई ब्रिटेन व अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना थी। विशेष बात यह थी कि नेताजी की सरकार ने किसी भी धुरी राष्ट्र के प्रति इस प्रकार का वचन प्रकट नहीं किया था कि युद्ध के बाद वह उससे बद्ध रहेगी। सुभाष चन्द्र बोस का कहना था कि युद्ध के पश्चात् भारत के लोगों की इच्छा के अनुसार एक स्थाई सरकार कार्यभार सँभालेगी। एक राष्ट्राध्यक्ष की क्षमता में बोस ने १६४३ के ही वर्ष में अण्डमान के जिमखाना मैदान में विशाल जनसमुदाय के समक्ष तिरंगा फहराया था। तिरंगा तो सुभाष ने अपने जर्मनी प्रवास के दौरान ही अपना लिया था, जब उन्होंने वहाँ इण्डिया सेण्टर बनाया था। इण्डिया सेण्टर के अन्तर्गत ही उन्होंने जन-गण-मन को राष्ट्रगान घोषित किया था। उसी समय 'जय हिन्द' को राष्ट्रीय अभिवादन के रूप में स्वीकार किया गया था। नेताजी के राष्ट्रप्रेम का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अपनी सरकार बनने के बाद उन्होंने अण्डमान द्वीप-समूह का नाम 'शहीद द्वीप-समूह' तथा निकोबार द्वीप-समूह का नाम 'स्वराज द्वीप-समूह' रखा था।

उपसंहार

निष्कर्षतः कहा जाना चाहिए कि नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की विचारधारा को चाहे भारतीय वामपंथ के अन्तर्गत पोषित साम्यवादी विचारधारा कहा जाए अथवा भारतीय मध्य-मार्ग के अन्तर्गत पोषित समाजवादी विचारधारा कहा जाए, राष्ट्र के प्रति उनका सम्पूर्ण रूप से समर्पित हो जाने का भाव उन्हें राष्ट्रवादी ही सिद्ध करता है। राष्ट्रवाद के इतर उन्हें किसी भी अन्य विचार से सम्बद्ध करके देखना न तो उनके प्रति न्याय होगा और न ही भारत के इतिहास के प्रति न्याय होगा..।

सन्दर्भ :

१. http://twitter.com/cgmunich/status/135287898595334?t=jH2mLyNMiuFSNe-DizzHwg&s=08, ०१ अगस्त, २०२२ को देखा गया।

२. स्वामीद्‌दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समलंकलम्-प्रथमो भागः, प्रो. ज्ञान प्रकाश शास्त्री, श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, २००८, पृ. ४२५-२६

३. https://youtube/VnxirE62Yd8, ०१ अक्तूबर, २०२२ को देखा गया।

४. द इण्डियन स्ट्रगल, सुभाष चन्द्र बोस (नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता द्‌वारा संयोजित) एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, १६६४, पृ. ३१४

५. 'ऐतरेयब्राह्मणम् - चतुर्थभागः, सामश्रमिसामश्रमिश्रीसत्यव्रतशर्म्मणा, द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, १६०६, पृ. २३७-३८

६. 'गरुड़पुराणम्', पण्डित-रामतेजपाण्डेयेन (सम्पादक), चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पृ. ३, ४०८ (इस प्रकार उल्लिखित - सर्वेषा मंगले भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्चन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।। २.३५.५२)

७. 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस' शिशिर कुमार बोस, नेशनल बुक ट्रस्ट - इण्डिया, नई दिल्ली, २०१०, पृ. ५८

८. 'अथर्ववेदः' (शौनकीयः - १६-२० काण्ड), विश्वबन्धु (सम्पादक), विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इंस्टीट्यूट, होशियारपुर, १६६२, पृ. ११२८

६. 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस' शिशिर कुमार बोस, नेशनल बुक ट्रस्ट - इण्डिया, नई दिल्ली, २०१०, पृ. ५०

१०. 'अथर्ववेद संहिता', भाग-१, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना, मथुरा, २००५, पृ. १५

११. 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस', शिशिर कुमार बोस, नेशनल बुक ट्रस्ट - इण्डिया, नई दिल्ली, २०१०, पृ .३६

१२. 'विष्णु पुराण का भारत', डॉ. सर्वानन्द पाठक, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, १६६७, पृ. ३०३०,

१३. 'गरुड़पुराणम्', पण्डित रामतेजपाण्डेय (सम्पादक), चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, पृ. ६, १७१

१४. 'द इण्डियन स्ट्रगल', सुभाष चन्द्र बोस (नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता द्वारा संयोजित) एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, १६६४, पृ. १३७-३८

१५. 'द इण्डियन स्ट्रगल' सुभाष चन्द्र बोस (नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता द्वारा संयोजित) एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, १६६४, पृ. ४

१६. 'सुभाष चन्द्र बोस के दस्तावेज (भाग १ व २), डॉ. प्रभाष कुमार, भव्या पब्लिकेशन, नई दिल्ली, https://epustakalay.com/

१७. https://forwardbloc.org/ १५ सितम्बर, २०२२ को देखा गया।

१८. सुभाष चन्द्र बोस के दस्तावेज' (भाग-१), डॉ. प्रभाष कुमार, भव्य पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष अंकित नहीं, पृ. १०३-०७ व ११७-१३२, https://epustakalay.com/

१६. 'जय हिन्द - नेताजी सुभाष चन्द्र बोस : बहुआयामी व्यक्तित्व, हनुमान सिंह राठौड़, शैक्षिक फाउंडेशन, दिल्ली, २०२१, पृ. ११४

सह-आचार्य, इतिहास विभाग
राजकीय लोहिया महाविद्यालय
चूरू, राजस्थान

ISSN 2250-2769

गाँधी के कांग्रेस का सुभाष से असहयोग और उनका महाभिनिष्क्रमण

डॉ.धर्मचन्द चौबे

शोध सारांश

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने गांधी और कांग्रेस से नाराज होकर यह निश्चय किया कि अंग्रेजों से संघर्ष भारत से बाहर जाकर भी संभव है। उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध का शंखनाद हो चुका था और प्रारंभिक लड़ाई में जर्मनी ने इंग्लैण्ड और फ्रांस को कई मोर्चों पर हरा दिया। नेताजी ने जर्मनी और जापान से मिलकर अंग्रेजों को धूल चटाने की ठानी। फलतः वे अपनी नज़रबन्दी को धत्ता बताते हुए जनवरी १६४१ में पंजाब, अफगानिस्तान और रूस होते हुए बर्लिन पहुंच गए और फिर वहां से वे सिंगापुर गए। इस शोध पत्र में यह उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है कि कितनी बार धरा–धर्म छोड़कर भारत माता को पराधीनता से मुक्त कराने का उनका संकल्प था। स्वप्न अधूरा था, पर प्रयास कितना बड़ा था।

संकेत शब्दः *नज़रबन्दी, पराधीनता, जन-संघर्ष, प्रवाहमान, साम्राज्यवाद।*

हरिपुरा कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस-संगठन के लिए कुछ ठोस सुझाव रखे। पहला सुझाव यह था कि चमत्कारी जन-ऊर्जा को प्रवाहमान बनाकर सही दिशा की ओर मोड़ने के लिए कांग्रेस के पास अनिवार्यतः एक अति अनुशासित स्वयंसेवक बल होना चाहिए। दूसरे स्वतंत्र भारत में राष्ट्र सेवा के लिए कांग्रेस को अफसरों का एक कैडर गठित करना चाहिए। सुभाष की धारणा थी कि कांग्रेस जन-संघर्ष का सर्वोच्च साधन है, इसलिए तीसरा सुझाव, उन्होंने यह दिया कि श्रमिक संघों एवं किसान संगठनों को कांग्रेस के आदर्शों और तरीकों का कायल करके और पार्टी शाखाओं के रूप में उन्हें सामूहिक मान्यता देकर (स्वाधीनता-संग्राम की) मुख्यधारा में ले आना चाहिए। इससे साम्राज्यवाद विरोधी एक विस्तृत मोर्चे की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा। चौथे सुभाषचन्द्र ने यह मत व्यक्त किया कि कांग्रेस के साम्यवादी और समाजवादी तत्त्वों को पार्टी में एक गुट के रूप में मान्यता प्रदान कर दिया जाए। इससे स्पष्ट समझौते के तहत यह गुट आचार-व्यवहार में समाजवाद पर अडिग रहेगा। पाँचवें, उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बढ़ाने और भारत की स्वतंत्र विदेश नीति विकसित करने की जबरदस्त पैरवी की।[1] उनका अभिमत था कि हमें ब्रिटेन के विरोधी राष्ट्रों से भारत को स्वतंत्र कराने में मदद लेनी चाहिए।

सुभाषचन्द्र का सुझाव था कि इंडियन नेशनल कांग्रेस यूरोप, एशिया, अफ्रीका और उत्तर, मध्य तथा दक्षिण अमरीका में अपने संदेशवाहक नियुक्त करें। खासतौर पर भारत के पड़ौसी देशों से निकट सम्बन्ध विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया – जैसे पर्शिया (पर्शियन एंपायर या फारस या (अब) ईरान), अफगानिस्तान, नेपाल, चीन, वर्मा, स्याम (थाईलैंड), मलय राज्य (मलय स्टेट्स या फेडरेशन ऑफ मलाया – मलय प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर के राज्यों का संघ, अब मलेशिया), ईस्ट इंडीज

(मलय द्वीपसमूह, प्रधानतः इंडोनीसियाई द्वीपसमूह)। सुभाष ने कहा– 'हमारा संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्यवाद से ही नहीं, विश्व-साम्राज्यवाद से भी है, जिसकी आधारशिला है ब्रिटिश साम्राज्यवाद। इसलिए, हम भारत के ही नहीं, मानवता के हित के लिए भी लड़ रहे हैं। भारत की स्वाधीनता का अर्थ है मानवता की रक्षा।'[२] हमें ब्रिटेन की साम्राज्यवादी सत्ता के विश्व गठजोड़ के खिलाफ अन्तिम संघर्ष करना चाहिए। इसके लिए देश की जनता को साथ लेना पड़ेगा।

हरिपुरा-अधिवेशन के तीन महीने के भीतर उन्होंने दिल्ली में कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया और फिर उद्योग मंत्रियों का एक और सम्मेलन बुलाया और भारत जैसे विपन्न देश को आर्थिक एवं औद्योगिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र बनाने के लिए योजना-निर्माण के महत्त्व की व्याख्या की। १९३८ के मध्य में उन्होंने कांग्रेस के तत्त्वावधान में एक राष्ट्रीय योजना समिति गठित करने का निश्चय किया और विख्यात वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों आदि से इस विषय में विस्तृत विचार-विमर्श करने लगे।

कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में अपने कामकाज तथा देशव्यापी दौरों के फलस्वरूप सुभाषचन्द्र ने नेतृत्व स्तर पर तरह-तरह के नए रुझानों तथा जन-मनोविज्ञान बनाम स्वाधीनता संग्राम के विषय में नया अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया।[३] देश के भ्रमण में भारत की बहुलक संस्कृति और अंग्रेजी सत्ता के प्रति विरोध का भी दिग्दर्शन किया।

लेकिन तीन ऐसे कारण मौजूद थे कि दक्षिण पंथी कांग्रेसियों को एक और कार्यकाल के लिए अध्यक्ष के रूप में सुभाषचन्द्र स्वीकार्य नहीं थे। पहला था, ब्रिटेन से किसी भी समझौते के विरोध को कड़ा बनाने का उनका अजस्र अभियान। दूसरे, उद्योगीकरण तथा औद्योगिक परियोजनाओं को राष्ट्रीय योजना समिति के अधीन रखने की उनकी पक्षधरता के चलते दक्षिण-पंथियों की उनसे दूरी; तीसरे, सितम्बर, १९३८ में, अंग्रेजों द्वारा हिटलर से नापाक म्यूनिख-सन्धि[४] करने के बाद यूरोप में युद्ध छिड़ने की अपरिहार्यता पर उनका विश्वास। यह परिदृश्य जनसाधारण को तो बहुत भा रहा था, लेकिन दक्षिणपंथी नेताओं को जरा भी पसन्द नहीं था – क्योंकि वे अपने मंत्रीपदीय एवं संसदीय क्रियाकलाप में व्यवधान नहीं चाहते थे। इस प्रकार सुभाष के अध्यक्षता काल के अन्त तक उनके और दक्षिणपंथी नेताओं के बीच दरार बहुत बढ़ गई थी। वे अपने कार्यक्रमों और नीतियों को जारी रखने के लिए आचार्य नरेन्द्र देव को कांग्रेस का अध्यक्ष बनवाना चाहते थे। गाँधी का आशीर्वाद पाकर, दक्षिण पंथियों द्वारा नामांकित पट्टाभि सीतारामैया उनके विरुद्ध मैदान में उतरे। चुनाव से पूर्व अखबारों के जरिए, सुभाष चन्द्र और वल्लभ भाई पटेल एवं अन्य दक्षिण पंथी नेताओं में गरमागरम वाद-विवाद हुआ। आखिर चुनाव में सुभाष २०० वोटों के बहुमत से साफ जीत गए।[५] इस चुनाव से सिद्ध यह हुआ कि देश भर में उनका कितना व्यापक और प्रभावशाली समर्थन है। गाँधी के नामित प्रत्याशी के हारने से अवाक् रह गए और सुभाष का समाजवादी रुझान उन्हें तनिक भी न भाया। चुनाव तक गाँधी जी चुप रहे, लेकिन चुनाव परिणाम घोषित होने पर उन्होंने स्वीकार किया कि सीतारामैया की पराजय मेरी पराजय है। इस पूरे घटनाक्रम से जवाहरलाल नेहरू स्पष्टतया अत्यन्त खिन्न थे, लेकिन प्रायः तटस्थ रहे। हालांकि सुभाष के विचार से यह तटस्थता विरोध का ही पर्याय थी।

ISSN 2250-2769

सन् १९३९ की मध्य फरवरी में सुभाष चन्द्र वर्धा आश्रम में गाँधी जी से मिलने गए, किन्तु गाँधी जी ने उनसे मिलने से मना कर दिया। उन्होंने निवेदन किया कि महीने के आखिर में होने वाली कार्यकारिणी समिति की बैठक स्थगित कर दी जाए। जवाब में अधिकांश सदस्यों ने कार्यकारिणी समिति से सामूहिक त्याग-पत्र दे दिया। जवाहरलाल नेहरू ने अलग से एक बयान जारी किया, जो त्याग-पत्र जैसा ही था।[६]

कांग्रेस-अधिवेशन मध्यप्रदेश में जबलपुर के निकट त्रिपुरी में शुरू मार्च में होने वाला था। डॉक्टरों की सख्त ताकीद थी कि सुभाष उसमें भाग न लें। उनके दोनों फेफड़ों को निमोनिया ने धर लिया था और उनका जल्दी स्वस्थ होना सम्भव नहीं था। लेकिन डॉक्टरों की हिदायत अनसुनी कर नवनिर्वाचित अध्यक्ष त्रिपुरी के लिए चल पड़ा। एम्बुलेंस से उन्हें रेलगाड़ी तक पहुँचाया गया, जबलपुर में स्ट्रेचर के सहारे उतारा गया और वहाँ से फिर एम्बुलेंस में अधिवेशन-स्थल, अध्यक्ष के शिविर तक ले जाया गया। परिजनों और डॉक्टरों का एक दल उनके साथ आया था। त्रिपुरी में उनका बुखार टूटने का नाम नहीं ले रहा था, फिर भी उन्होंने विषय समिति की बैठक में जाने की जिद की और मंच पर लेटे-लेटे ही बैठक का संचालन किया। राजनीतिक गतिविधियाँ जोरों पर थीं और पार्टी-गतिरोध खत्म करने के लिए विभिन्न धड़ों में श्रमसाध्य सुलह-वार्ता अनवरत चल रही थी। पुरानी कार्यकारिणी समिति का बहुमत अध्यक्ष से किसी भी तरह का समझौता या निपटारा करने का कड़ा विरोध कर रहा था। इसमें गाँधी जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष बाबू के साथ बहुत ही क्रूर मजाक किया। पूर्व कार्यसमिति के लोग सुभाष बाबू के विरोध पर उतारू थे और गाँधी मूकदर्शक बने रहे।[७]

घरेलू राजनीति के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट और असंदिग्ध रूप से कहा कि उनका सुनिश्चित मत है कि ब्रिटिश सरकार के समक्ष स्वराज का मुद्दा उठाने और भारत की राष्ट्रीय माँग अन्तिम चेतावनी के रूप में रखने का समय आ गया है। देशवासियों को उन्होंने विश्वास दिलाया कि ब्रिटिश सरकार इस समय लम्बे अरसे तक अखिल भारतीय सत्याग्रह जैसा विराट संघर्ष झेलने की हालत में नहीं है। उन्होंने आशा प्रकट की कि वर्तमान परिस्थितियों में हम केवल अपने मतभेद भुला दें, सारे साधन इकट्ठे कर लें और अपने-आपको पूरी तरह से राष्ट्रीय संघर्ष में झोंक दें, तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर अपने अभियान को विजयकारी बना सकते हैं। भाषण का समापन करते हुए उन्होंने स्वराज की ओर निर्णायक कूच की समुचित तैयारी कर लेने की जरूरत को रेखांकित किया।[८] इस पूरे संघर्ष में उन्होंने गाँधी का नेतृत्व और सहयोग माँगा, परन्तु गाँधी सुभाष चन्द्र द्वारा प्रस्तावित किसी भी आन्दोलन के खिलाफ थे।

गाँधी जी का आशीर्वाद प्राप्त कांग्रेस कार्य समिति के रूखे और असहयोगी व्यवहार से सुभाष चन्द्र को गहरा सदमा लगा, उन्होंने लिखा – 'त्रिपुरी के नैतिक दृष्टि से रुग्णकारी वातावरण के कारण वहाँ से चलते समय मन में जैसी घृणा और हताशा थी, वैसी पिछले १९ वर्षों में मैंने कभी महसूस नहीं की तिमिराच्छन्न मन के लिए मैं ज्योति-किरण की प्रार्थना कर लौटने लगा और साथ ही लौटने लगी मनुष्य और देशवासियों में मेरी आस्था। आखिर त्रिपुरी ही तो भारत नहीं है... मैंने जो कुछ भी वहाँ झेला, उसके बावजूद मैं मनुष्य में अपनी आधारभूत आस्था कैसे खो सकता हूँ? मनुष्य पर अविश्वास का अर्थ है

उसके भीतर समाए दैव पर अविश्वास – किसी के अस्तित्व पर ही अविश्वास। मैंने सोचा ये सब देव ही करा रहे हैं और मुझे भी तो कुछ करना होगा।'[९]

जामाडोबा में अपनी रोग-शैय्या से सुभाष ने गाँधी जी से लम्बा पत्र-व्यवहार किया। कार्यकारिणी समिति कांग्रेस-केबिनेट के सदस्य समान मतावलम्बी ही हों या विभिन्न विचारधाराओं के मिले-जुले प्रतिनिधि। अध्यक्ष का दृष्टिकोण था कि कार्यकारिणी में पार्टी की सभी प्रमुख विचारधाराओं को स्थान देना चाहिए, जबकि गाँधी जी का आग्रह था कि तमाम सदस्य एक ही दृष्टिकोण को समर्पित होने चाहिए। गतिरोध खत्म करने के लिए जवाहरलाल नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद ने जामाडोबा जाकर सुभाष चन्द्र से बातचीत भी की।[१०] उन्होंने सुभाष को गाँधी के अनुसार ही चलने का आग्रह किया, परन्तु सुभाष चन्द्र अंग्रेजी सत्ता से टकराने के मूड़ में थे, चाहे इसके लिए किसी की भी सहायता लेनी पड़े।

अप्रैल, १९३९ के अन्त में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक कलकत्ता में बुलाई गई। बैठक की पूर्वसंध्या पर कलकत्ता के पास सोदपुर में गाँधी जी और सुभाष चन्द्र में रूबरू बातचीत हुई। जवाहर लाल नेहरू और राजेन्द्र बाबू ने भी इसमें सहायक की भूमिकाएँ निभायीं। अन्ततः अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के खुले इजलास में सुभाष चन्द्र ने अध्यक्ष-पद से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने कहा– 'मैं अपना ही निवेदन दोहराना चाहूँगा कि वे (गाँधी जी) त्रिपुरी-कांग्रेस द्वारा सौंपे गए दायित्व का निर्वाह करें और कार्यकारिणी समिति मनोनीत करें... हमारा दुर्भाग्य रहा कि हर तरह से विचार-विमर्श के बावजूद.. महात्मा जी कार्यकारिणी समिति नामजद नहीं कर सके.. इसलिए, केवल सहायता की भावना से, मैं आपको अपना इस्तीफा सौंप रहा हूँ।' यह इस्तीफा सुभाष चन्द्र के जीवन के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय के अन्त तथा भारतीय स्वाधीनता की खोज में उनकी नई यात्रा के समारम्भ का प्रतीक था। गाँधी जी सुभाष से चिढ़ गए थे। वे उनके साथ किसी भी प्रकार के मान-मनव्बल के पक्ष में नहीं थे। वे सुभाष के प्रति बहुत कड़ा रूख अख्तियार कर चुके थे।[११]

१९३९ से बहुत पहले ही सुभाष इस बात के कायल हो चुके थे कि भारत को उस अन्तर्राष्ट्रीय संकट का भरपूर फायदा उठाना चाहिए, जो उनके अनुमान से आने ही वाला था। देश की जनता अंग्रेजों से लड़ने के लिए तैयार बैठी थी, बस कांग्रेस, गाँधी और सुभाष के संकेत भर की देर थी। दूसरी ओर गाँधी ब्रिटेन और जर्मनी के युद्ध में ब्रिटेन की सहायता देना चाहते थे। कांग्रेस के दक्षिणपंथी उनके दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे, हालांकि साधारण देशवासी बहुत बड़े पैमाने पर उनके समर्थक थे। सुभाष बाबू द्वारा फारवर्ड ब्लाक का गठन करने के मूल में उनकी दो अपेक्षाएँ थीं – एक, अपनी नीतियों के लिए वह कारगर ढंग से संघर्ष कर सकेगा और दूसरी, एक न एक दिन कांग्रेस के बहुमत को अपने दृष्टिकोण का मुरीद बना लेगा।[१२]

सुभाषचन्द्र के नेतृत्व में मई, १९३९ से, फारवर्ड ब्लाक का प्रचाराभियान पूरे जोरों पर था। जुलाई में, फारवर्ड ब्लाक के आह्वान पर कांग्रेस सदस्यों द्वारा कांग्रेसी मंत्रियों की सार्वजनिक आलोचना करने के लोकतांत्रिक अधिकार की माँग को लेकर देश भर में प्रदर्शन हुए। कांग्रेस के नए अध्यक्ष, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सुभाषचन्द्र को ये प्रदर्शन आयोजित करने से रोका, लेकिन सुभाष ने अध्यक्ष का वह

ISSN 2250-2769

आदेश जो कि उनके विचार से लोकतंत्र विरोधी था – मानने से इन्कार कर दिया। परिणामतः अनुशासनात्मक कार्यवाई के तहत उन पर तीन वर्ष के लिए कोई भी निर्वाचित पार्टी पद न स्वीकाराने की पाबन्दी लगा दी गई।[१३]

३, सितम्बर, १९३९ को मद्रास समुद्र-तट पर सुभाष चन्द्र बोस एक विशाल सार्वजनिक सभा को सम्बोधित कर रहे थे। तभी उन्हें सूचना मिली कि ब्रिटेन और जर्मनी में युद्ध छिड़ गया है। वहीं, बिना किसी लाग-लपेट के उन्होंने ऐलान किया कि भारत के सामने सुनहरा मौका मौजूद है और उसे अपनी मुक्ति के लिए अविलम्ब धावा बोल देना चाहिए।

महात्मा गाँधी ने यह वक्तव्य दिया कि – 'ब्रिटेन की इस संकट-वेला में भारत को उससे सहयोग करना चाहिए', जबकि सुभाषचन्द्र का तर्क था कि १९२७ से लेकर इंडियन नेशनल कांग्रेस के साल दर साल पारित प्रस्ताव भारत के उस शोषण का भी विरोध करते आए हैं, जो कि साम्राज्यवादी मोर्चों पर ब्रिटेन के उलझने से उसके अपने लाभ के लिए होता रहा है। इस प्रकार भारतीय इतिहास के एक अत्यन्त निर्णायक मोड़ तक पहुँचकर हमारी राष्ट्रीय मुख्यधारा दो विरोधी वैचारिक धाराओं में बहने लगी।[१४]

अक्टूबर, १९३९ में, नागपुर में साम्राज्यवाद-विरोधी सम्मेलन आयोजित किया गया। मार्च, १९४० में फारवर्ड ब्लाक तथा सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व वाली किसान सभा को सम्बोधित करते हुए सुभाषचन्द्र ने कहा[१५] – 'भारत में हम एक गतप्राय युग का पटापेक्ष कर रहे हैं, जबकि एक नए युग प्रभात का अभिनन्दन भी कर रहे हैं। साम्राज्यवादी युग का अन्त हो रहा है और स्वाधीनता, लोकतन्त्र तथा समाजवादी युग धुंधलके में से फूट रहा है। यह संकट राष्ट्र के नेतृत्व की सर्वोच्च परीक्षा है। वर्तमान संकट ने हमारी अपनी नेतृत्वशीलता की परीक्षा ली है और दुर्भाग्यवश यह त्रुटिपूर्ण साबित हुई है। वर्तमान संकट का सबसे दुखद प्रपंच यह है कि वे लोग भी विघटन के शिकार हैं, जिन्हें अभी तक हम वामपंथी समझते थे। इस दौर में हमारा प्रमुख कार्य है – साम्राज्यवाद का अन्त करना और भारतवासियों की राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करना। स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का युग शुरू होगा और वह होगा हमारे आन्दोलन का समाजवादी दौर।' नागपुर से कलकत्ता लौटते हुए सुभाष गाँधी जी से मिलने सेवाग्राम भी गए जो दोनों की आखिरी मुलाकात साबित हुई। गाँधी जी ने कहा कि यदि सुभाष अपने तरीकों से देश को आजादी दिला सके तो उसका अभिनन्दन करने वाले वे पहले व्यक्ति होंगे।[१६]

रविन्द्रनाथ ठाकुर उनके निकट समर्थक थे। उनकी प्रशंसा में उन्होंने 'देशनायक' शीर्षक एक मानपत्र भी लिखा था। कवीन्द्र सुभाष से कहते हैं – 'मैं उस पौ को फूटते देखता हूँ जिसमें तुम्हारी राजनीतिक साधना शुरू हुई थी। उस अनिश्चय भरे धुंधलके में मेरे मन में आशांकाएँ थीं और मैं यह स्वीकाराने से झिझकता रहा था कि तुम आज की स्थिति तक पहुँचोगे। आज तुम मध्यान्ह के उस निर्मल आलोक में उद्भासित हो रहे हो जिसमें शंकाओं का प्रवेश निषिद्ध है। इन वर्षों में तुमने विविध अनुभव मानसिकता और अदम्य जीवन-शक्ति प्राप्त की है। कारावासों, निर्वासनों और रोगों ने तुम्हारी क्षमताओं को विस्तार दिया, जिससे तुम्हारी दृष्टि व्यापक हुई और तुम क्षेत्रीय संकीर्णताओं से परे रहकर इतिहास के

ISSN 2250-2769

विराट परिप्रेक्ष्य को हृदयंगम कर सके। मुझे लगता है, तुम अपनी मातृभूमि के लिए नई रोशनी और उम्मीद के संदेश वाहक बनकर आए हो।'[१७]

१६३६ में सुभाष को जब कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से मजबूरन त्याग-पत्र देना पड़ा तो उनके ख्याल से, राष्ट्रहित के नाते भारत में स्थितियाँ कुछ ऐसी थीं : दक्षिणपंथी कांग्रेसी तथा महात्मा गाँधी जन-संग्राम छेड़कर अंग्रेजों के सामने डट जाने के एकदम अनिच्छुक थे। उन्होंने कृत संकल्प और ठोस कार्यवाई द्वारा कथनी को करनी में ढालने के लिए तैयार नहीं हैं। अब सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेसी और वामपंथी नेताओं के चाल और चरित्र को समझ गए थे, फलतः अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए वे विदेश जाना चाहते थे। अपने कुछ निकट मित्रों को इशारा किया कि वे सोवियत संघ और यूरोप जा निकलने के लिए गुप्त रूप से स्वदेश छोड़ सकते हैं। भारत रक्षा कानून (डिफेंस ऑफ इंडिया रूल्स) के तहत गिरफ्तार करके कलकत्ता की प्रेजीडेंसी जेल में डाल दिया गया। कारावास के दौरान उन्हें पूर्व बंगाल के ढाका निर्वाचन क्षेत्र से केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेंबली का सदस्य चुना गया।[१८]

तभी द्वितीय विश्व युद्ध के आसार बन गए। सुभाषचन्द्र का दृढ़ विश्वास था कि यह युद्ध ब्रिटिश-साम्राज्य को तहस-नहस कर देगा, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवादी बिना लड़े भारतीयों को सत्ता नहीं सौंपेंगे। भारत अपनी आजादी की लड़ाई को युद्ध-संकट के दौरान सक्रिय रूप से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश करके ही जीत सकता है। उन्होंने महसूस किया कि जब इतिहास कहीं और रचा जा रहा हो तो यहाँ जेल में निष्क्रिय पड़े रहना एक लज्जाजनक राजनीतिक भूल होगी। उन्होंने कहा – इससे बड़ी सांत्वना क्या हो सकती है कि कोई सिद्धान्त की खातिर ही जिया और मर गया?... लक्ष्यवेदी पर शान्तिपूर्ण आत्मबलिदान से बढ़कर उसके जीवन की परमगति क्या हो सकती है?[१९]

मुक्त होते ही सुभाष भारत से निकलने की योजना बनाने लगे। इस अन्तराल में गाँधी जी से उनका अन्तिम पत्र-व्यवहार हुआ। जिसमें उन्होंने गाँधी जी से आग्रह किया कि – बापू कोई तो आन्दोलन शुरू किया जाए। पर गाँधी सुभाष के साथ कोई आन्दोलन नहीं करना चाहते थे। गाँधी जी ने जवाब दिया कि उन दोनों के मतभेद बुनियादी हैं और जब तक दोनों में से कोई एक-दूसरे के रंग में नहीं रंग जाता, तब तक दोनों के रास्ते अलग-अलग ही होने चाहिए।[२०] इस वार्ता ने सुभाष बाबू को गाँधी से और गाँधी से सुभाष को मुक्त कर दिया। अहिंसा के पुजारी ने कुल के उत्साही बालक को अपने से मुक्त कर दिया।

फलतः सुभाष बाबू अंग्रेजों से लड़ने के वैकल्पिक मार्ग पर निकल पड़े। खूब बारीकी और ब्योरों सहित, एकदम चुपचाप घर से निकल जाने के सभी मुमकिन तरीकों पर उन्होंने शिशिर से मंत्रणा की। तय हुआ कि शिशिर एक रात चुपके से उसे कार में बिठाकर किसी रेलहेड तक छोड़ आएगा। जहाँ से वे पेशावर की ट्रेन पकड़ लेंगे। चाचा-भतीजे ने कई वैकल्पिक योजनाओं पर भी बड़ी सावधानी से विचार-विमर्श किया और अन्त में बड़ी हद तक एक निर्दोष योजना पर सहमति हो गई।[२१] शिशिर से कहा गया कि सुभाष की युवा भतीजी इला को भी उनके गुप्त प्रस्थान की जानकारी होगी। घर में यह कहकर जाया जाएगा कि सुभाष एक निश्चित अवधि के धार्मिक एकान्तवास पर निकल रहे हैं। इस बीच तार

ISSN 2250-2769

पाकर, मियाँ अकबर शाह पेशावर से कलकत्ता आ गया। कलकता से गुप्त प्रस्थान की निर्धारित तिथि १६ जनवरी, १६४१ से दो दिन पहले सुभाषचन्द्र ने घरवालों से कहा कि कुछ दिनों के लिए वे एकान्तवास में जा रहे हैं।

अन्ततः १७ जनवरी, १६४१ की रात करीब ०१:३० पर जब मैदान साफ दिखा तो सुभाष चन्द्र को कार में बैठाकर शिशिर सफाई से निकल गया। उस वक्त सुभाष गहरी भूरी शेरवानी, खुला पाजामा, फीतेदार यूरोपियन जूते और सिर पर रुएंदार काली अस्तरखानी टोपी पहने हुए थे। घर से बाहर निकलकर शिशिर ने जान-बूझकर दक्षिण की राह पकड़ी, क्योंकि सम्भव था कि दूसरी तरफ मुफ्ती में सुभाष की निगरानी पर तैनात पुलिसकर्मी कार के आने से चौकन्ने हो गए हो। जगमगाती चाँदनी में ग्रांड ट्रंड रोड़ की राह पर चाचा-भतीजे की कार की यात्रा बड़ी रोमांचक थी। भोर-वेला आसनसोल में उन्होंने कार में पेट्रोल डलवाया। १७ जनवरी, १६४१ को ६:०० बजे वे सीधी-सादी राह से अलग, धनबाद के निकट, बराड़ी नामक स्थान पर पहुँचे। आधी रात के काफी बाद दिल्ली-कालका मेल, गोमो स्टेशन पहुँची। सुभाष ने स्वयं अपना टिकट खरीदा, फर्स्ट क्लास में सवार हुए और अकेले अपनी राह पर चल दिए।[२२]

पेशावर स्टेशन के गेट पर खड़े, बाहर निकलते हर यात्री को ध्यान से देखते अकबर शाह ने आखिर अलग से नजर आते एक भलेमानस मुस्लिम को पहचान ही लिया। अकबर ने फुस-फुसाकर उन्हें तांगा पकड़ने को कहा। रास्ता बदलकर फिर वह उन्हें ताजमहल होटल ले गए। आबद खान के यहाँ उन्हें पठानों के समाजी दस्तूर और रस्मों-रिवाज सिखाए गए, ताकि उनका सामाजिक और सार्वजनिक व्यवहार निर्दोष रहे। पुरानी वेशभूषा के बदले उन्हें कुल्लेदार पगड़ी सहित विशुद्ध पठानी लिबास दिया गया।[२३]

सुभाष चन्द्र को अफगानिस्तान ले जाने के लिए सबसे छोटा, मगर सबसे दुरूह रास्ता चुना गया था। उन्हें दुर्गम पहाड़ियाँ भी चढ़नी पड़ीं, जिन पर जगह-जगह बर्फ जमी हुई थी। अगली दो रातें उन्होंने रास्ते में पड़ने वाले छोटे-छोटे गाँवों में काटीं। २८ जनवरी को आधी रात के काफी बाद उन्होंने अफगान क्षेत्र के पहले गाँव में कदम रखें। ३१ जनवरी, १६४१ को सुबह ११:०० बजे वे काबुल पहुँच गए।[२४] इस बीच कभी रूसी और इतालवी दूतावासों के माध्यम से अफगानिस्तान से निकलने की कोशिश करने लगे।

काबुल से उनके वास्तविक प्रस्थान से प्रायः एक हफ्ता पहले, श्रीमती कारोनी एक जरूरी सन्देश लेकर उत्तमचन्द की दुकान पर आयीं। मैजोटा के असली परिपत्र पर मैजोटा की जगह सुभाष की फोटो चिपकाई गई। उनके लिए कपड़े जुटाए गए। गूंगे-बहरे पठान की जगह अब उन्होंने एक इतालवी कूटनीतिज्ञ का भेष बनाया। १७ मार्च को सुभाष चन्द्र इतालवी दूतावास के मिस्टर क्रेसिनी के निजी आवास में रहने चले गए और अगले दिन सुबह वे तीन जर्मनों के साथ, कार से, सोवियत सीमा की ओर चल दिए। हिन्दुकुश के दर्रो से ऊपर चढ़ते और हरे-भरे विस्तृत मैदान लाँघते, दो रातें उन्होंने जर्मन मेजबानों के यहाँ बितायीं। ऑक्स पार करके अफगान सीमान्त चौकी से वे सीधे समरकन्द पहुँचे। समरकन्द से रेलगाड़ी द्वारा मास्को आए और वहां से अप्रैल १६४१ के शुरू में हवाई जहाज द्वारा बर्लिन पहुँच गए।[२५] अफगानिस्तान में उनके अंग्रेजी जासूसों से पकड़े जाने का खतरा था। फलतः एक पखवाड़ा

बहुत कठिनाई में निकला। फिर काबूल से मास्को तक का सड़क-मार्ग बहुत कठिन था, परन्तु इस मातृभूमि को मुक्त कराने के उद्देश्य से यह कठिन मार्ग उन्होंने चुना।

सुभाष चन्द्र बोस की वैचारिक प्रतिबद्धता दो सम्पूरक तत्त्वों का मिश्रण थी – सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता और इसकी प्राप्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग। उनके मन में यह धारणा घर कर गई की भारतीय कांग्रेस का अग्रिम नेतृत्व और गाँधी क्रान्ति के लिए तैयार नहीं थे और उनके निकट सहयोगी अंग्रेजी हुकूमत से जूझने के इच्छुक नहीं हैं। तीसरी बात वे भारत के सशस्त्र सैनिकों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काना चाहते थे, जिस पर ब्रितानी हुकूमत टिकी हुई थी। दूसरी ओर गाँधी भारतीय सेना और पुलिस की सहायता अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं लेना चाहते थे। सुभाष बाबू चाहते थे कि इस अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध वेला में भारतीय सेना की राजभक्ति को ध्वस्त किया जाए और उनमें स्वतंत्रता और भारत-भक्ति का भाव भरा जाए। बर्लिन पहुँचते ही उन्होंने जर्मनी सरकार के सामने 'फ्री इंडियन गवर्नमेंट' की स्थापना का प्रस्ताव दिया। जर्मन की सरकार उन्हें आर्थिक सहायता के रूप में ऋण दे, जो आजाद भारत चुकता कर देगा। लेकिन सुभाष के ज्ञापनों का जर्मन विदेश विभाग ने शीघ्र और अनुकूल उत्तर नहीं दिया, अतः वे उन दृढ़निश्चयी भारतीयों को संगठित करने में जुट गए, जो या तो जर्मनी में अथवा अन्य यूरोपीय देशों में निर्वासन काट रहे थे या फिर छात्र थे। मैत्रीपूर्ण सम्पर्क स्थापित करने तथा अपने अनुयायी वर्ग में वृद्धि की दृष्टि से उन्होंने इटली, फ्रांस तथा आस्ट्रिया आदि देशों के दौरे भी किए।[२६] जेलों के अन्दर जाकर अंग्रेजी सरकार के सैनिकों से मिले।

एडम वान ट्राट डिप्टी अलैक्जैंडर वर्ट ने भी इंग्लैंड में बैरिस्टरी की थी और भारत के प्रति गहरी सहानुभूतिपूर्ण रुचि रखता था। ये दोनों ही सुभाष के अन्तरंग मित्र बन गए। सुभाष चन्द्र की मदद से जर्मन सरकार के आला अफसरों को भारतीय स्वाधीनता संग्राम से परिचित कराना और उनमें कइयों के भीतर एशियाई जनता के प्रति मौजूद जातीय पूर्वाग्रहों को दूर करना – इन्हीं दोनों सज्जनों का काम था।

सन् १९४१ के मध्य से एक नया कारक सुभाष के हक में आ खड़ा हुआ। भारतीय निर्वासित जन बड़ी संख्या में जर्मनी में शरण लेते रहे थे और उत्तरी अफ्रीका में भारतीय युद्ध बन्दी भी ताँता लगाए रहते थे। सूचना विभाग में बहुत जल्द एक 'वर्किंग ग्रुप ऑफ इंडिया' गठित किया गया, जिसे अन्ततः 'स्पेशल इंडिया डिपार्टमेंट' बनाकर वान ट्राट और वर्ट के सीधे नियन्त्रण में दे दिया गया। जर्मन सैनिक कमान में सुभाषचन्द्र की मित्रमंडली विशाल होती गयी। उन्हें महसूस हुआ कि यह शख्स असाधारण इच्छाशक्ति रखता है और इसकी चारित्रिक अखंडता तथा ईमानदारी असंदिग्ध है।[२७]

१९४१ के अन्त में बर्लिन में वे 'फ्री इंडिया सेंटर' स्थापित करने में सफल हो गए। इसमें उनके अत्यन्त कुशल एवं निष्ठावान सहयोगियों में से कुछ थे – ए.सी.एन. नांबियार, एन.जी. गणपुले, आबिद हसन, एन.जी. स्वामी, एम.आर. ब्यास तथा गिरिजा मुखर्जी। 'फ्री इंडिया सेंटर' को विदेशी दूतावास का दर्जा दिया गया और इसके तमाम सदस्य विदेशी कूटनयिकों को मिलने वाली सभी सुविधाओं के हकदार थे।

'फ्री इंडिया सेंटर' ने स्वाधीन भारत के सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्गठन के लिए एक योजना आयोग भी बनाया था। कांग्रेसी तिरंगे पर उभरवां नक्काशी में छलांग लगाते शेरवाला अपना अधिचिन्ह घोषित किया और सेंटर ने 'वन्दे मातरम्' को भारत का राष्ट्रगान घोषित किया और आधुनिक भारतीय इतिहास में पहली बार समूचे देश के साझे और लोकप्रिय अभिवादन 'जय-हिन्द' का रिवाज शुरू हुआ। सुभाष चन्द्र को अब 'नेताजी' की उपाधि दी गयी, जो स्नेह और सम्मान की मिली-जुली अभिव्यक्ति थी। सुभाष चन्द्र के रेडियो-प्रसारण शुरू हुए। अपने पहले प्रसारण में उन्होंने देशवासियों से कहा था 'भारत की मुक्ति का समय आ पहुँचा है। भारत उठेगा और गुलामी की उन जंजीरों को काट फेंकेगा जो एक जमाने से उसे जकड़े हुए हैं। भारत की मुक्ति के रास्ते ही एशिया और विश्व के अन्य देश मानव-मुक्ति के वृहत्तर लक्ष्य की ओर आगे बढ़ेंगे।'[२८]

चमत्कारी विजय-अभियान के फलस्वरूप फरवरी, १९४२ में सिंगापुर पर कब्जा कर लिया गया। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में इस सबसे एक नए सूर्य का उदय हुआ। नेताजी तत्काल पूर्व जाकर और सशस्त्र बल का गठन करके पूर्वी सीमा से भारत में घुसने की सोचने लगे। मई, १९४२ में उन्होंने जर्मन विदेश कार्यालय को लिखा : "वक्त आ गया है कि भारत के राजनीतिक उद्धार के लिए निर्णायक प्रयास किया जाए। इन सबका का जायजा लेने और उनका खाका बनाने में सुभाष बाबू व्यस्त हो गए। जब सुभाष बाबू जर्मन पनडुब्बी से सिंगापुर जा रहे थे तो शत्रुपक्ष का एक मालवाहक जहाज नजर आ गया और पनडुब्बी में धावा बोलने के आदेश गूँजने लगे। कुछ ही पलों के अन्तर से पनडुब्बी का सर्वनाश टल सका। लेकिन सुभाष बाबू तब भी अपना कार्य करते रहे। पनडुब्बी के कप्तान ने अपने सदस्यों से कहा कि इस भारतीय अतिथि से सीखो कि संकट में धैर्य कैसे धारण करते हैं। स्वाभाविक है कि सब डर गए थे लेकिन आबिद हसन ने देखा कि सुभाष बाबू अपनी योजना बनाने में तल्लीन थे।[२९]

जापानी पनडुब्बी से जर्मन पनडुब्बी का मिलन दक्षिण-पश्चिमी मैडागास्कर से करीब ४०० नाटिकल मील दक्षिण में, मोजांबिक चैनल में तय था। भोर होते-होते समुद्र इतना क्षुब्ध हो उठा कि दोनों पनडुब्बियों का एक-दूसरे के निकट आना असम्भव हो गया। जर्मन रबड़ के बेड़े पर सवार हुए और नाव खींचने वाली एक मजबूत रस्सी' से कांटा डालकर पनडुब्बी को घसीटने लगे। नेताजी और आबिद इस रस्सी से चिपके-लटके, आसमान बेधती लहरों और घात लगाए शार्क मछलियों के बीच से, इंच-इंच सरकते हुए जर्मन पनडुब्बी से रबड़ के बेड़े (रबड़ राफ्ट) पर पहुँचे और फिर जापानी पनडुब्बी पर। यह अदल-बदल २४ अप्रैल, १९४३ को हुई थी, जिसकी रेडियो-सूचना तत्काल बर्लिन को दे दी गई।[३०]

यात्री सुमात्राई समुद्र-तट से दूर, उत्तर में, अलग-थलग टापू साबांग पर उतार दिए गए थे। साबांग में नेताजी और आबिद को संगरोधक-क्वैरंटाइन-टीके लगाकर कुछ दिन आराम कराया गया, फिर १३ मई, १९४३ को हवाई जहाज से टोकियो पहुँचाया गया। दोनों वहाँ के प्रसिद्ध इंपीरियल होटल में ठहराए गए। नेताजी ने जापानी प्रधानमंत्री तोजो से शिखर-वार्ता की तैयारी में पूरा एक महीना बिताया। मध्य जून, १९४३ में दोनों की पहली मुलाकात में प्रधानमंत्री तोजो पर 'बोस का जादू' पूरी तरह छा गया और उसने नेताजी की अधिकांश माँगे मान लीं।[३१] नेताजी ने जापान में अपनी मौजूदगी जग-जाहिर कर

दी। यह खबर सुनकर एशिया भर के भारतीय रोमांचित हो उठे और दुश्मन के खेमे में भारी बेचैनी छा गई। नागरिक-रेडियो पर प्रसारित अपने उत्प्रेरक भाषण में उन्होंने पूर्व-एशिया के भारतीयों से देश के आगामी स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने और सम्पूर्ण समर्थन देने का आग्रह किया। प्रसारण में उन्होंने कहा – 'स्वदेश में हमारे देशवासी तथा बहन-भाई मौजूदा हालात से भरसक जूझ रहे हैं, लेकिन शत्रु निर्मम है और उन्मत्त है, और ऐड़ी से चोटी तक हथियारबन्द है। ऐसे पशुवत शत्रु के मुकाबले किसी भी स्थिति में सविनय अवज्ञा या अन्तर्ध्वंस या क्रांतिकारी आतंकवाद का कोई परिणाम नहीं होगा। वह तलवार खींच चुका है, इसलिए हमें भी तलवार से ही मुकाबला करना होगा। लेकिन स्वदेश में लोगों के लिए सशस्त्र विद्रोह संगठित करके आधुनिक शस्त्रों से लैस, जबरन काबिज ब्रिटिश फौज से भिड़ना सम्भव नहीं है। इसलिए यह काम भारत के बाहर बसे, खासकर पूर्व-एशिया में बसे भारतीयों को अपने जिम्मे ले लेना चाहिए। वक्त आ चुका है, और हर देश प्रेमी भारतीय को संग्राम-स्थल की ओर चल ही देना चाहिए। स्वतंत्रता प्रेमी भारतीयों का खून बहने पर ही अब भारत स्वतंत्र होगा।'[३२]

भारत के दक्ष क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस के साथ ३ जुलाई, १९४३ को सिंगापुर पहुँचने पर आज़ाद हिन्द फौज – इंडियन नेशनल आर्मी के अफसरों और इंडियन इंडिपेंडेंस लीग के सदस्यों ने नेताजी का उत्साहपूर्ण स्वागत किया। इसके बाद नेताजी अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने हेतु अपनी आजाद हिन्द फौज के विस्तार और मजबूती में लग गए।

निष्कर्ष

सुभाष चन्द्र बोस का प्रयास बहुत बड़ा था। उनका जर्मनी की अपराजेयता पर विश्वास हालांकि ठीक नहीं था। किन्तु अंग्रेजों को भारत से तत्काल भगाने का इनका जज्बा बहुत बड़ा था। वे अंग्रेजों को तुरन्त भारत से भगाना चाहते थे, चाहे इसके लिए उन्हें किसी से हाथ मिलाना पड़े। अमेरिका के युद्ध में शामिल होने और गांधी के सहयोगियों और समर्थकों द्वारा ब्रिटेन की सहायता से युद्ध का पासा पलट गया और जर्मनी, जापान, इटली हार गए। इसी बीच नेताजी का १८ अगस्त, १९४५ को विमान दुर्घटना में मृत्यु की खबरें फैली। फिर भी हम नेताजी के जज्बे और भारत के लिए उनके समर्पण को नमन करते हैं।

सन्दर्भ :

१. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, एन.बी.टी., नई दिल्ली, १९९६, पृ. ७५

२. वही, पृ. ७६

३. लियोनार्ड ए. गोर्डन, ब्रदर्स एगेंस्ट राज, नई दिल्ली, पृ. ३३६

४. टेक्स्ट इन लीग ऑफ नेशन ट्रीटी सरीजी, वॉल्यूम २३, पृ. १६४-१६९ (म्यूनिख सन्धि, जिसमें तीसरा पक्ष फ्रांस था के तहत हिटलर को प्रसन्न रखने के लिए चेक सूदेतनलैंड नात्सी जर्मनी को सौंप दिया गया था। इसमें यूरोपीय बड़ी शक्तियों ने हिटलर से शांति खरीदी थी।)

५. लियोनार्ड ए. गोर्डन, पूर्वोद्धृत, पृ ३७५

६. वही

७. वही, पृ. ३७६

ISSN 2250-2769

८. वही, पृ. ३७८

६. वही, पृ. ३७६

१०. वही, पृ. ३८४

११. वही, पृ. ३८६

१२. शिशिर कुमार बोस, पूर्वोद्धृत, पृ. ८४

१३. वही, पृ. ८५

१४. वही, पृ. ८६

१५. लियोनार्ड ए. गोर्डन, पूर्वोद्धृत, पृ. ४०६

१६. शिशिर कुमार बोस, पूर्वोद्धृत, पृ. ८६

१७. वही,

१८. लियोनार्ड ए. गोर्डन, पूर्वोद्धृत, पृ. ४१५

१६. शिशिर कुमार बोस, पूर्वोद्धृत, पृ. ६४

२०. लियोनार्ड ए. गोर्डन, पूर्वोद्धृत, पृ. ४१६

२१. वही, पृ. ४२१

२२. वही, पृ. ४२३

२३. वही

२४. वही, पृ. ४२४
या अखसूस। यह हिन्दुकुश से उतरकर आराल सागर में गिरने वाली १५०० मील लम्बी नदी-आमू दरिया का प्राचीन नाम है।

२५. वही, पृ. ४४२

२६. शिशिर कुमार बोस, पूर्वोद्धृत, पृ. १०१-१०२

२७. वही, पृ. १०२

२८. वही, पृ. १०

२६. वही, पृ. १०५
उन दिनों ऐसी रस्सियाँ हैंप नामक पौधे के तने से प्राप्त रेशों से बनाई जाती थीं। हैंप भांग वनस्पति का समकक्ष है। कई बार हैंप की रस्सी को सन की रस्सी भी लिखा बताया गया है। जर्मनों ने यहाँ 'हैंप की रस्सी' इस्तेमाल की है।

३०. वही, पृ. १०८

३१. वही, पृ. १०६

३२. वही, पृ. ११०

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
पूर्वी एशिया एवं बृहत्तर भारत अध्ययन कार्यक्रम
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली

ISSN 2250-2769

सुभाष चन्द्र बोस : मानवता एवं राष्ट्र सेवा

डॉ. शिव भारद्वाज

शोध सांराश

सुभाष चन्द्र बोस का सम्पूर्ण जीवन भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को विजयशाली बनाने के लिए अहर्निश संघर्षरत रहा है। वह भारतीय अध्यात्म, धर्म, दर्शन, सेवा समर्पण तथा राष्ट्रीय भाव से ओत-प्रोत थे। भारत में ब्रिटिश सत्ता सदा सुभाष चन्द्र बोस से भयभीत रहती थी। उन्हें राष्ट्र की सेवा के समक्ष ब्रिटिश कलेक्टर की नौकरी अति-तुच्छ लगती थी। गरीबों की मदद करना, उनकी शिक्षा पर ध्यान देना, उनके स्वास्थ्य और उन्नति के लिए अथक श्रम करना अपना परम सौभाग्य मानते थे। अपने सम्पूर्ण ज्ञान का श्रेय उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को दिया। स्वामी विवेकानन्द का रास्ता वे अपना रास्ता मानते थे। उन्होंने निर्भयता, साहस, धैर्य, सम्पूर्ण समर्पण और सेवा की प्रेरणा विवेकानन्द साहित्य से प्राप्त की। यह शोध पत्र सुभाषचन्द्र बोस के जीवन में मानव सेवा, समाज सेवा तथा राष्ट्रोत्थान जीवन ध्येयपथ पर चलने की अभिव्यक्ति व परिणामों पर आधारित है।

संकेत शब्द : *ध्येयपथ, आध्यात्मिक, सेवा, धर्म, मानवता, राष्ट्र, सामाजिक, हैजा, काली।*

सुभाष चन्द्र बोस ने अपने परिवार को मध्यवर्गीय कहा है। परिवार में उन्होंने आर्थिक अभाव कभी नहीं देखा, यद्यपि परिवार बड़ा क्यों नहीं था। परिवार में सब प्रकार की सुविधा होते हुए भी माता-पिता ने बच्चों की परवरिश में सादगी का व्यवहार रखा। सुभाष का मानना था कि बड़े परिवार के अनेक अवगुणों के बाद भी, सामाजिकता का पक्ष बड़े परिवार का सदगुण है। बड़े परिवार में कोई न कोई धार्मिक व समाजिक उत्सवों का आयोजन होते रहना, व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार में सहायक होता है। ऐसे संस्कार सुभाष को बाल्यावस्था में परिवार से ही प्राप्त होते रहे। उनके पिता जानकीदास बोस भी सामाजिक कार्य में विशेष रूचि रखते थे। उड़ीसा में सरकारी वकील, बंगाल परिषद के सदस्य और 'रायबहादुर' की उपाधि प्राप्त होने के कारण उनका सामाजिक दायरा बहुत व्यापक था। नगरपालिका तथा जिला बोर्ड जैसी संस्थाओं से उनका संबन्ध था तथा विक्टोरिया स्कूल तथा कटक यूनियन क्लब जैसे शैक्षणिक एवं सामाजिक संगठनों में वे सक्रियता से कार्य करते थे। वे अत्यंत दानशील थे और गरीब विद्यार्थियों को उनसे नियमित सहायता मिलती थी। उनकी सेवा का अधिकांश समय उड़ीसा में व्यतीत हुआ, जिसके कारण अन्य कार्यों के साथ चिकित्साल्य और पुस्तकालय का खोलना भी उनकी रूचि का विशेष कार्य था।[1] मां धर्मपरायण गृहणी थी, जो सुशील व्यक्तित्व वाली सुलझी हुई महिला और पारिवारिक दायित्वों के प्रति चौकस थी। इसलिए सुभाष में ये सब गुण परिवारिक पृष्ठभूमि से प्राप्त हुए। परन्तु, जैसा सुभाष चन्द्र बोस को भारत और दुनिया ने देखा, वह बचपन में एक एकदम भिन्न संकोची

ISSN 2250-2769

और अपने को नितांत नगण्य जैसा अनुभव करता थे। स्वतन्त्रता समर के इस महान नेता का सम्पूर्ण जीवन रहस्यमयी रहा है और कब, क्यों, कहां, कैसे आदि प्रश्न जन्म से अब तक उनके बारे रहे हैं।[२]

प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल पहला प्रान्त था, जहां अंग्रेजों ने अपनी सत्ता को स्थापित किया, इसलिए उनके अत्याधिक अत्याचारों का सामना भी बंगालवासियों को ही करना पड़ा। सुभाष चन्द्र बोस के बाल्यकाल में जहाँ बंगाल राष्ट्रवादी व क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र बन चुका था, वहीं सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन का संकम्रणकाल था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव स्वाभाविक रूप से बंगाल में सबसे अधिक पड़ा। अंग्रेजी शिक्षा का स्वागत् और विरोध दोनों बंगाल में देखा जा सकता है। बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ ही यह विमर्श का एक बड़ा केन्द्र बन गया। इसके संस्थापक राजा राममोहन राय थे। इनका प्रभाव महर्षि देवन्द्र नाथ ठाकुर, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा केशवचन्द्र सेन आदि सब लोगों पर देखा जा सकता है। यह भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण का काल था। भारतीय समाज सुधार के अनेक कार्य प्रारम्भ हुए थे, जिनका अधिकांश श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है। वे सर्वात्मवाद से प्रभावित थे, जिसमें अपने धर्म की रूढ़ियों में सुधार लाना और दूसरे धर्म में जो अच्छी बातें हैं उनका उपयोग करना, उसके राजा राममोहन राय प्रतीक बन चुके थे।[३] यहां पर पश्चिम संस्कृति और भारतीय संस्कृति, शिक्षा और संस्कार दो में से किस को श्रेष्ठता व महत्व मिले, इस पर द्वंद की स्थिति उत्पन्न हो गई। फिर पश्चिम शिक्षा और संस्कृति से प्रेरित विचारों को महत्व मिलने लगा, क्योंकि इसका नेतृत्व राजा राममोहन राय कर रहे थे। सुधारवादी चिंतकों पर यह एक बड़ा प्रश्न था कि क्या उन्होंने सही मार्ग को चुना है? दूसरे विकल्प देने का कार्य युवा सन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने किया। उन्होंने विदेशी शिक्षा और संस्कृति का विरोध कर भारतीय प्राचीन परम्परा और इतिहास के अज्ञान के अभाव में पनपे विदेशी शिक्षा और संस्कृति पर अपना अकाट्य प्रहार किया। स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि हमने भारत के प्राचीन इतिहास से प्रेरणा लेना बन्द कर दिया है, वही हमारी दासता, देन्यता और पराजय का कारण बना। रामकृष्ण परमहंस ने सभी धर्मो की मूलभूत एकता का और धर्म-कर्म के आपसी विद्वेष की समाप्ति का उपदेश दिया। उन्होंने ब्रह्म समाज की अत्याधुनिकता की नकल की प्रवृति का विरोध किया। स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी रामकृष्ण मिशन की स्थापना के साथ ही विशुद्ध हिन्दू धर्म का प्रचार किया। उन्होंने भारत की नव-संतति में अपने अतीत के प्रति गर्व करने, भविष्य के प्रति विश्वास और स्वयं में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की भावना फूंकने का यत्न किया। यद्यपि स्वामी विवेकानन्द ने कोई राजनीतिक विचार नहीं दिया तथापि हर व्यक्ति जो उनके संपर्क में आया या जिसने उनके लेखों को पढ़ा वह देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत हो गया और स्वतः ही उसमें राजनीतिक चेतना पैदा हो गई। बंगाल में स्वामी विवेकानन्द को आधुनिक राष्ट्रवादी आन्दोलन का जनक माना जा सकता है।[४] सुभाष को जब अपने जीवन के लिए सही मार्ग की आवश्यकता महसूस हुई तो उन्हें अपने लिए सही मार्ग स्वामी विवेकानन्द के जीवन दर्शन में दिखाई दिया।

स्कूल में सुभाष को उनके अध्यापक बाबू बेनीप्रसाद ने प्रभावित किया।[५] सुभाष को उनसे शिक्षा मिली – 'मनुष्य जीवन में नैतिक मूल्यों का स्थान सर्वोपरि है।'[६] लेकिन उनके सानिध्य में पढ़ने का

पूर्ण अवसर सुभाष को नहीं मिल पाया, पर नैतिक मूल्य की धूंधली सी छाप वे उन पर अन्दर तक छोड़ गए। सत्य का अभ्यास उन्हीं के शब्दों ने करवाया। पत्र व्यवहार, प्रकृति से सम्बन्ध जोड़ना उसी गुरू की देन है। स्कूल की पढ़ाई करते समय ही सुभाष बाबू में जीवन के लक्ष्य ढूंढने की इच्छा जाग्रित हो गई थी। सुभाष कहते हैं – 'उस आयु में बहुत कुछ समझ में भी नहीं आ रहा था, फिर भी उहा-पोह और द्वंद के बीच भविष्य में अपने को देखने का स्वपन जाग्रित हो गया था।'[७] एक दिन अनायास ही समाधान निकल आया। सुभाष के पड़ोस में उनके रिश्तेदार सॉदनन्द मिश्र रहने के लिए आए। सुभाष एक दिन उनके घर पर गए और उनकी नज़र उनकी पुस्तकों में स्वामी विवेकानन्द के वाङ्मय पर पड़ी। उन्होंने एक पुस्तक के कुछ ही पन्ने पलटे थे तो उन्हें महसूस हुआ कि वे इसी तरह की पुस्तकें पढ़ने के लिए व्याकुल हो रहे थे। सुभाष कहतें हैं – 'मैंने उनसे वे पुस्तकें मांग ली और अपने घर ले आया तथा पढ़ने में जुट गया। स्वामी विवेकानन्द जी का सन्देश मेरी अन्तरात्मा में गहरे से प्रवेश करता गया। मुझे कोई ऐसा आदर्श अभी तक नहीं दे सका था जिसको मैं अपना सम्पूर्ण अस्तित्व समर्पित कर सकता, वह मुझे विवेकानन्द ने दिया।'[८] उनके प्रवचन व विचार देशवासियों के व्यवहारिक धरातल के थे। 'आत्मानो माक्षार्यम् जगद्हिताय' अपनी मुक्ति के लिए और मानवता की सेवा के लिए जीवन का परम लक्ष्य यह है कि पूर्ण आदर्श न तो मध्य युग का आत्मनिष्ठ संन्यास हो सकता है और न बैन्थम तथा मिल का आधुनिक उपयोगितावाद। 'मानवता की सेवा के अंतर्गत देश की सेवा भी निःसंदेह आ जाती है जैसा कि उनकी प्रमुख शिष्या और जीवनी लेखिका भगिनी निवेदिता ने लिखा है, कि उनकी उपासना की अधिष्ठात्रा देवी भारत माता थी।'[९] सुभाष को स्वामी विवेकानन्द के ये शब्द गहरे तक छू गए– 'प्यारे भाईयो। चारों ओर यह संदेश गर्जने दो कि यह नंगा और भूखा भारतीय, निरक्षर भारतीय, ब्राह्मण भारतीय और शूद्र भारतीय मेरा अपना ही भाई है।'[१०] सुभाष ने इसे प्राचीन ग्रन्थों की आधुनिक व्याख्या कहा। वे उस समय १५ वर्ष के थे। वे यह भी मानते हैं कि यह सब उस समय उन्हें यह समझना आसान भी नहीं था। रामकृष्ण परमहंस का यह वाक्य कि आत्मानुभूति के लिए त्याग अनिवार्य है और सम्पूर्ण अहंकार शून्यता के बिना आध्यात्मिक विकास असंभव है। रामकृष्ण वह संत थे जिन्होंने इन उपदेशों को अपने जीवन में साक्षात जिया था और तभी वे विवेकानन्द को प्रभावित कर पाए थे। उनकी भटकन समाप्त हुई और मानसिक क्रान्ति प्रारम्भ हुई।[११]

स्वामी विवेकानन्द के विचारों को व्यवहारिक जीवन में लाने के लिए सुभाष को लगा कि मुझे इसके लिए ऐसे मित्रों की टोली बनानी चाहिए, जो स्वामी जी के विचारों पर चर्चा करती रहे। इसके लिए उन्होंने 'रामकृष्ण-विवेकानन्द युवजन सभा' का गठन किया। उनके वाङ्मय में इसके लिए मंडली शब्द का प्रयोग भी हुआ है। इस सभा के द्वारा स्वामी विवेकानन्द के विचारों को समझना और उस पर आचरण करने का प्रयास करना था। उस सभा में उन्होंने उन सॉदनन्द मिश्र महोदय को भी रखा, जिनसे उन्हें प्रथमतः विवेकानन्द का साहित्य के दर्शन और पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ था। सुभाष की ऐसी स्थिति हो गई कि जब भी अपने मित्र-मंडली से बात करते तो स्वामी विवेकानन्द के उन विचारों को दोहराना जो उन्होंने अपने देशवासियों के लिए पत्रों, भाषणों तथा वार्ता में व्यक्त किए थे। इन सारी क्रिया-कलापों का स्कूल में तो कोई खराब असर नहीं था पर घर में इसका अनुकूल प्रभाव नहीं था। क्योंकि सुभाष अपने घर

ISSN 2250-2769

से ज्यादा मित्र-दोस्तों के साथ अधिक समय व्यतीत करते थे। इस विचार का प्रभाव इतना गहरा था कि घर की डांट-डपट और मां के आंसुओं का भी कोई असर नहीं था। मानवता की सेवा ही उनका परम लक्ष्य बनता जा रहा था। यह स्वामी विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव था। घर के बजाए उस वैरागी मित्र मंडली में ही सुकून मिलता था। अपनी स्कूली पढ़ाई के बजाए योग और हटयोग का प्रभाव बढ़ गया। इन सारी रूचियों ने उन्हें साधुओं के निकट ले जाने का काम किया। साधुओं के वचनों का सीधा असर हो रहा था। सुभाष अपने एक घटना का वर्णन बड़े रोचक ढंग से करते हैं। एक ६० वर्षीय सन्यासी ने कहा कि हमें अपने माता-पिता को प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए। घर पर कोई ऐसी परम्परा नहीं थी कि प्रतिदिन प्रणाम किया जाए। इससे विपरीत सुभाष घर वालों का कहना कम और साधू संगत का अधिक मानते थे। साधू के उपदेश से प्रभावित होकर उसने घर में पिता जी को प्रणाम किया तो पिता जी आश्चर्यचकित रह गए। सुभाष ने सभी संकोचों को छोड़ प्रतिदिन सन्यासी के कहने पर मां-पिता के चरण वंदन करना प्रारम्भ कर दिया था। सुभाष एक बार अपने मित्रों के साथ ग्रीष्मकालीन अवकाश में तीर्थ स्थलों, ऐतिहासिक स्थल तथा पारम्परिक शिक्षण संस्थानों को देखने के लिए हरिद्वार और बनारस की लम्बी यात्रा पर निकल गए थे।[१२] घर पर जब पता चला तो सभी परेशान थे। इस बात का वर्णन उन्होंने अपने बचपन के दोस्त हेमन्त को बृहस्पतिवार, अपराहन् १९/६/१९१४ को लिखे पत्र में किया है।[१३]

सुभाष जब दो-ढ़ाई महीने बाद घर पहुंचा तो उसने घर पर बातों को विस्तार से बताया। पिता जी के साथ की गई बातें गहरे चिंतन का विषय है। सुभाष अब तक निर्भीक हो चुके थे। अपनी सच्ची और सीधी बात रखने में उन्हें कोई संकोच नहीं था। पिता जी ने एक प्रश्न किया कि वे कौन लोग थे जिन्होंने सत्य के आधार पर आत्मानुभूति प्राप्त की थी। उसके उत्तर में सुभाष ने कहा कि ऋषियों ने आत्मोपलब्धि की थी और उसके लिए तब 'वेहाद मिति' से आरंभ होने वाले श्लोक का हवाला दिया था। उन्होंने कहा कि विवेकानन्द का आदर्श मेरा आदर्श है।[१४]

सुभाष ने महसूस किया कि आध्यात्मिक ज्ञान के लिए प्रथम समाज सेवा आवश्यक है। विवेकानन्द का ध्येय वाक्य था – मानव सेवा ही ईश्वर की सेवा है। गरीब, असहाय, पीड़ितों की सेवा करना, उनके काम आना ही मानव धर्म है। वे अनेक प्रयोग किया करते थे। ऐसे ही एक बार सेवा धर्म का प्रथम कार्य एक गांव के स्कूल में बच्चों को पढ़ाने को लेकर किया। यहां बच्चों को पढ़ाने से उन्हें सुकून मिला। उस गांव के लोगों ने भी सुभाष और उनके साथियों का स्वागत किया। परन्तु जब एक अन्य स्कूल में गए तो उसका विपरीत असर देखा गया। लोगों ने उन्हें सन्देह की नज़र से देखा। गांव में उस समय अनेक धारणाएं थी। यदि कोई गांव में कोई साफ सुथरे कपड़े पहन कर जाता था तो लोगों को भय था कि कहीं हमसे टैक्स लेने वाले लोग तो नहीं आ गए हैं। ऐसे अनेक अनुभव सुभाष को उड़ीसा और बंगाल में हुए। सुभाष की विविध गतिविधियों में समाज सेवा, अध्यात्म और धार्मिक भाव अपनी स्कूली शिक्षा से बड़ा स्थान रखने लग चुकी थे।[१५] सुभाष के बड़े भाई शरत चन्द्र बोस वकालत की पढ़ाई के लिए इंग्लैंण्ड गए हुए थे। सुभाष को उनसे बहुत प्यार था। वे शरत को भारत के प्राचीन वैभव और दुर्दशा का वर्णन करते हैं। एक समय था जब भारत वैभवशाली, ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र था। ऋषि-मुनियों के ज्ञान का

संचार यहां सर्वत्र गुंजित होता था। पर आज भारत की दुर्दशा का वर्णन करना मुश्किल हो रहा है। इस घोर अन्धकार में एक नाम जो हमारे आलस्य को झकझोरने आया है, उसका अभिर्भाव हो चुका है। वह है स्वामी विवेकानन्द। उनका मुखमंडल दीव्य तेज से दीप्त हो रहा है। उनकी बड़ी-बड़ी मर्मभेदिनी आंखें और उनका पवित्र गैरिक परिधान। वह सम्पूर्ण विश्व को हिन्दू धर्म में बद्धमूल पावन सत्यों की सीख दे रहे हैं। सांध्य नक्षत्र डूब चुका है – अब निश्चय ही चन्द्रोदय होगा। भारत का भविष्य आशाओं से जाज्वल्यमान है। वह एक ऐसा चुम्बक है जिसकी ओर सब कुछ, सभी ओर से खींच रहा है और जिसकी ओर सम्पूर्ण सृष्टि को अनिवार्यतः बढ़ना है। कटक से ८/१/१६१३ में लिखे पत्र में वर्णन।[१६]

सुभाष अपने जीवन में जिस मार्ग की खोज में लगे हुए थे, न तो वह अति सरल था और न ही आरामदेह। वे त्वरित निर्णय लेने में सक्षम थे, परन्तु यह निर्णय लेना सरल नहीं था। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि उन तक पहुंचने के लिए मुझे महीनों और वर्षों तक आत्म-मंथन करना पड़ा था। मैंने कितने ही ग्रन्थों का परायण किया था और कितने ही व्यक्तियों का सत्संग किया था जिससे निश्चय कर सकूं कि मेरे जीवन को किस प्रकार संवरना है और वे कौन से सर्वोच्च आदर्श हैं जिन्हें मैं अपना मार्गदर्शक बना सकता हूं।[१७] उनके अन्दर अन्तरद्वंदों का एक तूफान था। उन्हीं अन्तरद्वंदों और संघर्षों ने सुभाष को मनुष्य बनाया यह उनका मानना था। सुभाष ने कहा – 'ईश्वर, आत्मा और धर्म संबंधी धारणाओं का अंतिम सत्य जो भी हो, विशुद्ध व्यावहारिक दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि धर्म में आरंभ से ही अपनी रूचि तथा योगाभ्यास से मुझे बहुत लाभ हुआ।'[१८]

सुभाष को लगता था कि हम स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस की नव टोली हैं। वे लिखते हैं कि हमारा उद्देश्य मात्र अस्पतालों और असहाय की सहायता मात्रा करना नहीं था। हम उससे आगे राष्ट्र का पुनर्निर्माण शिक्षा के माध्यम से करना चाहते थे।[१९] सुभाष की टोली तीन दिशाओं में काम कर रही थी – दर्शन-शास्त्र, इतिहास और राष्ट्रीयता सम्बंधी पुस्तकों का अध्ययन। यह एक बड़े नेटवर्क जैसा काम था। टोली छोटी होते हुए भी अपने ज्ञान की पिपासा में यह टोली अपनी छुट्टियों का प्रयोग बनारस, हरिद्वार जैसे पवित्र ऐतिहासिक स्थलों के दर्शन और अध्ययन में समय लगाते थे। इसमें मीठे और खट्टे दोनों ही प्रकार के अनुभव आ रहे थे। यह टोली अपने देश के महापुरूषों के चिंतन और विचारों का गहराई से विचार करती थी। ये सभी लोग राजनीतिक क्षेत्र में प्रिय नहीं थे, क्योंकि ये राजनीतिक गतिविधियों के बजाए सामाजिक चिंतन पर अधिक जोर देते थे। बंगाल की राजनीति में उग्र राजनीतिक विरोध आ गया गया था। बंगाल विभाजन उसका एक मुख्य कारण था। अब दूसरे अंग्रेजों की कुटिल चालें पढ़े-लिखे वर्ग की समझ में भी आ गई थी। अरविन्द के राजनीतिक चिंतन का इतना असर सुभाष पर नहीं था जितना कि उनके दार्शनिक जीवन का था। सुभाष के बड़े भाई अरविन्द की इन पंक्तियों को अकसर दोहराया करते थे – 'मैं तुम में से कुछ को महान होते हुए देखना चाहूंगा, महानता तुम्हारे अपने लिए नहीं बल्कि भारत को महान बनाने के लिए, जिससे वह सर ऊंचा करके विश्व के स्वाधीन राष्ट्रों के बीच खड़ा हो सके। तुममें से जो गरीब हैं और जिन्हें कोई नहीं जानता उनकी गरीबी और उनके अपरिचय को मैं मातृभूमि की सेवा में समर्पित होते हुए देखना चाहूंगा। कर्म में प्रवृत्त हो, जिसे मातृभूमि समृद्ध बने,

ISSN 2250-2769

कष्ट सहो, जिससे वह मुस्करा सके।'[२०] अरविन्द के इन शब्दों में मातृभूमि की सेवा और राष्ट्र के लिए अपने व्यक्तित्व का विकास विशेष महत्व रखता है। यह धर्मोपदेश न होकर राष्ट्रोत्थान के लिए अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने की बात है।

समाज सेवा के अनेक मार्ग सुभाष को दिखाई देते थे। कुछ ऐसी संस्थाओं से परिचय था जो गरीबों के लिए हर रविवार घर-घर जाकर भिक्षा और पैसे मांगती थी। यह कार्य छात्र ही किया करते थे। उसके साथ काम करने का सौभाग्य सुभाष को भी प्राप्त हुआ था। उनका पहला अनुभव बहुत ही संकोच वाला था। क्योंकि उन्होंने भिक्षा मांगने के लिए कभी बोरी उठाकर चलने का अभ्यास नहीं था। संकोच यह, भी था कि यदि कोई जान पहचान वाला मिल गया, तो वह मेरे बारे में क्या सोचेगा। सुभाष जीवन में उस बूढ़ी कमजोर मां जो भीख मांग कर अपना गुजारा करती थी, उसका विषादपूर्ण चेहरा, उसके फटे-पुराने कपड़े देखकर याद आते ही दुःखी हो जाया करता था। उन्हें अपने जीवन में अपराध का बोध होता था। जब सुभाष कॉलेज की छुट्टियां बिताने के लिए कटक आए तो एक दिन उनके माता-पिता किसी कार्य से बाहर गए हुए थे। सुभाष जी के लिए यह एक सुअवसर था, समान सेवा कार्य करने के लिए घर में केवल उनके मामा थे तो वे उन्हें चकमा देकर हैजा रोगियों की सेवा में निकल गए। जब मामा जी को पता चला कि सुभाष हैजा रोगी सेवा टोली के साथ गया हुआ है तो एक दूसरे मामा को उनकी खोज में भेज दिया। हैजा बिमारी को उस समय बहुत ही खतरनाक माना जाता था। हैजा रोगी की सेवा में जाना इसके लिए किसी व्यक्ति को तैयार करना कोई आसान कार्य नहीं होता था। सुभाष के जीवन में हैजा रोगी की सेवा करना और उनकी मदद करना एक बड़ा पुण्य कार्य था। गांव की गरीबी, भुखमरी, दीनता ऐसा हृदय विदारक दृश्य रहता था जो किसी को भी अन्दर से तोड़ देता था। वे कहा करते थे– 'मुझे हैजे के मरीजों की सेवा से कभी वितृष्णा नहीं हुई, भले ही मुझे गंदे कपड़े तक छूने पड़े हों, परन्तु चैचक के रोगियों के बारे में मुझे अपनी सम्पूर्ण इच्छा शक्ति को लगा देना होता था। लेकिन सेवा के शिक्षण के रूप में इस प्रकार के स्वैच्छिक कार्य का अपना महत्व था और मैं उससे बचना नहीं चाहता था।'[२१] सुभाष का इस रोगी सेवा के साथ ही राष्ट्र सेवा और रामकृष्ण मिशन के रोगी सेवा मिशन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन चलता रहता था। रोगी सेवा सही है पर क्या इससे राष्ट्र का उत्थान हो सकेगा। हमें इस रोगी सेवा के साथ ही राष्ट्र सेवा के बारे में भी सोचना पड़ेगा। इसी आत्ममंथन के साथ उन्होंने युवाओं के मध्य इस विचार को व्यक्त करना और समाज सेवा और राष्ट्र सेवा दोनों को किस प्रकार से किया जा सकता है। इस विचार के साथ बड़ी संख्या में युवाओं ने सुभाष के साथ जुड़ना प्रारम्भ कर दिया था। इस विद्यार्थी संगठन में शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति से संबद्ध विभाग थे। समाज में व्याप्त जाति जैसे विषयों पर भी विचार विमर्श होता था। सुभाष का संगठन जाति जैसे विषयों से उपर था। कोई ऐतराज नहीं करता था। सुभाष जब आईसीएस की नौकरी से त्यागपत्र दे चुके थे और अपने राजनीतिक गुरू बन्धु चितरंजनदास के साथ निगम प्रशासन में मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, तो उन्हेंने शिक्षा, स्वच्छता, स्वदेशी जैसे विषयों पर विशेष ध्यान दिया। बच्चों के लिए निशुल्क विद्यालय, निगम संचालित स्वास्थ्य समितियां जहां निर्धनों के मुफ्त औषाधालय

की व्यवस्था की गई। शहर में बाल-चिकित्सालय खोले गए। यही नहीं जरूरतमंद बच्चों को दूध की व्यवस्था भी की जाती थी। उद्यानों के नाम भारतीय महापुरुषों के नाम पर रखे गए। जन साधारण में जन चेतना पैदा हो उसके लिए 'कैलकटा म्युनिसिपल गैजेट' नाम से साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन किया गया। भारतीय उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए एक व्यवसायिक संग्रहालय खोला गया। मुख्य कार्यकारी अधिकारी अपने मिलने वाले वेतन का आधा हिस्सा ही अपने लिए उपयोग करते थे। आधा हिसा समाज पर व्यय करते थे।[२२]

अपनी पढ़ाई से समय पाकर सुभाष अपने धार्मिक त्यौहारों को अपने सामूहिक जीवन के विकास के लिए काम में लाने का एक प्रयोग प्रारम्भ किया। गांव में प्राचीन काल से चलने वाले महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य त्यौहारों के रूप में होते थे। जिसमें पूरा समाज भाग लेता था। दुर्गा पूजा में समाज के सब लोग किसी न किसी काम को पूरा करने में अपना योगदान देते थे। समारोह पूरे पांच दिन चलता था। लोगों को इसमें काम करने से आर्थिक लाभ भी होता था। दुर्गा पूजा के बाद एक नाटक का आयोजन भी होता था, जिसमें पूरा गांव भाग लेता था। आर्थिक लाभ के साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान भी किया जाता था। पूरा समुदाय इस का भागीदार होने के कारण समाज में एकजुटता भी बढ़ती थी।

सुभाष चन्द्र बोस की समाज सेवा का स्तर लगातार बढ़ता गया। सिविल सेवा की नौकरी त्यागने के विचार के पीछे उनके जीवन में लोकमान्य तिलक का वह भाषण गहरा असर करते हुए दिखाई दे रहा है जो उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दिया था। इसका जिक्र उन्होंने अपनी जीवनी में किया है। तिलक की इस यात्रा का लार्ड कर्जन जोरदार विरोध किया। विद्यार्थियों ने इस बात को पहले ही नकार दिया था कि तिलक का विरोध किया जाए। कारण स्पष्ट था कि कर्जन के विरोध से पूर्व ही तिलक को निमन्त्रण हो गया था। महत्वपूर्ण बात तिलक की भारतीय विद्यार्थियों का आह्वान अंग्रेजों की नौकरी के बजाए देश की सेवा को महत्व देने का था। अंग्रेजों की सेवा से बड़ी राष्ट्रसेवा है। उन्होंने इस बात पर खेद व्यक्त किया कि असंख्य प्रतिभाशाली और होनहार विद्यार्थी सरकारी नौकरियों के पीछे लगे रहते हैं। तिलक ने दो ऐसे उदाहरण भी वहां रखे जिन्होंने परीक्षा देने के बाद सरकारी नौकरी न करने की प्रतिज्ञा की थी। परन्तु अपनी आईसीएस की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने देश सेवा के बजाए नौकरी को महत्व दिया था। वे रामकृष्ण मिशन से भी जुड़े हुए थे। यहां यह महत्वपूर्ण बन जाता है कि हम वचन तो दे देते हैं पर उस को जीवन के व्यवहार में लाना आसान नहीं होता है। सुभाष ने राष्ट्र सेवा को सर्वपरि रखते हुए आईसीएस की परीक्षा पास करने के बाद भी त्याग पत्र देकर अपने बचनों और कर्मो को महत्व दिया।[२३] सुभाष ने अपने मां-पिता के लिए १६ फरवरी, १६२१ को पत्र लिखा – 'मेरा विस्फोटक पत्र आपको अब तक मिल चुका होगा।[२४] मैंने इस विषय में और भी विचार किया है और उससे उक्त पत्र में निर्दिष्ट अपनी योजना की मेरे मन ने पुष्टि की है। .... अगर चितरंजनदास अपनी वर्तमान आयु में सब कुछ त्याग सकते हैं और जीवन की अनिश्चितताओं का सामना कर सकते हैं तो मुझे विश्वास है कि मेरे जैसा नवयुवक, जिसे परेशान करने वाली कोई भी सांसारिक चिन्ता नहीं है, वैसा कदम उठाने के लिए और भी सक्षम है। अगर मैं सर्विस से इस्तीफा भी दे देता हूं तो भी मुझे व्यस्त रहने के लिए काम की कोई

ISSN 2250-2769

कमी नहीं होगी। अध्यापन, समाजसेवा, सहकारी ऋण कार्य, पत्रकारिता, ग्राम संगठन कार्य आदि अनेक ऐसे काम हैं जिसमें हजारों की संख्या में उत्साही नवयुवक व्यस्त हो सकते हैं। जहां तक मेरा सवाल है, मैं इस समय अध्यापन और पत्रकारिता का काम करना चाहूंगा। नेशनल कालेज तथा नए पत्र 'स्वराज' में मेरे लिए काफी काम ही गुंजाईश होगी। ... मेरी परिकल्पना और मेरा रुझान के अनुकूल आकर्षण के केन्द्र हैं – आरंभ से ही त्याग की वृत्ति, सादा जीवन और उच्च विचार ताकि देश-सेवा के लिए धार्मिक अनुरक्ति। इसके अतिरिक्त एक विदेशी नौकरशाही के अधीन सेवा का सिद्धान्त मेरे लिए नितांत त्याज्य है। मेरी दृष्टि में अरविंद घोष का मार्ग कहीं अधिक महान और प्रेरणादायक है, कहीं अधिक उदास और निःस्वार्थ, हालांकि रमेश दत के मार्ग की अपेक्षा वह कहीं अधिक कंटकाकीर्ण है।

'मैंने पिताजी को और मां को लिख दिया है कि वे मुझे गरीबी और सेवा का व्रत लेने के लिए अनुमति दें। संभवतः वे इस विचार से आशंकित हांगे कि जो मार्ग मैं चुन रहा हूं उस पर मुझे भविष्य में बड़े कष्टों का सामना करना होगा। जहां तक मेरा अपना संबंध है, मैं कष्टों से घबराता नहीं हूं। मैं उनसे दूर भागने के बजाए उनका स्वागत करता हूं।'[२५]

'कैम्ब्रिज में २३ अप्रैल, १६२१ का पत्र' समझौता एक बुरी चीज है जो मनुष्य को स्वयं अपनी दृष्टि में च्युत करता है और उसके आदर्श को क्षति पहुंचाता है। हमें एक राष्ट्र का निर्माण करना है और राष्ट्र का निर्माण तभी संभव हो सकता है जब हम हैम्पडैन और क्रामवेल जैसे व्यक्तियों के समझौता-विरोधी आदर्शवाद से प्रेरित हों.... मुझे यह विश्वास हो चला है कि अब समय आ गया है कि हम ब्रिटिश सरकार से हर तरह संबध समाप्त कर दें। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी, चाहे वह मामूली चपरासी हो या प्रातीय गवर्नर, भारत में ब्रिटिश सरकार की स्थिति को ही मजबूत करता है। किसी भी सरकार को खत्म करने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि उससे सहयोग न किया जाए। मैं ऐसा इसलिए नहीं कहता हूं कि यह टाल्स्टाय का सिद्धांत है और न इसलिए कहता हूं कि गांधी जी भी इसी बात को दोहराते हैं, बल्कि इसलिए कहता हूं कि मैं स्वयं इस पर विश्वास करने लगा हूं... मैंने अपना इस्तीफा कुछ दिन पहले भेज दिया है। मुझे उसे स्वीकार कर लिए जाने के बारे में अभी सूचना नहीं मिली है।[२६]

सुभाष चन्द्र बोस अपने परिवार तथा मित्रों को पत्र लिखा करते थे। उसमें वे अपनी भावना और कर्तव्य सभी बातों को व्यक्त करते थे। एक बार वे गांव में मां के साथ काली पूजन में नहीं रह सके। वे मां जी को पत्र लिखते हैं। वे मां काली की भव्यता, लोगों की आस्था, मन्दिर में पुजारियों की पूजा-अर्चना का बहुत सुन्दर वर्णन करते हैं। पुजारी से मिलने वाले आशीर्वाद से वंचित रहने का वर्णन करते हैं। पूजा में प्रयोग होने वाले पवित्र जल का वर्णन करते हैं। मां की पूजा से जो आत्मिक शान्ति मिलती है, इससे इस बार सुभाष अतृप्त रहने वाला है। मां-पिता को अपना प्रणाम भेजता है।[२७] सुभाष ने अपनी मां को पत्र लिखा जिसमें शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य और सामाजिक समरसता को व्यक्त करता है। वे लिखते हैं कि महान ऋषियों ने कहा कि श्रद्धा से ही ज्ञान का मार्ग खुलता है। शिक्षा का उद्देश्य है बुद्धि को कुशाग्र बनाना और विवेक शक्ति को विकसित करना। यदि ये दोनों उद्देश्य पूर्ण हो जाते हैं तो यह मानना चाहिए कि शिक्षा का लक्ष्य पूरा हो गया है। यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति चरित्रवान नहीं है तो क्या

ISSN 2250-2769

में उसे पंडित कहूंगा? कभी नहीं और यदि एक अनपढ़ व्यक्ति ईमानदारी से काम करता है, ईश्वर में विश्वास रखता है और उससे प्रेम करता है तो मैं उसे महापंडित मानने को तैयार हूं। ऐसा व्यक्ति नीची जाति का भी हो तो भी मैं उसकी चरण धूलि लेने को तैयार हूं क्योंकि मेरे लिए उसकी चरण-धूलि बड़ी पवित्र वस्तु है।[२८] उन्होंने रांची सोमवार, १६१३ मां के लिए पत्र में अपने लिए २० रुपये वजीफा मिलने की बात करते हैं। उन्हें उस वजीफा मिलने की पूरी आशा है। सुभाष जी उस २० रुपये का करना क्या चाहते हैं, यह एक प्रश्न है। वे अपनी मां के लिए पत्र में लिखते हैं कि मुझे तो धन से वित्रिष्णा है। सभी समस्याओं की जड़ पैसा है। पर यदि यह वजीफा मिल ही जाता है तो मैं इस पैसे को अपने उपर व्यय न कर, दूसरों पर जो जरूरतमंद है, उसे पर खर्च करने में मुझे खुशी होगी।[२९]

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक चिंतन से प्रभावित होकर सुभाष चन्द्र बोस भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के उस पड़ाव तक पहुंचे, जहां वह भारत को स्वतन्त्र करने के लिए आज़ाद हिन्द फौज का कुशल नेतृत्व करते है और उसके लिए भारत से बाहर जापान व सिंगापुर जाकर भी उन्हें वह साथ मिला जिसकी अपेक्षा कोई सरल कार्य नहीं था। उसके पीछे था उनके परिवार की सेवा भावना, स्वामी विवेकानन्द का चिंतन और दर्शन, गुरू का सत्य मार्ग पर चलने का उपदेश, लक्ष्य का संधान तथा अखण्ड राष्ट्रभक्ति। सुभाष चन्द्र बोस अमीर बनने के बजाए गरीब बना रहना पसंद करते थे, जैसा उनका स्वभाव था। इसका अभिप्राय यह नहीं की वे उन्नति नहीं चाहते थे। वे व्यक्ति की उन्नति न चाहकर राष्ट्र की उन्नति को अपना लक्ष्य साध्य मानते थे। उसके लिए कितना भी बड़ा बलिदान देना पड़ा, वे पीछे नहीं हटे। वह सदैव भारतीय इतिहास, संस्कृति, धर्म तथा अध्यात्म को वे सर्वोच्च स्थान देते थे। वह स्वयं को स्वामी विवेकानन्द की नव-टोली के रूप में देखते थे। आज़ाद भारत में सुभाष को देश का नेतृत्व करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, यदि उन्हें यह अवसर प्राप्त हो गया होता तो शायद भारत दुनिया के सब देशों में अग्रिम पंक्ति में होता। उन्होंने जीवन में उस मार्ग को पकड़ा जो हमारे ऋषियों की देन और अभिव्यक्ति थी। बोस के जीवन का वास्तविक ध्येय मानवता एवं राष्ट्र की सेवा करना था, जो उनके कृत्य में चरितार्थ हुआ। भारत जब भी विश्व का मार्गदर्शन करेगा तो उसके पास भारत की संस्कृति, परम्परा और अध्यात्मज्ञान ही सर्वोपरि होगा और दुनिया के पास इसी का अभाव होगा और भारत दुनिया का मार्गदर्शन करेगा।

सन्दर्भ :

१. शिशिर कुमार बोस, नेताजी संपूर्ण वाड्मय खंड-१, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली १६६८, पृ. ४

२. राजशेखर व्यास, सुभाषचन्द्र बोस : कुछ अधखुले पन्ने, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८, पृ. ७

३. शिशिर कुमार बोस, नेताजी संपूर्ण वाड्मय खंड-१, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली १६६८, पृ. १३

४. शिशिर कुमार बोस, नेताजी संपूर्ण वाड्मय खंड-१, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, १६६८, पृ. xxiii

ISSN 2250-2769

५. Kapil kumar, Netaji, Azad Hind Sarkar & Fauj Reoving Smode screens, Kitabwale New Delhi-1002 page no. 12
६. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, पृ. ५
७. शिशिर कुमार बोस, नेताजी संपूर्ण वाङ्मय खंड-१, १६६८, पृ. ४२
८. वही, पृ. २६
६. वही, पृ. २६
१०. वही, पृ. ३०
११. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, पृ. ५
१२. वही, पृ. १३
१३. शिशिर कुमार बोस, नेताजी संपूर्ण वाङ्मय खंड-१, १६६८, पृ. १२७
१४. शिशिर कुमार बोस, नेताजी संपूर्ण वाङ्मय खंड- १, १६६८, पृ. १२८
वेदाहं समतीताति वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ।।२६।।
१५. वही, पृ. ३७
१६. वही, पृ. १२५
१७. वही, पृ. ४१
१८. वही, पृ. ४२
१६. वही, पृ. ४७
२०. वही, पृ. ५०
२१. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, नेशनल बुक ट्रस्ट आफ इंडिया, पृ. २६
२२. शिशिर कुमार बोस, नेताजी संपूर्ण वाङ्मय खंड- १, १६६८, पृ.६६
२३. वही, पृ. ८३
२४. वही, पृ. ८६
२५. वही, पृ. ८७
२६. वही, पृ. ६०
२७. वही, पृ. १०३
२८. वही, पृ. १०६
२६. वही, पृ. ११८

सहायक आचार्य, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय, सोलन (हि.प्र.)

ISSN 2250-2769

सुभाष चन्द्र बोस एवं एमिली शेंक्ल के मध्य पत्र व्यवहार

डॉ. रजनी मीणा

शोध सारांश

सुभाष चन्द्र बोस का एमिली शेंक्ल से प्रथम सम्पर्क विएना में जून १९३४ में आया। यह एक संयोग था कि सुभाष को एक अच्छे टाईपिस्ट की आवश्यकता थी जो एमिली शेंक्ल ने पूरी की। एक टाईपिस्ट से एक घनिष्ट मित्र की भूमिका निभाती हुई वह सुभाष की अर्धांगिनी बन गई। सुभाष चन्द्र बोस भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अग्रिम नेता के रूप में तथा अंग्रेजों की नाक में दम लाने का काम वैश्विक स्तर पर किया। उनका अधिकांश समय जेल, आन्दोलन और ब्रिटिश सत्ता के विरोधी राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित करने में व्यतीत हुआ। विदेशी दौरों के समय यूरोप में एमिली शेंक्ल का साथ एक सहयोगी तथा पत्नी के तौर पर अपसी समझ, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन, भारतीय संस्कृति का आदान–प्रदान, विदेशी भाषा का ज्ञान और वैश्विक परिदृश्य को प्रचार माध्यम से समझना तथा सम्बन्धों की ओर संकेत करता है। 'नेताजी संपूर्ण वाङ्मय का सातवां खण्ड' ऐमिली शेंक्ल के साथ विस्तृत पत्र व्यवहार से अवगत करवाता है। यह शोध पत्र सुभाष और एमिली शेंक्ल के मध्य पत्र व्यवहार के आधार पर विचारों का आदान प्रदान और सम्बन्धों को जोड़ते सूत्र पर आधारित है।

संकेत शब्द : *एमिली शेंक्ल, विएना, आईसीएस, कुदृष्टि, राजदूत, टंकण, दॉ इंडियन सट्रगल।*

सुभाष चन्द्र बोस ने सितम्बर, १९२० में ब्रिटिश सरकार की प्रतिष्ठित आईसीएस की परीक्षा पास की और १९२१ में ब्रिटिश सत्ता के अधीन नौकरी करने के बजाए भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने का संकल्प श्रेयस्कर लगा। सुभाष ने कहा, 'मेरा जैसा नौजवान अपने निजी जीवन की जरूरत को पूरा करने के लिए समाज के कल्याणकारी मार्ग पर चलकर किसी भी व्यवसाय को अपना सकता है, जो राष्ट्र हित में हो।'[1] सुभाष चन्द्र बोस का जीवन सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थता में अहर्निश समाया हुआ था। ब्रिटिश अधिकारियों की कुदृष्टि सदैव सुभाष पर बनी रहती थी। ऐसी विकट परिस्थितियों में वे विवाह के पवित्र सूत्र में बंध सकते हैं, यह असम्भव तो नहीं पर मुश्किल आवश्य था। भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए वैश्विक परिस्थितियों को समझने के लिए सुभाष बाबू अघोषित राजदूत का कार्य यूरोप में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध कर रहे थे। १९२४ के बाद जैसे ही वे भारत आते थे तो ब्रिटिश भारत सरकार उन्हें जेल में भेज देती थी। १९३३-३४ में यूरोप में रहते हुए उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर 'द इंडियन स्ट्रगल' नाम से किताब लिखने का संकल्प लिया और उसके टंकन कार्य के लिए एक सिद्धस्त टंकण ऑपरेटर की आवश्यकता महसूस हुई। यह आवश्यकता आस्ट्रियाई टाइपिस्ट एमिली शेंक्ल ने पूर्ण की। सुभाष व एमिली शेंक्ल इस पुस्तक कार्य के

साथ एक दूसरे के अभिन्न मित्र बने और भविष्य में १९३७ एमिली शेंक्ल सुभाष की अर्धांगिनी बनी। एमिली शेंक्ल टाईपिस्ट के साथ-साथ जर्मन, फ्रांसीसी और अंग्रेजी भाषा की ज्ञाता, पत्रकार और भारतीय दर्शन में रुचि रखने वाली आध्यात्मिक महिला थी। उन्होंने सुभाष के साथ सचिव, आशुलिपिक तथा भारत और यूरोप के वैचारिक धरातल को समझते हुए अनेक कार्यों में सहयोग किया। एमिली शेंक्ल का जन्म २६ दिसम्बर, १९१० में वियना में आस्ट्रियाई कैथोलिक परिवार में हुआ था। इनके पिता पशु चिकित्सक थे।[२]

'दॉ इण्डियन स्ट्रगल' की प्रस्तावना में २९ नवम्बर, १९३४ को उन्होंने एमिली शेंक्ल के नाम का जिक्र किया।[३] प्रस्तावना में वह ऐसी महिला थी जिन्हें सुभाष ने नाम से धन्यवाद किया। एमिली शेंक्ल का महत्त्व सुभाष बाबू की नजर में प्रारंभ से ही महत्त्वपूर्ण रहा। उन्होंने अपने अधिकांश पत्रों में यह स्वीकार किया कि आप पहली महिला है जिसे मैंने प्यार किया है। १ जून, १९३४ में वियना में ब्रिटिश प्रकाशक लारेंस विशार्ट के साथ सुभाष चंद्र बोस ने भारतीय राजनीति पर एक पुस्तक लिखने का अनुबंध किया जिसे 'दॉ इंडियन स्ट्रगल' १९२०-१९४२ के रूप में पूर्ण किया। दॉ इंडियन स्ट्रगल का लेखन सुभाष चंद्र ने दो खंडों में किया। यह एक ऐतिहासिक ग्रंथ है जिसके माध्यम से भारतीय इतिहास की समृद्धता का अभिज्ञान यूरोपियनों को हुआ और भारत से ब्रिटिश शासन को मुक्ति की राह दिखाई। इस पुस्तक की समीक्षा द स्क्रेवरेटर, न्यूज क्रॉनिकल, संडे टाइम्स, द मानचेस्टर गार्डियन आदि समाचार पत्रों ने की तथा जापानी, इतालवी भाषाओं में भी इस का प्रकाशन हुआ। फ्रांसीसी विद्वान् रोमां रोलां इस पुस्तक से बहुत प्रभावित हुए और अपनी पुत्री व पत्नी के लिए भी इसे मंगाने की बात कही। आयरलैंड के राष्ट्रपति डी वैलेरा, मुसोलिनी भी इस पुस्तक से बहुत प्रभावित हुए। इस पुस्तक का द्वितीय खंड अर्थात् भारतीय संघर्ष गाथा के वृत्तांत का उत्तरार्द्ध (१९३५-१९४२) पांडुलिपि के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सुभाष चंद्र बोस की पत्नी एमिली शेंक्ल से प्राप्त हुआ।[४]

सुभाष बाबू वैसे भी पत्र व्यवहार अधिक किया करते थे। सन् १९३४ से १९४२ तक लगभग १६२ पत्र सुभाष चंद्र बोस ने एमिली शेंक्ल को लिखें और एमिली ने भी इसके प्रत्युत्तर में लगातार पत्रों का उत्तर दिया है। १४ पत्र ऐसे हैं जो ३० नवम्बर, १९३४ और २९ जनवरी, १९३५ के मध्य लिखे गए थे, वे इटली, ग्रीस, ईजिप्ट और इराक होते हुए भारत की वायुयान यात्रा के दौरान लिखे गए थे।[५] यहां उनके कुछ महत्वपूर्ण पत्रों से देश-दुनिया और भारतीय जीवन को बड़े सरल शब्दों में शेंक्ल को समझाया गया है।

सुभाष बाबू अपने पहले पत्र में रोम से ३०/११/१९३४ सुश्री शेंक्ल को लिखते हैं – 'मैं इसे एयरमेल द्वारा भेज रहा हूं। किसी से इस बात की चर्चा न कि जाए कि मैं आपको हवाई डाक से पत्र प्रेषित करता हूं, क्योंकि मैं किसी और को हवाई डाक से नहीं लिखता हूं, इससे उन्हें खेद हो सकता है।' सुभाष मुख्यतया तीन बातों की ओर संकेत करते हैं। एक विभिन्न देशों की यात्रा के दौरान प्रकृति, भूगोल की छटा जिसे वे अपने सफर के दौरान निहारते हैं। दूसरी बात पुस्तकों, ट्रंको तथा निजी पत्रों के बारे में लिखते हैं। निजी पत्रों के बारे में यही हिदायत है कि पढ़ने के बाद उन्हें फाड़ देना चाहिए क्योंकि

ISSN 2250-2769

जिस प्रकार से ब्रिटिश सरकार सुभाष के पीछे लगी रहती थी उससे कहीं शेंक्ल को भी कोई हानि न हो उस का उचित ध्यान रखना आवश्यक था। तीसरी महत्वपूर्ण बात फ्रेंच भाषा के अध्ययन को जारी रखना तथा उसका अभ्यास करते रहने के लिए वे लिखते हैं। यह बात सुभाष ने शेंक्ल को एक पत्र में नहीं, बल्कि अनेक पत्रों में फ्रेंच भाषा सीखने और सतत् उसके अभ्यास की चर्चा वे करते हैं। चौथी बात उन्हें २१० शिंलिग की बात की। यह धन वे शेंक्ल को देकर आए थे। इसका एक टाईपराईटर खरीदने को वह लिखते हैं। यदि सतत् लिखने पढ़ने का काम करना है तो इसकी सुविधा अपने पास रहनी आवश्यक है। पांचवी बात अपनी लिखावट और अपने बारे में लिखित हैं। अधिकांश पत्र वे हवाई जहाज अथवा किसी न किसी प्रवास में ही लिखते थे। स्वाभाविक है कि लिखावट पर ध्यान देना मुश्किल होता था। इसलिए वे लिखते हैं – 'मैं सदा खराब पत्र लेखक रहा हूं किंतु, खराब व्यक्ति नहीं हूं।'[६] इस प्रथम पत्र का महत्व विशेष है। क्योंकि सुभाष प्रवास, पत्रों के माध्यम से जीवंत संवाद, पत्रों की गोपनियता, निजित्व, आत्मिक प्रेम, अध्ययन तथा एक अच्छे व्यक्ति के गुणों की चर्चा संकेत शैली में करते हैं और उद्देश्य भी स्पष्ट करते हैं।

सुभाष के पिता श्री जानकी नाथ बोस २ दिसम्बर, १९३४ का स्वर्गारोहण हो गया। सुभाष बाबू ४ दिसम्बर को घर पर पहुंचे। इस विपत्ति के समय भी वे ब्रिटिश सरकार की नज़रबन्दी में ही थे। उन्हें परिवार के सिवा किसी और से मिलने की अनुमति नहीं थी। अपनी मित्र एमिली शेंक्ल को ७/१२/३४ को सुभाष इस दुःख की घड़ी में पत्र लिखते हैं। यह पत्र भारतीय सभ्यता, संस्कृति, संस्कार, रीति-परम्परा तथा परिवार व्यवस्था को व्यक्त करता जिसका ज्ञान उसे नहीं है। भारतीय समाज में परिवार के वरिष्ठजन के स्वर्गारोहण कर जाने के बाद कैसी परिस्थितियों बनती हैं, वह इस पत्र का मूल आशय है। भारतीय समाज में पति का स्थान पत्नी के लिए सर्वोपरि है। उसका विछौह उसके जीवन को सब सुख सम्पदा के बाद भी नीरस कर देता है। उसके लिए जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। यही स्थिति अपनी माता की सुभाष शेंक्ल को बता रहे हैं। 'एक हिन्दू पत्नी का जीवन उसके पति के बिना निरस हो जाता है।'[७] हम भाई-बहन मां को सम्भालने में लगे हैं, तो भी हम मां के कष्ट को कम करने में सक्षम नहीं हो पा रहे हैं। दूसरे पत्र में २०/१२/३४ को जो पत्र सुभाष लिखते हैं उसमें भारत में धर्म के मर्म का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं। चाहे हम मां को सम्भालने में अक्षम हो रहे हैं तो भी भारत में जो सब को सम्भालने का कार्य करता है वह धर्म है। मेरी मां धार्मिक प्रवृति की है, इसलिए वह धीरे-धीरे इस कष्ट को सहन करने में सक्षम हो जाएगी।[८] भारत और यूरोप की संस्कृति में स्पष्ट अंतर है। यूरोप में व्यक्ति ईकाई है और भारत में परिवार। अपने पत्र में इस परिवार व्यवस्था की संकल्पना की जानकारी एमिली को देने का प्रयास करते हैं। परिवार कुछ समय से अनेक कष्टों से घिरा हुआ है। इन आघातों का असर मेरे मां-पिता पर भी हुआ है। इन सब बातों के वावजूद सुभाष शेंक्ल को पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं और अपनी यात्राओं में देखे गए स्थलों, ऐतिहासिक पक्षों और जिन पुस्तकों को पढ़ने में शेंक्ल को रूचि रहती थी उन्हें आसानी से किस प्रकार से कहां से प्राप्त किया जा सकता था, उसके बारे में ज्ञान करवाते थे। इस पत्र में अन्तिम बात अपने बारे में है। जिसमें वे बताते हैं कि मुझे पता नहीं कि एक सप्ताह बाद मुझे कहां जाना

है, क्योंकि उन्हें परिवार के साथ एक सप्ताह का ही समय मिला हुआ है। शेष भारत की ब्रिटिश सरकार उन्हें कहां किस जेल में रखती है, वह अनिश्चित है। हो सकता है कि सुभाष बाबू शेंक्ल से पत्र व्यवहार करने में भी अक्षम हो इसलिए उन्हें किसी शंका में रहने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान में जहां वे आज माता जी के साथ रह रहे हैं। वहां का पूरा पता पत्र व्यवहार के लिए इस पत्र में प्रेषित करते हैं। इस पते पर शेंक्ल का पत्र भी आया था।

३१ दिसम्बर, १९३४ के पत्र में सुभाष बाबू ने अपने स्वास्थ्य के बारे में जानकारी दी। जिसमें अपनी पुरानी बिमारी का जिक्र किया गया। सुभाष बाबू उसके ऑपरेशन से बचना चाह रहे थे, परन्तु जिस प्रकार का दर्द उठ रहा है, उसके लिए ऑपरेशन करवाना आवश्यक लग रहा है। ऐमिली को नववर्ष की शुभकामना दी और सन्तोष व्यक्त किया कि तुम्हारे गॉल ब्लैड़र की समस्या हल हो गई है, जिसकारण अब ऑपरेशन से बचाव हो गया।[९] सुभाष चंद्र बोस का अप्रैल, १९३५ में गॉल ब्लैड़र का आपरेशन हुआ था और स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से वे यूरोपीय प्रवास पर थे। १९३६ के पत्र व्यवहार से निष्कर्ष निकलता है कि इन दिनों सुभाष चंद्र बोस काफी स्वस्थ महसूस कर रहे थे। दोनों के मध्य पत्राचार में एक दूसरे के स्वास्थ्य की चिंता स्पष्ट दिखाई देती है। सुभाष चंद्र बोस के आयरलैंड से एमिली को लिखे पत्र बहुत दिलचस्प हैं, जहां उनकी ईमोन डे वेलेरा से कई मुलाकातें हुई। मार्च १९३६ में भारत लौटने से पूर्व एमिली शेंक्ल उनके साथ बादगास्तीन में कुछ दिन रही थी। यह समय दोनों के मध्य एक दूसरे को ओर अधिक निकटता से समझने और करीब आने का था।

११/२/१९३६ को शेंक्ल को लिखे एक और महत्वपूर्ण पत्र की चर्चा होना वैश्विक विचारधाराओं के विषयों में जिसमें समाचार पत्रों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यहां भारत से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दू' समाचार पत्र और 'टाइम्स' समाचार पत्र की चर्चा करते हैं। 'हिन्दू' समाचार पत्र नित्य पढ़ना चाहिए। साथ यही बताते हैं कि हिन्दू पत्र की नीति क्या है? यह सर्वश्रेष्ठ पत्र होते हुए भी मध्यमार्गी है। यह इतना राष्ट्रवादी नहीं है जितना होना चाहिए। परन्तु तुम्हें उसी के लिए लिखने के लिए प्रयास करना चाहिए क्योंकि वह देश में सर्वाधिक पढ़ा जाना दैनिक पत्र है। क्या लिखना चाहिए? प्रथम विश्व युद्ध से लेकर वर्तमान तक की वैश्विक परिदृश्य को समझते हुए राजनैतिक इतिहास का सामान्य लेखा-जोखा उसमें अवश्य आए। युगोस्लाविया से भी सम्बन्ध साधना चाहिए। जिसके लिए आवश्यक नोट-जानकारियां भेजने में सुभाष स्वयं भी उसकी सहायता कर सकता है। यूरोप के इतिहास के साथ वर्तमान समय में मिस्र का महत्व विशेष है, जिस पर तुम्हें और अधिक ध्यान देने की जरूरत है।[१०] यूरोप में रहते समय उन्होंने तुर्क साम्राज्य का इतिहास, बल्कान प्रायद्वीप का इतिहास, यूरोप का इतिहास, प्रथम विश्वयुद्ध की घटनाओं, कारणों, युगोस्लाविया, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया का ऐतिहासिक घटनाक्रम और युद्ध से सम्बन्धित घटनाओं पर विस्तार से वर्णन किया है। १९३६ में पण्डित जवाहर लाल नेहरू के कांग्रेस अध्यक्ष बनने पर सुभाष चन्द्र बोस ने दृढ़ निर्णय लेते हुए अपनी मातृभूमि भारत पुनः लौटने का निश्चय किया। हालांकि ब्रिटिश सरकार ने उनके भारत पहुंचते ही नजरबन्द कर लिया और यरवदा जेल भेजा परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने पर उन्हें अधिकांश समय चिकित्सा निर्देशन में बिताना पड़ा।

ISSN 2250-2769

एक अदृश्य शक्ति के रूप में एमिली हमेशा सुभाष जी की प्रेरणा स्रोत बनकर उनके साथ थी। भारत लौटने के पश्चात् सुभाष चंद्र बोस को जब जेल में रखा गया तब ८ अप्रैल, १६३६ से १५ मार्च, १६३७ के मध्य उनके द्वारा एमिली शेंक्ल को लिखे गए सभी पत्र पुलिस द्वारा सेंसर किए गए। सुभाष अपने बारे में जैल, कैदी होने जैसे शब्दों के बारे में इस प्रकार समझाने का प्रयास करते हैं जैसे उन्हें इन शब्दों के बारे में कोई जानकारी नहीं है।[११] बबंई की आर्थर रोड़ जेल, पूना की यरवदा केंद्रीय जेल, कुर्सियांग की नजंरबदी, कलकत्ता के मेडिकल कॉलेज अस्पताल से सुभाष चंद्र बोस द्वारा एमिली को लिखे गए पत्र, उनका एमिली के प्रति पूर्ण विश्वास प्रकट करता है। दोनों अपने देश की जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियों, मौसम, खान-पान, वेशभूषा आदि की जानकारी एक दूसरे के साथ सांझा करते थे। समकालीन भारत की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियां इन पत्रों में व्यक्त है। सुभाष बाबू एमिली शेंक्ल को उन महिलाओं के बारे में भी चर्चा करते हैं जो विद्वशी हैं, सामाजिक कार्य में संलग्न हैं और आध्यात्मिक विचारों से ओतप्रोत थी। सुभाष कहते हैं – मुझे यह जानकार प्रसन्नता हुई कि तुम श्रीमती हार्ग्रोव से मीली। वास्तव में वह महिला बहुत सभ्य है और लागों व वस्तुओं के प्रति उनमें ठीक समझ भी है तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। इसी प्रकार से उनकी मित्र सुश्री ग्रीन, जो अमेरिकन है और आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखती है।[१२]

भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के इस नाजुक दौर में अपने अकेलेपन और मानसिक अवलम्बन के लिए उन्होंने एमिली शेंक्ल के साथ को स्वीकार किया और २६ दिसम्बर, १६३७ में दोनों हिन्दू रीति-रिवाज से विवाह कर लिया। लम्बे समय तक यह शादी अनेक कारणों से गुप्त रही।[१३] उन्होंने एमिली को लिखे पत्रों में कई बार गीता पाठ और स्मरण करने के लिए कहा। वे एमिली को मानव सेवा, दयालुता, परोपकार, राष्ट्रप्रेम आदि विषयों को समझाते थे। भारतीय संस्कृति से एमिली को परिचित कराने के लिए वे महान भारतीय महिलाओं के चित्र उन्हें भेजा करते थे। विएना से ४/५/१६३७ का सुभाष के नाम एक पत्र है, जो सुभाष के स्वास्थ्य, भारत के मौसम, अपने फ्रेंच भाषा में सुधार, बच्चे की देखभाल, अपने स्वास्थ्य में गिरावट, भोजन में पहरेज तथा अपने धन के अभाव की भी चर्चा करती है। इस पत्र में फिर श्रीमती हारग्रोव, श्रीमती वेसी, श्रीमती कुर्टी तथा श्रीमती मिलर के बारे में भी बताया गया है।[१४]

१६३८-१६३६ में सुभाष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में भारतीय राजनीति में व्यस्त रहे परन्तु महात्मा गाँधी के साथ चल रहे राजनैतिक विरोधाभासों, जवाहर लाल नेहरू की प्रतिक्रियात्मक नीतियों, राजनैतिक घटनाओं, समाजवादी आन्दोलन, राष्ट्रीय संघर्षो, कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में अपनी भूमिका, ब्रिटिश सरकार से पूर्ण स्वराज्य की मांग कांग्रेस कार्यकारिणी कांग्रेस अधिवेशनों (हरिपुरा, त्रिपुरी आदि) राष्ट्रीय और अतंर्राष्ट्रीय मुद्दों इन सभी पर एमिली को लगातार पत्र लिखकर बताते रहे। दोनों के पत्रों से इस बात की जानकारी मिलती है कि सुभाष ने औपनिवेशिक सत्ता से भारत को मुक्ति दिलाने के लिए सम्पूर्ण भारतवर्ष में घूम-घूमकर स्वाधीनता आन्दोलन को प्रखर किया। महात्मा गांधी से मतभेद होने के पश्चात् भी कांग्रेस के सच्चे सिपाही की भूमिका निभाते हुए सुभाष जी ने देश में ब्रिटिश विरोधी वातावरण बनाया। एमिली को लिखे पत्रों में सुभाष ने यह स्पष्ट किया कि 'मेरा जीवन मेरे

ISSN 2250-2769

अपने आनन्द के लिए नहीं है। मेरे जीवन में आनन्द का अभाव तो नहीं है, लेकिन वह उपभोग के लिए नहीं है, क्योंकि मेरा जीवन एक उद्देश्य के लिए है, जो मेरा एक कर्त्तव्य है।'[१५] भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सुभाष बोस प्रत्यक्ष संघर्ष कर रहे थे, तो एमिली शेंक्ल अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग कर रही थी, जिससे वह प्रारम्भ में अनभिज्ञ भी थी।

१६३६ में द्वितीय महायुद्ध सितम्बर शुरू हो चुका था। वे इसे भारत की स्वतन्त्रता के लिए सुअवसर मान रहे थे। किन्तु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस बात पर विभक्त थी। उन्होंने कहा – हमारा संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्य से ही नहीं विश्व साम्राज्यवाद से भी है, जिस आधारशिला है ब्रिटिश साम्राज्यवाद। इसलिए हम भारत के ही नहीं, मानवता के लिए भी लड़ रहे हैं। भारत की स्वाधीनता का अर्थ है मानवता की रक्षा। भारत की स्वतन्त्रता के लिए यह सर्वोत्तम अनुकूल समय है[१६] जब कांग्रेस परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए तैयार नहीं हुई तो उन्होंने कांग्रेस से त्यागपत्र देकर फारवर्ड ब्लॉक नाम से पार्टी बनाई और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उनके विरोधियों का सहयोग लेना स्वीकार किया।

१६४१ में सुभाष ने इटैलियन पार-पत्र प्राप्त करने के लिए अपना छद्म नाम बदलकर 'ओरलाण्डो मज़ोटा'[१७] कर लिया और अपनी आगे की रणनीति के बारे में एमिली शेंक्ल को पत्र लिखकर बताया। भारत को आजादी के लिए सुभाष कटिबद्ध थे और इसके लिए वो कोई भी कीमत चुकाने को तैयार थे। बोस यूरोप मूलतः ब्रिटिश इंडियन आर्मी में भारतीय सैनिकों की अभिवृद्धि के लिए गए थे। उनका यह विश्वास था कि अंग्रेजी राज के प्रति भारतीय सैनिकों की अनिष्ठा उपनिवेशवादी आंदोलन के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

१६३७ में सुभाष और एमिली प्रणय सूत्र में बंध चुके थे। सन् १६४१ की बंसत ऋतु में एमिली शेंक्ल भी बर्लिन में सुभाष बोस के साथ रही। शेष पूरा साल और १६४२ के प्रारंभ के आठ माह वे दोनों एक साथ बर्लिन में सोफ़ीन स्ट्रासे के घर में रहे। २६ नवबंर, १६४२ में वियाना में उनकी पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम सुभाष ने अनीता बोस रखा।[१८] हालांकि १६४२ के अंतिम छः माह में बोस ने रोम और बर्लिन से भी कुछ पत्र एमिली को लिखे किंतु प्रायः वे एमिली से फोन पर बात किया करते थे। दिसम्बर १६४२ में वे अपनी पुत्री को देखने वियना आए। इस बीच उन्होंने स्वतन्त्र भारत की सरकार स्थापित की। भारतीय स्वातंत्र्य सेना (आई.एन.ए.) आज़ाद हिन्द फौज की भर्ती प्रारम्भ की तथा भारतीय रेडियो स्टेशन स्थापित किया।

८ फरवरी, १६४३ सबमैरिन द्वारा पूर्वी एशिया के लिए रवाना होने से पूर्व सन् १६४३, जनवरी में एमिली शेंक्ल कुछ दिन उनके साथ रहीं। सुभाष एशिया से भी लगातार एमिली को रेडियो पत्र भेजते रहते थे किंतु उस समय तक द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् वियना पर ब्रिटिश सेना का कब्जा हो चुका था अतः ब्रिटिश सेना के अधिकारी वे पत्र अपने कब्जे में ले लेते थे।

पूर्वी एशिया की अपनी खतरनाक सबमैरिन यात्रा पर निकलने से पहले सुभाष बोस ने अपने बड़े भाई शरत बोस को बंगला भाषा में पत्र लिखकर अपने वैवाहिक जीवन और संतान प्राप्ति का संदेश

ISSN 2250-2769

पहुंचाया। उन्होंने लिखा 'मैं खतरे की राह पर निकल पड़ा हूं, किंतु इस बार घर की दिशा में। पता नहीं इस बार राह का अंत देख पाऊंगा अथवा नहीं। मैंने यहां शादी कर ली है और मेरी एक बेटी भी है। मेरी अनुपस्थिति में कृपया आप वही प्यार उन्हें भी देना जो आपने आज तक मुझे दिया है।'[१९] इस पत्र के माध्यम से ही सुभाष के परिवारजनों को एमिली और सुभाष के मध्य संबंध की जानकारी मिली।

१९४३ के पश्चात् उन्होंने पूर्णतः ब्रिटिश शासन से भारत को मुक्त कराने की शपथ खाई थी। 'चलो दिल्ली', 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा' इन वक्तव्यों से उन्होंने आजाद हिंद फौज सैनिकों का मनोबल बढ़ाया और स्थान-स्थान पर ब्रिटिश सेनाओं को पराजित किया। एमिली शेंक्ल से मिले आत्मबल से उनके विचारों में दृढ़ता तथा मजबूती थी। उन्होंने अपने जीवन में कभी भी पराजय स्वीकार नहीं की परन्तु परिवर्तित परिस्थितियों में द्वितीय महायुद्ध के दौरान जब जापान की पराजय हो चुकी थी तब सुभाष जी को अपनी रणनीति बदलनी पड़ी और ऐसे में आगे की योजना के लिए रूस से सहायता प्राप्त करने के लिए जब वे हवाई यात्रा से १८ अगस्त, १९४५ को मंचूरिया की तरफ जा रहे थे तब ताइहोकू हवाई अड्डे के पास उनका विमान दुर्घनाग्रस्त होने की जो बात की जाती है, वह विमान हादसा हुआ ही नहीं। सुभाष के उस हादसे के विषय में अनेक मत है, जो आज भी शोध का विषय बना हुआ है। सरदार पटेल और जवाहर लाल नेहरू के के पत्रों में सुभाष की पत्नी एमिली शेंक्ल और उनकी पुत्री को किए जाने वाले सहयोग की चर्चा मिलती है,[२०] जो इस बात को दर्शाता है कि सुभाष के जीवन के बाद इस क्रान्तिकारी स्वतन्त्र सेनानी के परिवार का ध्यान रखना और उसका सहयोग करना हमारा पावन कर्तव्य है।

एमिली शेंक्ल का १३ मार्च, १९९६ को स्वर्गवास हुआ। वह एक महान नेता जो सम्पूर्ण विश्व में नेताजी के नाम से प्रसिद्ध हुए, ऐसे राष्ट्रभक्त सुभाष चन्द्र बोस की अर्धांगिनी बनकर एंमिली शेंक्ल ने भी अपने नाम को अमर कर दिया। एमिली शेंक्ल जो न भारत की भाषा समझती थी और न ही कभी पहले भारत आई थी, एक छोटी सी मुलाकात ने दोनों को एक-दूसरे का आजीवन साथ देने के लिए तैयार किया।

निष्कर्ष

एमिली शेंक्ल का सम्बन्ध सुभाष चन्द्र बोस के साथ आने से एक साधारण महिला से एक असाधारण महिला में बदल गई। सुभाष चन्द्र बोस भारतीय स्वतन्त्रता के ऐसे नायक थे, जिन का जीवन चुनौतियों से भरा रहता था। ऐसा नहीं था कि सुभाष ने उन चुनौतियों को एमिली से छुपाया हो। सुभाष ने एमिली को विश्वास पात्र बनाया और उन सब बातों का ध्यान रखा जिसकी जानकारी सुभाष चन्द्र बोस ने उन्हें समय समय देते रहे। यह सत्य है कि उन दोनों को साथ रहने का कम ही अवसर प्राप्त हुआ, परन्तु जितना अवसर उन्हें मिला, दोनों एक-दूसरे के विश्वास से बन्धे थे। एमिली सुभाष के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सहायक के रूप में हर कदम खड़ी रही।

संदर्भ :

१. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड -१, प्रकाशित भारत शासन प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, संस्करण १६६८, पृ. १८०
२. कृष्णा बोस, ट्रू लव स्टोरी : एमिली एंड सुभाष , नियोगी बुक्स नई दिल्ली संस्करण २०१५ पृ. १२-६०
३. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-१, प्रकाशित भारत शासन प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, संस्करण १६६८, पृ. xiii
४. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड - ७, प्रकाशित भारत शासन प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, संस्करण १६६८, पृ. xiv
५. उपरोक्त पृ.१
६. उपरोक्त पृ.४
७. उपरोक्त पृ.६
८. उपरोक्त पृ.६-१०
६. उपरोक्त पृ. २३-२४
१०. उपरोक्त पृ. ६१
११. उपरोक्त, पृ. ६४
१२. सुगाता बोस, हिज मेजेस्टीज ऑपोनेंटः सुभाष चन्द्र बोस एंड इंडियाज स्ट्रगल अगेंस्ट एम्पायर, हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. ६५
१३. शिशिर कुमार बोस (सम्पा.), नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड़ -७, प्रकाशित भारत शासन प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, १६८२, पृ. १२४
१४. सरमिला बोस, लव इन द टाइम ऑफ वॉर (२००५), सुभाष चन्द्र बोस जर्नी टू नाजी जर्मनी (१६४१), सोवियत संघ (१६४५), इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली जर्नल, १५ जनवरी, २००५, पृ. ४-५
१५. हेस. रोमेन, नाजी जर्मनी में सुभाष चन्द्र बोस - राजनीति, खुफिया और प्रचारः १६४१-१६४३. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २०११, पृ. ३४३-३४४
१६. शिशिर कुमार बोस, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, एन.बी.टी. नई दिल्ली, १६६६, पृ. ७६
१७. आशा गुप्ता सुभाषचन्द्र बोस निस्संग क्रान्ति-पथिक प्रकाशक आत्माराम एण्ड संन्ज, संस्करण १६६७, पृ. १२४
१८. शिशिर कुमार बोस (सम्पा.), नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड़ -७, प्रकाशित भारत शासन प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, १६८२, पृ. xvii
१६. उपरोक्त पृ. xvii-xvi
२०. पी. एन. चोपड़ा एवं प्रभा चोपड़ा, गान्धी, नेहरू, सुभाष प्रभात प्रकाशन संस्करण २०१०, पृ. ११५

सहायक आचार्य- इतिहास
राजकीय महाविद्यालय राजगढ़ (अलवर)

ISSN 2250-2769

CENSORED AND PASSED
For D. G. I. B.

38/2 Elgin Road or
Woodburn Park
Calcutta
7. 12. 34

Dear Fl. Schenkl,

I arrived here on the 4th December without any trouble on the way. But I was too late. My father left this mortal world on the 2nd December — that is, about 40 hours before I reached Calcutta. My mother is utterly disconsolate, though we, brothers and sisters, are trying our best to console her. For a Westerner, it is difficult to understand our mentality. A Hindu wife's life is so bound up with that of her husband that life is unbearable to her in his absence. Nevertheless, we are hoping that she will be able to stand the bereavement! Recently, there have been many other bereavements in our family and all these have had a cumulative effect on my parents.

I do not know if I shall be able to write to you in future. But in case I cannot, please do not misunderstand me. At present I am living like a prisoner in our house. This order of "home-internment" was served on me as soon as I landed in Calcutta. For the present, Government have allowed me to stay with my mother

ISSN 2250-2769

Raising Funds and Azad Hind Bank

Kapil Kumar

'Every life and every property belongs to the nation when it is involved in a war. Your lives and your properties do not belong to you; they belonged to India and India alone. .. I would appeal to every Indian whether he is a Hindu, Sikh, Muslim or a Christian not to fail in performing his duties.. if we are all poor, then we should be justified in seeking foreigner help, but there are also rich people amongst us and our foreign friends also know it. When our own people have ample resources, it is sheer disgrace for us to stretch your hands to other for helps.' **- S.C. Bose , 25 October 1943.**

One of the major tasks before Netaji was to raise funds for the Azad Hind Sarkar and Azad Hind Fauj. Right after landing in Singapore on 2 July, 1943, he adopted multiple methods to raise funds, descriptions of which we get from various source. Hence, an attempt is made here to bring out at one place his appeals, methods, orders and efforts for raising funds and the contributions of those who gave all for the liberation of Motherland. Practically, all the sources point out to one thing that he did not depend on any foreign power for financial assistance but placed his trust in the Indian Community Abroad, particularly, in South East Asian countries. Why he did so is absolutely clear and denotes his farsightedness to be economically self-sufficient. He had clearly understood the differences that emerged between INA under Gen Mohan Singh and the Japanese. It was difficult to act independently when depended on resources of others which Rash Bihari Bose had understood and had spelt out on 3 July, 1943 to Lt. M. G. Mulkar:[1]

People misunderstood me from the affairs of Raghvan. Thought I am living in Japan, do not forget that I am an Indian and suffering this life of an exile for the sake of India only in the hope of making true the shattered dream of my youth. Rash Bihari clarified that Indians neither had money nor men nor arms. That was the reason he organized the Indians scattered allover the East so that they could liberate India with their own men and money.

Lt. Bharti Asha Sahay spelt out Netaji's thiking as thus:[2]

He declared more than once that he was not to ask any Japanese allies for financial help before he had gained financial independence by collecting from Indians. There could be no justification asking others to help when our own resources have not been exhausted. India's freedom is for Indian's benefit.

Any relation with a foreign power was not only to be on equal terms but was to be aimed at India's freedom for which Axis powers had to agree. Doubts had to be cleared among those Indians who felt that Japan might colonise India. Netaji, on his arrival in Singapore made this amply clear while addressing the Indian community:[3]

My loyalty is to India and India alone and not even our enemies will have the audacity to urge that I am capable of betraying my country…if the British government could not demoralize me after persecuting me all my life no one else can do so. And if cunning British politicians could cajole nor deceive me– no one else can hope to do so.

The first account for attaining financial self-sufficiency by Netaji came from ***The Diary of Rebel Daughter of India-A Diary*** which was published in November 1945 it self. On 1 August 1943 she wrote 'Gifts-money and in kind-are daily being received from the most distant settlements. There is no doubt about it. Every where there is optimism and activity. Netaji has become the main leader of your movement.'[4] She further mentions about her travelling with Netaji to Kuala Lumpur and stares: 'En route, at every station, Indians thronged the platforms and gave purses for the movement. At Kuala Lumpur the train had to be detained nearly quarter of an hour before the enthusiastic crowds permitted Netaji too alight.' In public meetings presentation of purses and gifts would take an hour.[5]

On 5 September 1943, Netaji while addressing the people of Kuala Lumpur had stated: 'Friends! I want to thank you most heartily for the purse you have presented to me this evening. It is a handsome pursues, but I shall call it handsome, only if you regard it as a first installment.'[6]

The Diary gives a descriptive account of 25 October, 1943 meeting at Japan & Besar Stadium in Singapore stating that 'Money and gifts have been pouring in ever since Netaji has arrived in Syonan. But he was not satisfied with the collections. So, Netaji issued a special appeal and spoke to the wealthy

ISSN 2250-2769

Indian businessmen at the Stadium'. The thundering voice in the appeal of Netaji has been reproduced, thus, in her Diary:[7]

The poor classes have been coming forwards voluntarily and with enthusiastic spirit to offer everything that they have. Poorer class Indians like watchmen, washermen, barbers, petty shopkeepers and gowalas have come forward with all that they have. And in addition to that some of them have also offered to become volunteers…

Some of these poor people came to me and not only did they give all the cash they had in their pockets but went further and gave me their savings Bank books which represent their lives' saving. Are there not rich men among the Indians in Malaya who can come forward and say in the same spirit? Here is my bank book for the cause of Indian Independence?

Indians as a nation believe in the ideal of self-sacrifice. Among the Hindus we have the ideal of the Sanyasins and the Muslims have the way of the Faquirs. Can there be a greater cause, a nobler cause and a holier cause than that of liberating 38 crores of human souls?

My first request to Malayas is for 10 crores of rupees, which would be approximately 10 percent of the value of Indian possessions in Malaya. When the collections began nearly seven million dollars were received on the spot. With in the next 24 hours the total collections had reached the figure of 1 crore and 30 lakhs dollars.

Kesar Singh Giani, another AHF Veteran also described this event:[8] This speech had the desired effect. As a result of this appeal many came pouring in from all directions. About Rs. one crore and 30 lakhs were promised on the spot. The report of the I.I.L. Malaya Branch published at the end of 1943, reveals that collections from Malaya only amounted to 77,27,947 dollars in cash, beside 86,819 dollars' worth articles of gold jewelry. In July 1944 this amount had gone up to 1,53,54,104, dollars. Total contributions from Malaya were about Rs. 5 crores, from Burma 15 crores and from Thailand 1 ½ crores.

Various committees were constituted to collect funds, seek donations and inspire people to contribute. Lt. Asha Bharati Sahay mentions that when her father A.M. Sahay met the Indians held by Japanese in various prisons, they 'where furious to hear this allegation' that 'they have no feelings for an Independent motherland and in supporting the Azad Hind Government'. According to her their reply was:[9]

They where ready to give not only their assets, but their very lives for the cause, provided it was truly for India's freedom. Papa assured them that justice would be done, after which he returned to report the whole matter to Netaji.

Sahay also suggested to Netaji that 'For our war of liberation, we should persuade the Indian Industrialists and prosperous traders to formally surrender their concerns or the managers our agents to manage their respective concerns and supply such goods as we need for our war efforts.'[10]

Netaji agreed to the suggestion and told the Japanese that 'whatever was needed from Indians for the war effort should be channeled through the Azad Hind Government. Raw materials were needed for manufacturing various items, so the merchants were asked to help. Either raw material can be imported from other territories or it can be acquired from Burma. They agreed. Thus, in response to Netaji's call, all Indian factories were surrendered to the Azad Hind Government without disturbing the working conditions.'[11]

A Committee was formed to collect donations, which was headed by Mr. Attavar Yellapah and Mr. S.M. Bashir as the vice chairman – an extremely rich businessman of Burma, who also contributed to the funds.[12]

Attavar Yellapah [13]

Attavar Yellapah was born at Hampanakatta near mangalore in Karnataka on 4 may 1919. After doing his Law from English he joined a Legal Firm in Singapore. Here he joined the INA and helped Netaji for raising funds. Netaji appointed him as Advisor in the Azad Hind Sarkar. His where abouts after the second world war are a mystery. One view is that he died in Burma whereas another view that he came back to India and led the a Sadhu's life in an Ashram in Madhya Pradesh. According to A.C. Chatterji, he is first Chairman of Azad Hind Bank.

The slogan given by the Fund – Raising Committee was ***Karo sab Niochhaawar Bano Sab Faqir.***[14] Mr. S.M. Bashir translated the slogan in two other languages and at the same time kept on contributing lakhs of rupees from time to time. Another Indian was Mr. Nizami who contributed 27 lakhs rupees.[15] Messrs. Gian Singh and Co., Singapore, contributed 10 lakhas dollars and Messrs. T.S. Ganpat Ram, Penang, 8 lakhs dollars.[16] Not only this, the temples in Malaya also came forward to donate for the cause.

The Chettiar temple located at Tank Road in Singapore was a very famous place of worship and Netaji appealed to the temple trustees for

contributions. The trustees expressed their willingness for contributing to Azad Hind Sarkar but requested Netaji to visit them and speak there. Netaji agreed to visit the temple along with his officers belonging to different castes, creeds and religions. The trustees made a departure from their earlier practices and agreed to this. This demonstrates how liberal the Hindu Temple authorities acted keeping the Independence of India above their traditional customs of not allowing certain castes. Netaji and his officers visited the temple and as per the assurance given, all were welcomed with tilak on the forehead and garlands – the Hindu tradition. Netaji accepted the contributions (exact amount unknown) and while addressing the gathering stressed on Universal Brotherhood – the eternal principle of Hinduism – *Vasudev Kutambakkam*.[17]

According to the Rebel Daughter [18]

Our collections up till the end of this year have reached a total of 77,27,947 dollars. Syonan tops the list in Malaya with 29 lakhs, 94 thousand. And this does not include jewellery and silverware which was given as gift. That adds another 86 thousand dollars. I have gathered the figures from Sri M. – our Chief Accounts Officer.

According to her 'when Netaji visited Penang recently, in the public meeting, he appealed for funds for the Provisional Government, a young domestic servant in the audience brought out a silver flower vase and gave it as gift to Netaji. He said this was the only jewel he possessed and it was hallowed by the memory of his dear departed mother. Netaji related the facts about the flower vase to the vast audience and auctioned it. He said he would accept no bid less than twenty-five thousand dollars. The bids climbed up and on. The vase ultimately fetched a lakh and five thousand dollars!.'[19] Even the hawkers and rickshaw pullers contributed their savings and earnings for India's liberation. But their names are not known to us as many records of Azan Hind Sarkar were lost. this again demonstrates the impact of Netaji's appeals and the responses of the people to contribute for India's freedom and such cases in Burma and Thailand were no different.

Netaji had first visited Rangoon on 11 August, 1943 to attend Burma's Independence Day celebrations. He again came in September, 1943 when he visited the Tomb of Bahadhur Shah Zaffar with the PM of Burma, Dr. Ba Maw. On 7 January, 1944 Netaji again arrived in Rangoon. By this time, the

ISSN 2250-2769

headquarters of Azad Hind Sarkar and the Supreme Command Headquarters of AHF also had been shifted to Rangoon. This had been a strategic decision to be nearer to India. The welcome given to him again demonstrated the enthusiasm of the Indian community. In fact, whoever volunteered to Join the AHF not only gave his/her services but also donated whatever money/savings one had and the women gave their jewellery.

26 January, 1944 Independence Day was celebrated in Rangoon. It was attended by more than 60,000 people – some even having walked 7 to10 miles to participate. At the beginning of the meeting Netaji was garlanded and we have an eye witness account of what happened after that from the accounts of the *Rebel Daughter* and Giani Kesar Singh:[20]

He had wound the garland of flowers round his hand as he spoke. When he finished his stirring speech, enthusiasm was at fever-heat. Then an idea struck him, He asked, if any body was ready to buy the garland: the money he would receive, would go to Fauj Funds… "The first bid was one lakh of rupees. In a few minutes, the figure swelled. One lakh and a half – three lakhs – four – four and a quarter - five- six-seven lakhs?

A young Panjabi youth had been the first bidder. When the figure reached four and a quarter, he shouted five. When the final bid of seven lakhs was being announced, he looked vexed and intent on an inner struggle. As the garland was about to be declared sold, he jumped up and rushed to the dale. I give all my wealth – all that I have – every pie that I own be shouted. Subhas Babu caught the trembling youth by both his hands. He said, Done – the garland is yours. Patriotic men like you deserve the crown of glory, our Fauj shall win.

It is our misfortune that we do not know the name of this patriotic Punjabi Youth.

Netaji week was celebrated in Burma again form 4 to 11 July, 1944. The proposal for this celebration had been made by Mrs. M.-the Rebel Daughter.[21] I have put forth a suggestion that 4 July, the anniversary of assumption by Netaji of our leadership we should weight him against jewels. For this an appeal should be issued to women to give their bangles and necklaces and rings. Sri C – says it is a good suggestion. I am writing to our Women's Section to take it up.

She his noted in her Diary how excited and happy she felt when the approval came for the same. Another proposal was made to weigh Netaji in gold.

ISSN 2250-2769

Initially, Netaji was reluctant but ultimately gave his consent. On 4 July the people of Rangoon weighed him all donating whatever jewellery they had – earrings, necklaces, chains, bangles and rings. The Rebel Daughter wrote:[22]

My suggestion with regard to weighing our Netaji against jewels on 4 July has been approved. Women are sending in their precious jewellery – a Madrasee lady has given away all her ornaments. I am sending my ear rings, and necklaces. Out of the bangles I am keeping only two pairs.

It was on this occasion only that an elderly woman walked to the scale holding the picture in a golden frame of her son who had died. She removed the picture and put the golden frame on the scale. Netaji touched her feet. Unfortunately, we also do not have the name of this elderly woman.[23] Much against the wishes of Netaji, on another occasion, it was decided to weigh him in gold. The estimate was that about 30 million Tikals would, thus, be collected when the gold converted into currency. By 23 January the collection had been completed and Netaji was informed. Such was the enthusiasm of the people that soon more than double of the quantity of his weight was collected.

Another incident regarding donations by people in Rangoon has been described, thus:[24]

'P – related how once in the month of May, Netaji was at the Aerodrome, about to fly to Syonan on urgent business. He looked very pre occupied. Our leaders who had come to see him off did not know what was preying on his mind. A wealthy Chettiar approached Netaji and asked if it was possible to know the cause of his worries. Netaji answered It is a question of finance. I do not think you in Rangoon can solve my problem. I require 20 lakhs of rupees, and at once, for our Fauj requirements. Our Fauj is in a critical condition and immediate reinforcements have to be sent.

In the meantime, the aeroplane was ready to fly away, and Netaji got into his seat. For some unknown reason the plane was delayed by ten minutes. The Chettiar took the Problem to the assembled leaders. Quick decisions were taken. And before the plane flew away, Subhas Babu was given the list of donors to the twenty lakhs he had asked for – the whole sum having been contributed by those present.

Abdul Habib Yosuf Marfani came from the Memon family of Dhoraji of Saurashtra in Gujarat and was a rich businessman settled in Rangoon. On 9 July,

ISSN 2250-2769

1944 after Netaji's call for funds from the dais Marfani walked to the stage and offered diamonds and jewellery in a silver tray along with a bundle of title deeds of his property. He contributed Rs. 1 crore for the Azad Hind Sarkar. Only thing Habib asked in Return was a Khaki uniform to wear and work to be allotted to him for devoting his entire time for the liberation of India.[25]

In fact, Abdul Habib Yusaf Marfani was thus motivated after listening to Netaji's speeches in meetings which he regularly attended. Initially he had started by donating two and three lakhs rupees at a time before giving his entire fortune for the cause. These exemplary services of Habib were talked about as 'Habib Mixture'. Netaji referred to his services in his speeches as thus.[26]

Some say, 'Hamid has gone mad'. I agree. I want every one of you Indians to become mad. To achieve victory and freedom for our country, our Motherland, we need such men and women.

He was decorated by Netaji with the highest civilian award of ***Tamgha-a-Sevek-a-Hind*** . Later on, Habib succeeded Shri Parmanand as Chairman of the supply Board in the Azad Hind Sarkar.[27]

Another Gujarati family hailing from Dwarka and settled in Rangoon was the Betai family. Hiraben Betai donated all she had in cash and ornaments valued about Rs. 50 lakhs.[28] She later on joined the Rani Jhansi Regiment. Her husband Hemraj Betai(settled in Rangoon in 1924) also joined the AHF and soon three other sister of the Betai family – Rama Mehta, Neelam and Lilavati joined the Rani Jhansi Regiment. Hiraben was awarded 'Sewak-e- Hind' medal by Netaji on 21 August 1944 at a darbar in kamayur, Burma.[29]

This family contributed in many other ways also like Mr. B.C. Mehta driving Netaji in the border areas and saving his life at Pakoku when the enemy plane carried a bomb attack.[30] we have certain others narratives from Burma of this nature. Saraswathi Rajmani was the daughter of an extremely wealthy Indian who had a flourishing business and owned many lands. She was only 16 years old when she heard Netaji's emotional and inspiring speech in Rangoon. At the end of the meeting she joined the row donors, removed all her diamond and gold jewellery and donated for the Azad Hind Fauj. Since she was a minor Netaji went to her residence and met her father to return the jewellery. The father himself mentioned that he too was a donor for the cause of motherland and Saraswathi requested Netaji to join the Rani Jhansi Regiment and Netaji recruited her.[31]

Besides these, individual donation, the most famous case is that of the Ziawadi Estate. In Burma Ziawadi Estate was owned by an Indian who was away to India during this period. This was a huge State spread in 50 Sq miles and inhabited by 15,000 – mostly Indians.[32] The state had a Sugar Factory, agricultural operations and other means of production too. With the owner being away it was managed by Shri Parmanand and Shri B. Prasad who handed over the estate to Netaji. Netaji made certain changes like an AHF base Hospital and a training camp for volunteers there along with a cantonment. The Japanese recognized the state as Indian Territory under the Azad Hind Sarkar. So did the newly formed Government of Prime Minister Ba Maa of Independent Burma. This Estate had small factories for blanket making, rope making and mat making and the products were supplied to Azad Hind Fauj. Even Mechanical and Electrical Engineers were trained here. The Poultry farm and vegetables, etc. were supplied to the Azad Hind Fauj hospitals and the army mess.[33] Its management was now looked after by the Azad Hind Dal –an organization established by the Azad Hind Sarkar to run civil and criminal administration in the areas under its control in the estate which included 80 to 90 villages.

Mr. Parmanand was the Manager of Ziawadi Estate who handed it over to Netaji, he was made the Chairman of IIL in Ziawade Estate. After the retreat of AHF from Burma the British had to fight battles at Ziawadi for the AHF soldiers there could not accept British domination and fought bravely till many died or were taken prisoners. These aspects were revealed during the Red Fort trials by a Sepoy Shiv Singh in as a defense witness statement.

The people contributed from as far as Sumatra, Java, Borneo, Hong Kong, Shanghai, Philippines and Japan.[35]The contributions from Indians in these countries amounted to millions.

In Bangkok, Thailand, Messrs. Boor Singh Indar Singh, a company gave 12 lakhs Tels. And Lala jagat Ram 221 Tels. Mr. Kappasi gave 10 lakhs Tels and Mehtani Karachi Stores gave 6 lakhs Tels. Sardar Iqbal Singh Narula gave 200 pounds of silver which was equal to Netaji's weight. Sardar Mahan Singh donated all his property which included cash and cattle along with his daily earnings. Baiyanath Tiwari gave 20 acres of his land for training camp.

Mr. Kiamal sent 7 lakhs Piasters from Saigon. According to Ram Singh Rawal, 'the response from the poor was simply marvelous.'[36] The Labourers and

the Gwalas of Malaya and Thailand, the labourers and rickshaw pullers of Burma and the poor Indians of other regions in East Asia, indeed stole a march over the rich Indians. They deserve special mention and praise. They were the first to mobilize themselves into according to the instructions of Netaji.

At mass meetings, addressed by Netaji, these poor folks would come most humbly and give their all to Netaji. It was indeed a touching sight to see thousands of them coming with their small boxes, containing the earnings of their lives, and putting the same at the feet of their leader. Netaji would be over whelmed with feeling and emotion at the sacrifice, and would personally embrace them, and ask the richer folks to emulate them. The Gwalas of Thailand and Malaya were so anxious to do their best for India's independence that they would contribute whatever they had, would place their cattle at the disposal of the Indian Independence League and would press Netaji to accept them as recruits for the INA, and to enable them to fight for India's independence.

It was these Gwalas, who came mostly from U.P. (those in Thailand mostly come from the district of Gorakhpur) and the Panjab, and the labourers, who came mostly from South India made the movement such a strong, vast and tremendous organization. At mass meetings Netaji would be profusely garlanded and later on these garlands would be auctioned and would fetch sums that were never below one lakh.

He adds that only on one occasion in January 1945, 4 million dollars were collected in Malaya with in two weeks. The total amount collected in Malaya ran into tens of millions of dollars.[37] These funds were utilized for buying supplies ammunition, transportation and other needs of the AHF. Momita Gupta describes the utilization of these funds as such.[38]

Netaji told the Indians to contribute money and he gave the money to the Japanese to buy arms and ammunition, and to the Burmese for food. Everybody gave jewelleries, diamonds, emerald, etc. Three big tables were full. South Indians especially gave rubies and diamonds. North Indians and South Indians everybody gave things in huge quantity. Netaji weighed them and gave them and gave them to the Japanese to buy arms. Could anybody say till today, could the Japanese or the Burmese say that the INA sat on their head and ate everything? Did they say that? Nobody said that because Netaji paid for everything. There is hardly any parallel to this kind of resource mobilization to meet the finances of a

newly formed Government and army abroad with the help of people of Diaspora. Netaji's own words are worth mentioning here.[39]

In spite of tightened belts round empty stomachs, we have refused to borrow loans from the Jap or any other Government. We know one thing; if we take loans today, we are jeopardizing the economic freedom of our country tomorrow. Therefore, even from our friends, we do not take loans – we refused to borrow money. All our finances are based on the cardinal rule: Indians stand on their own legs; they refuse stilts lent by others. This has given us a lot of independence in our dealings with the Japanese. Also, it has prevented our worst enemies from pointing a finger at the smallest item in our programme to say that we have bartered the future of our country.

Azad Hind Bank

"Three month ago, we established a bank of our own in Burma- the National Bank of Azad Hind limited. The bank has already proved to be a success…"

- S.C. Bose, 5 July 1944.

The Rebel Daughter in her diary wrote on June 5, 1944:[40]

Sir R- looked us up at tea- time in the morning. He described to us how in the beginning of April the National Bank of Azad hind came into existence. Netaji was discussing finance problems with a Muslin multi-millionaire here in Rangoon. He suggested to him that we must have our own Bank, because a government without a bank is unheard of. Again, as soon as Imphal falls, our government would be issuing its own currency and a Bank would be invaluable then, Netaji asked our friend the multi- millionaire his suggestions for it.

The reply came in the form of a question 'Netaji, with how much capital do you wish to make a beginning?' Subhash Babu suggested that fifty lakhs would suffice for the purpose. Prompt was the answer: Oh-oh, is that all you want? Then I myself shall give 30 lakhs, and the rest of the twenty lakhs I guarantee to present to you in a week's time.

According to her within a fortnight our Bank had taken legal shape and opened its doors to business. Shares totaled 50 lakhs, out of which 25 lakhs was paid-up-capital. The bank was registered under the Burmese Law of Registration. Its cheques are as good as the rupee notes in current use. All businessmen accept them and actually prefer them to Jap currency.[41] She further adds that 'Public response has been so good, and our credit so stable, that by now

three branches have been opened – and there is a demand for another five. The Bank keeps all the cash resources of our Government'.[42]

However, the establishment of the Bank was not so easy as it has been described by her because of the attitude of the Japanese. The Japanese, because of their own commercial interests, were not keen on Netaji's having a Bank of his own outside India's borders; so they raised every conceivable and inconceivable objection. For three days, they quoted expert bankers' opinions and cautioned Netaji against serious financial disasters involved in starting such as a Bank in war-time conditions in Burma, they saw no need for such a Bank either; they were sure of the failure of such an adventure. But Netaji would not give up and argued single handedly with the Japanese[43]. S. A. Ayer, a Minister of the Azad Hind Sarkar, states that negotiations regarding the establishment of the bank which lasted for over three days – almost three hours each day and 'was no less a troublesome affair'.

Netaji a told the Japanese that I am more than confident that the bank can not only do enough normal banking business but also attract enormous deposits from the Indian people. I do not visualize any disaster; if anyone threatens, I am confident of preventing it. Have a bank I must, and that too with in a few days, before I leave for the front. I must open the bank and then go to the front."

According to S.A. Ayar 'That silenced the Japanese pretty effectively. They shook their heads and said that if that be so, Netaji was welcome to have his bank, and they only hoped that it would not have a short- lived career.'

The Bank had a board of seven directors with S.A. Ayar, Propaganda Minister of the Azad Hind Government as Chairman. Headquarter of the Bank was at 94, Park Road, Rangoon. D.N. Bahaduri was the Managing Secretary. The bank had three branches in Burma, two in Rangoon and one at Taungie in the Sadan Shan State of Burma.[44] it's started functioning from 5 April, 1944 and the very day of its opening about 300 accounts amounting to about Rs. 25 lakhs were opened.[45] As regards, the reputation and operations of the Bank, Lt. Mulkar recorded, thus, in his Diary on 7 August 1944.[46]

I went to the Azad Hind Bank for cashing a cheque. The credit of the bank is already very high. The Indian merchants were experiencing difficulties for want of a bank of their own. The Azad Hind Bank has removed this felt want. Even the Burmese think it more safe. An officer of the bank informed me that the

deposit of the Azad Hind Government now exceeds 153 lakhs dollars. In addition to this there is a large deposit from the public.

Since the establishment of the Azad Hind Bank the prestige of the Indians in this part has increased to a great extent. They were treated as foreigners and were helpless. They had to depend on the whims of the foreign conquerors and there was none to defend them from plunder and oppression. The times have now changed. The Indians in these parts are now united and powerful. Many of them are earning lots of money from business.

The Azad Hind currency bore the signature of Netaji Subhas Chandra Bose on side and the picture of the Taj Mahal on the other.[47]

'That time the Bank was full of jewels, no army on earth, ever got that much of jewels given by the public' – Momota Gupta Mehta, Rani Jhansi Regiment.[48]

This Bank even donated five lakhs to the Government of Burma which was in need of funds.[49] The Bank also received payment on behalf of the Azad Hind Sarkar and this included the taxes paid by the Indian businessmen. On 24 April, 1945 when the Azad Hind Sarkar withdrew from Rangoon, the Bank continued to function. However, it paid of every creditor and every outstanding bill. Till 19 May, 1945 the bank had remained open in spite of British occupation of Rangoon. But on this day Brigadier Lauder closed the Bank and sealed its premises.[50]

Dina Nath, the Director of the Bank has given the following account of the assets of the Bank at the time when it was sealed by British as such.[51]

Total Amount lying in the Bank the day it was Sealed up	=About	Rs 45,00,000.00
Amount lying to the credit of INA	=	Rs 35,00,000.00
Amount given to the Burmese Government	=	Rs 10,00,000.00
Amount given to BDA	=	Rs 5,00,000,.00

Rs 8 to 10 lakhs amount of Paddy

Large quantities of stores from various camps of IIL were also taken by British Army.

Dina Nath, after his release, urged the Congress leaders to open Azad Hind Bank in India with branches throughout the country. He suggested that people should be asked to withdraw funds from the Government Banks and

deposit in Azad Hind Bank. However, the Congress paid no heed to this suggestion.[52]

Staff members of the Azad Hind Bank

Nayan Gandhi, Manager, Azad Hind Bank,

G.S. Murgesan, Incharge, Cash Department

A. George, Token Incharge, Cash Department,

Y.P. Kumar, Head Clerk,

A. Kumaraya,

M. Marimuthoo, Letter Despatcher

The INA treasures like fact related to what happened to them, who looted them etc. is another story. No doubt, Shahnawaz had an appendix in his report demanding a separate enquiry into the treasures. But this did not happen. The recently declassified files show that even the Indian Mission in Tokyo complained about the cost of INA funds in Japan.

When Netaji was at Maymyo, a special Japanese Military Officer from Tokyo came to seek Netaji's final approval for the designs of currency notes and have a signature on them for final printing. The currency notes were not only in the denominations of Rupees One, Five and Fifty but also for Anna, Two Annas, Four Annas and eight Annas instead of coins.[53]

References :

1. Cited in Priyadarsi Mukherji, Netaji Subhas Chandra Bose: Contemporary Anecdotes, Reminiscences and Wartime Reportage, Delhi,2009 pp. 193-4
2. A.M. Sahay, op.cit., p. 323; On behalf of the IIL Netaji even offered money to the Japanese for the 'purpose of manufacturing and equipping five airplanes for Imperial Nipponese Army' Chalo Delhi, op cit., p.114
3. 4 July, 1943 Singapore, cited in Sisir K Bose and Sugata Bose,(Ed.),Chalo Delhi, op.cit.p.43
4. The Diary of a Rebel Daughter, op. cit.,p.51.
5. Ibid.,p.54
6. Ibid.,p.55
7. Ibid, pp. 71-72. The full texts of Netaji speech along with extracts from his other speeches regarding raising of funds have been given in Appendix 4.
8. Giani, op. cit. p. 102

9. A.M. Sahay, op. cit.,p.322
10. Ibid. p.322.
11. Ibid. p.322.
12. Chatterji, op. cit., p.160
13. https://www.deccanaherald.com/content/245316/remembering -tulu-patriot.html
14. “donate everything, Become Sages”, Rawal,op.cit.p.174;
15. Ibid, p.161; Unfortunately, we do not get further details about him.
16. Gaini, op. cit. p.102-103
17. Chatterji, op.cit., pp.147-149
18. Rebel Daughter, op. cit., p 78
19. Ibid. Our misfortune that we don't get the name of this poor boy.
20. Giani, op. cit. p.130: Rebel Daughter, op. cit.p.181
21. Rebel daughter, op. cit.p.93
22. Ibid.
23. Azad Hind Akhbar
24. Rebel daughter, op.cit. p.93
25. Chatterji, op cit. p. 160; Rawal, op. cit., p.173
26. Sahay, op. cit. p. 323; Asha Bharati Sahay has perhaps wrongly mentioned the name of Habib as Hamid, while quoting Netaji speech.
27. Rawal, op. cit. p. 173
28. Priyadarshi Mukherji, op. cit.p.213,p.215
29. Ibid., p.215, Diary of Rebal Daughter, p. 113
30. Priyadarshi Mukherji, op. cit. p.178
31. Shobha Warrier, The Forgotten Spy, 26.8.2005 rediff.com
32. Ram Singh Rawal, op. cit., pp. 175-176
33. Chatterji, op. cit., p.212
34. Ram Singh Rawl, Toyko se Imphal(Hindi), New Delhi, 1946, p.178
35. Ram Singh Rawal, INA Saga, op. cit. pp. 175-176
36. Ibid., pp. 153-154
37. Ibid., p. 161
38. Cited in Priyadarsi Mukherji, op. cit. p. 182
39. Rebal Daughter, op. cet. P. 97
40. Diary of a Rebel Daughter, op. cit. p. 90

ISSN 2250-2769

41. Ibid.
42. Ibid. op. cit. p. 91
43. S.A. Ayer, op. cit. p.196
44. Rawal, op. cit. p. 184
45. Mulkar, op. cit. p. 136
46. Ibid. p. 147-148
47. Giani Kesar Singh, op. cit. p. 103
48. Cited in Priyadarsi Mukherji, Netaji Subhas Chandra Bose: Contemporary Anecdotes, Reminiscences and Wartime Reportage, Delhi, 2009, pp. 182
49. Chatterji, op. cit. p. 264
50. Diary of a Rebel Daughter, op. cit. p. 127
51. The signed statement of Dina Nath, INA Relief Committee file No. 3, 1946, NAI; However, Netaji while withdrawing from Rangoon was able to take all the jewels and jewellery that was deposited in the bank.
52. File No. 21 June 1945, KW-1, op. cit. p. 185
53. Chatterji, op. cit. pp. 227-28

Former Professor of History and Director,
Centre for Freedom Struggle and Diaspora Studies,
IGNOU, New Delhi,

ISSN 2250-2769

Thoughts of Subhash Chandra Bose and Hindu Concept of Socialism: An Appraisal

Lucky Sharma[1]
Mukesh Sahay[2]

Abstract

Subhash Chandra Bose, a rational nationalist and devout Hindu was born on January 23, 1897 in Cuttack, Orissa. He is one of the India's most imperative armed warriors who expensed his life to gain freedom for India, not merely from the imperial vicious government but from inner challenges also.The skewed depiction of history by the dominant schools, which frequently ignored or undermined the divergent viewpoints- accounts for a large portion of our tale of freedom from imperial rule.Throughout time, several historians have attempted to suggest that Netaji was a fervent believer in the Indian school of atheism and had some leaning toward communist views and ideologies. However, a careful examination and interpretation of the available evidence confirms that Subhash Chandra Bose was neither a communist nor an atheist. This article attempts to address prevalent misconceptions about Netaji's views on religion and communist thoughts. In this endeavour, the writers will attempt to demonstrate the notion that Bose was a devotee of Hindu gods and goddesses and had a strong belief in Indian religious values. Furthermore, it will be demonstrated that the ideology of socialism that he believed is an indigenous idea of India.This viewpoint will be bolstered by various examples of Indian texts and speeches. The writers will discuss few important primary and secondary source based examples that can be validated, and by doing so, the misperception regarding Netaji's politico-religious beliefs, which were characterised as 'atheist-communist,' will be dispelled. In order to completely appreciate his tale, authors would like to emphasise some of his legacies that were not fully counted in Independent India.

Keywords : *Armed Freedom Struggle, Hinduism, Indian Independence Movement, Indian National Army, Netaji, Socialism, Subhash Chandra Bose*

Introduction

Several streams in the holy river of India's freedom movement have gone unnoticed in popular debates thus far. The idea of India of Subhash Chandra Bose and his comprehensive armed approach to get freedom is one out

of them. He travelled to Vienna for treatment in 1932 on the clue that he had tuberculosis in his lungs. Where he met Vithal bhai Patel and after multiple discussions they came to on a conclusion that the Indian nationalist movement would not emerge from its then-static posture and begin top lay a part in international affairs unless it develops global ties. Both of them believed that the most effective method to speed India's freedom is to make it an issue of strife between giant world states. Ultimately, forcing Britain to face the challenge of having to significantly modify its foreign policy because of India.[1] On the other hand, Gandhi decided to close INC's little office in London after the Nagpur session in December 1920. It was maintained for publishing literature about India to inform the British people about the sufferings of India because of the foreign rules. This office used to connect with many liberal English politicians. Once it was halted, there was no official entity outside of India that could express the views of Indian nationalists and there was scarcely any comprehension or appreciation of the Indian point of view overseas. Seldom, certain American journalists who visited India reported briefly for their publications since the British controlled the news agencies that ran in India. Although the issue of Indian freedom was widely recognized and debated because of Karl henry von Wiegand's thorough reporting in the 'Hearst' newspapers. On the other hand, the British engineered the visit of an American author named Catherine Mayo who wrote a slanderous book about India called 'Mother India'. It was later revealed that it was heavily subsidised by the British Government in order to defame Indian leaders and the nationalist movement. This was done to counteract some effects of reporting in the Hearst newspapers. All of this indicated that Indian nationalists would not be able to advance their cause without a strong organisation to combat British propaganda against India abroad.

The twentieth century is characterised by a variety of ideologies and intricate geopolitical structures. Finally, it resulted in devastating world wars and a number of other unexpected global occurrences. Gandhian ideology, which focuses on the non-violence, was used as the most popular strategy in India's mainstream war for independence. However, the concept of nonviolence seemed absurd and unpalatable to young Subhash Chandra Bose. At the time, when ICS was the most sought after career for an Indian family. He succeeded with distinction in the vital first exam but denied appearing the more routine but

ISSN 2250-2769

clinching final exam. For him, Indian independence to be a higher calling than the civil service. He was a stupendous scholar and had keen interest in the languages and philosophies. His love for scholarliness can be observed from his enlightening letter to Chitranjan Das on 16 Feb 1921. It is a letter of opinion for the development of 'Indian National Congress' in which, he writes, 'my personal view is that the Congress has to maintain a permanent staff. They will do research on individual problems. Each one will collect up-to-date data and the Congress Committee will formulate a policy vis-a-vis every individual problem. Today the Congress has no definite policy with regard to many national problems. That is why I think the Congress must have permanent quarters and a permanent staff of research students. Besides, the Congress should open an Intelligence Department. It has to be so arranged that all up-to-date news and data about our country are available in the Intelligence Department. Booklets will be published in every provincial language by the Propaganda Department on each question in our national life. In such a book, the policy of the Congress will be explained and the grounds on which such a policy has been formulated will be given.[2] He was very clear that India was far behind the free nations by several centuries in its march to progress. When the Second World War was underway, the majority of freedom movement leaders were feeble and without hope. Bose made every effort to take advantage of the circumstance in order to promote India internationally and get support for his country.

Bose's thoughts on Hinduism

For a traditional Hindu family, religion is a natural connection; its metaphors remind them of the ethical practices that prevail in society. Swami Vivekananda, Bal Gangadhar Tilak and Aurobindo Ghosh had successfully fused religion with the idea of nationalism. Erroneously, it is believed that Netaji was an atheist. How ever, Subhas issued no public statements on religion, but Hinduism was an essential part of his Indianness.[3] We have enough of evidences to support his personal faith in Hinduism and it cannot be inferred that he was an atheist just because he did not make any public declarations. His interest in Hindu spirituality was evident as soon as he enrolled at Presidency College. As he asserts, 'there was a group similar to ours consisting of earnest boys who considered themselves the spiritual heirs of Ramakrishna and Vivekananda. For the first two years of my college life, I was greatly under the influence of the

group referred above and I developed intellectually during this period. It followed generally the teachings of Ramakrishna and Vivekananda but emphasised social service as a means to spiritual development. It interpreted social service not in terms of building hospitals and charitable dispensaries, as the followers of Vivekananda were inclined to do, but as national reconstruction, mainly in the educational sphere.[4] His interest in Hindu spirituality could be clearly recognised from the above statement. During his college years, he used to take part in the community Durga Pooja with a great deal of enthusiasm and emotion. One such letter, which he sent to his sister-in-law from the Mandalay prison in Burma on December 26, 1925, serves as an example. Bose talks on his unshakeable belief in spiritual and religious ideas. He writes, 'Who knows how long we shall have to be in prison? But, all our suffering will be bearable if we get the chance of worshipping the Mother once a year. In Durga, we see Mother, Motherland and the Universe all in one. She is at once Mother, Motherland and the Universal spirit.[5] In addition to that, in a letter; he sent to his elder brother on October 16, 1926, he describes how he felt about the importance of Durga Pooja. He ascribes, 'It (Durga Pooja) is a source of aesthetic enjoyment, intellectual recreation and religious inspiration and affords abiding solace. Today is Bijoya Dashmi and throughout Bengal, relatives, friends and even enemies will be soon embracing one another in fraternal love.'[6]Additionally, reading his March 5, 1933, letter to his close friend Dilip Kumar Roy, 'To be quite frank, I am torn this side and that - between my love for Shiva, Kali and Krishna. Though they are fundamentally one, one does prefer one symbolism to another. I have found that my moods vary and according to my prevalent mood, I choose one of the three forms – Shiva, Kali and Krishna. Of these three again, the struggle is between Shiva and Shakti. Shiva, the ideal Yogi, has a fascination for me and Kali the Mother makes an appeal to me. You see, of late i.e. for the last four or five years, I have become a believer in Mantra Shakti by which I mean that certain Mantras have an inherent power. Prior to that, I had the ordinary rationalistic view, namely that Mantras are like Symbols and they are aids to concentration. However, my study of Tantra philosophy gradually convinced me that certain Mantras had an inherent power and that each mental constitution was fitted for a particular Mantra. Since then, I have tried my best to find out what my mental constitution is like and which Mantra I would be suited for. Hitherto, I have

ISSN 2250-2769

failed to find that out because my moods vary and I am sometimes a Shaiva, sometimes a Shakta and sometimes a Vaishnava.'[7]Perhaps the undeterred spirit of nationalism in Netaji must have streamed out from his deep faith in spiritualism. Therefore, throughout Bose's active political life, his religious inclination and deeply held belief in the ideology of Hinduism reflects in his deeds and words. In reality, several of his INA officials have openly attested regarding Bose's religious and spiritual inclinations as witnesses to his active political activity. To further quote, Swami Stidananda and Swami Siddhatananda (based on claims made by Leonard Gordon, Bose's biographer, on July 13, 1979 in Singapore): 'While Bose was in Singapore, he frequently visited the Ramakrishna Mission in Norris Road and spent hours in the shrine room doing meditation. While bombs were beginning to fall on Berlin, he practised his spiritual exercises late at night in his own home. But in Japanese-occupied Singapore, he was able to make a connection to the congenial monks of the Ramakrishna society who spread the teachings of Sri Ramakrishna and Swami Vivekananda, which had so moved Bose and were still meaningful to him.'[8]Anita B. Pfaff, Netaji's daughter, recently stated that his father was a 'devout Hindu' on his 125th birthday. It is thus equivalent to character assassination by a group of people acting in their own self-interest to depict him as an atheist. In fact, against the British idea of many India in terms of diversity of religion and race, his answer was very clear. In 'The Indian Struggle (1920-42)' he observes, 'The ethnic diversity of India has never been a problem. Throughout her history she has been able to absorb different races and impose on them one common culture and tradition. The most important cementing factor has been the Hindu religion. North or South, East or west, wherever you may travel, you will find the same religious ideas, the same culture and the same tradition. All Hindus look upon India as the Holy Land. The sacred rivers like the sacred cities are distributed all over the country.'[9] Leonard A. Gordon describes Bose's search for a theological ideology to act as the foundation of nationalism and fuel to his political action in his book 'Brothers Against The Raj', 'Inner religious explorations continued to be a part of his adult life. This set him apart from the slowly growing number of atheistic socialists and communists who dotted the Indian landscape.' Although Bose scrupulously avoided publishing his faith or his quest, he remained firm in his belief that Hinduism is an essential

part of his Indianness. The statement could also comprehend his level of devotion for Durga Pooja, 'In October 1925, our national religious festival the Durga Pooja falling, due we applied to the Superintendent for permission and for funds to perform the ceremony. Since similar facilities were given to Christian prisoners in Indian prisons, the Superintendent gave us the necessary facilities, in anticipation of government sanction. The government, however, not only refrained from giving sanction but censured the superintendent, Major Findlay, for acting on his own responsibility. Thereupon we informed the government that they should reconsider their decision or we would be forced to go on hunger strike. The reply being in the negative, we commenced hunger strike.'[10] Therefore, it cannot be disputed that Subhash Bose's campaign included Hinduism as the distinctive political component.

Bose and the reclamations of Socialism

Most people believe Netaji Subhash Chandra Bose had a left-leaning political outlook and it is speciously accepted that Netaji was an atheist. Few left inclined Indian writers now consider it fashionable to represent Netaji Subhash Chandra Bose as the leader of the communist struggle in India. However, he states, 'in the current political phase of Indian society, leftism is anti-imperialism, genuine anti-imperialists support unmitigated independence as the political goal and constant national struggle as the means to achieve it. Leftism will come to signify socialism once a country gains its independence, and the challenge facing the populace at that point will be to rebuild society on a socialist foundation. Before achieving our political liberation, socialism or socialist reconstruction is entirely premature.'[11]One can clearly get the ideas about his leanings toward the socialist philosophy in the aforementioned remark, which has nothing to do with traditional communism.

Sumeru Roy Chaudhury has made an effort to portray him as the real communist fighter. To make his point stronger he quotes, 'In the year 1930, Subhash Chandra Bose composed a long, handwritten letter to the revolutionary leader Barindra Kumar Ghosh, a younger brother of Shri Aurobindo. In it, he set out his belief in class struggle: 'During all these years we have meant and explained by freedom, political freedom alone; but henceforth we have to declare that we do not want to liberate people merely from political bondage. We want to liberate them from all forms of bondage. The struggle for Independence

ISSN 2250-2769

has as its aim the removal of the triple bondage of political, economic and social oppression. When all shackles are removed, we can proceed to build a new society based on communism. This principal aim of our freedom struggle is to build a free and classless society.'[12]There is a strong possibility that the author, Sumeru Roy Chaudhary, used the wrong source while quoting this comment, as he failed to cite it properly. He continues by saying, 'These comments should not come as a surprise.' Most likely, the author wants to conflate socialism and communism. Bose continuously advocated socialism throughout the three decades of his political career, not the Gandhian or Fabian brand. However, many of his ideas still hold true today. He was worried that nation building after independence would be more difficult than getting rid of the British. 'The British Empire is in any case doomed,' he said, 'and the only question is as to what will happen to us when its final dissolution takes place.'Netaji did not support socialism in the Gandhian term but there were many different forms of socialism existed which were not necessarily associated with Marxism. In his youth, Swami Vivekananda's teachings on nationalism, social change, and service to others had an impact on and motivated Bose. Vivekananda had said; 'I am a socialist, not because it is a perfect system, but because I believe that half a loaf is better than no bread.'By any definition of Marxism that is available, Swami Vivekananda cannot be regarded as a Marxist. Most likely, the author wants to conflate socialism and communism. It is certain that Netaji used the phrase socialism several times, but he never issued a demand for communism. Netaji decided to confine his leftist affiliation to the anti-imperialist viewpoint. By analysing his words, we can see that he was extremely explicit about the formation of the socialist system following independence, but his socialism was far from the communist ideal. Even the leaders of the right wing were seen as leftist in his eyes. He also regarded Bal Gangadhar Tilak and Aurobindo Ghosh as Leftists, albeit neither of them was a communist.'[13]

The idea that Subhash Chandra Bose was a communist has been debunked. In truth, Bose had expressly distanced himself from communist thought on several occasions. He essentially considered himself 'a socialist, but that was a very different thing from being a communist.'[14] The main distinction between socialists and communists was their emphasis on internationalism over nationalism. In this regard, Netaji publicly mocked the notion of

internationalism, which is commonly linked with communism, and chastised communists for their harsh attack on the concept of nationality. In his own words, 'Before we can endeavour to reconstruct Indian society. We should first secure the right to shape our own destiny. When political freedom has been attained, it will then be time to consider seriously the problem of social and economic reconstruction. As far as I am aware, this is also the opinion of prominent communists in other lands. To introduce fresh cleavage within our ranks by talking openly of class war and working for it appears to me now to be a crime against nationalism.'[15]Further, on a letter to his elder brother from the Mandalay Jail, Bose had clearly expressed his rejection of Communism, dissociating himself from the said ideology. He had stated, rather succinctly, 'If I had the remotest intention of becoming a Bolshevik agent, I would have jumped at the first available boat to Europe. If I succeeded in recouping my health, I could then have joined the gay band who trot about from Paris to Leningrad talking of world revolution and emitting blood and thunder in their utterances. Nevertheless, I have no such ambition or desire.'[16] Additionally, while Netaji and other socialists valued national emancipation and unionisation, Indian Communists prioritised worker's radicalization and organisation. In reality, Subhash the visionary politician, saw quickly that Communism would never be embraced in India, owing to its condemnation of religious sensibilities, among other things. Bose anticipated that 'There are several reasons why Communism will not be adopted in India. To begin with, Communism today has no love with Nationalism in any form, and the Indian freedom movement is a Nationalist movement. Secondly, the Russia is currently on the defensive and has little interest in inciting a global revolution, despite the Communist International's best efforts. Thirdly, Communism in Russia has grown to be anti-religious and atheistic. In India, on the contrary, there is no feeling against religion as such. In India, a national awakening is in most cases heralded by a religious reformation and a cultural renaissance. Fourthly, the materialistic interpretation of history, which seems to be a Cardinal point in Communist theory will not find unqualified acceptance in India, even among those who would be disposed to accept the economic contents of Communism. Fifthly, while Communist theory has made certain remarkable contributions in the domain of economics for instance the idea of state planning, it is weak in other aspects. For instance, as far as the monetary problem is concerned, Communism has made no new

ISSN 2250-2769

contribution, but has merely followed traditional economics. Recent experiences, however, indicate that the monetary problem of the world is still far from being satisfactorily solved.'[17]Essentially, during Subhash Chandra Bose's time, the popular acceptance of Socialism as a noble economic philosophy was so prevalent that most of his political colleagues endorsed it. Indian youth adopted socialism as their guiding philosophy, and Jawaharlal Nehru and SubhashChandra Bose came to represent their aspirations as symbols of socialism. Mohandas Gandhi too, frequently found himself on the same page with Subhash on the subject of Socialism. In this regard, one of his article published in 'Harijan' on 14 April 1940 is instructive. Gandhi was seen in this essay approving the socialistic concepts further advocated by Jaiprakash Narayan. Gandhi writes 'Our ancestors who taught have handed down real socialism to us.All land belongs to Gopal, where then is the boundary line? Man is the maker of the line and he can therefore unmake it. Gopal literally means shepherd; it also means God. In modern language, it means the State, i.e., the people.'[18]Furthermore, in 1945-46, the eminent RSS leader BS Moonje was seen fashioning 'Hindu Socialism', in collaboration with Bhopatkar. They were jointly engaged in formulating a socialist agenda that avoided the evils of capitalism and secured the fruits of socialism. The Leader of the Hindu Mahasabha, Dr. Shyama Prasad Mukherjee, was desirous to form the Hindu Mahasabha as per the 'principles of Socialism' for the 1946 polls.'[19]Moreover, Former Prime Minister, Honourable Mr. Atal Bihari Vajpayee, had stated that 'For the Bharatiya Janata Party, Gandhian socialism is what we want to achieve and make society free of exploitation and full of opportunities. Therefore, we need to start this debate again.'[20] However, despite the overwhelming popularity of the ideology of Socialism, Netaji did not identify with the principles of Forward Bloc to be akin to that of Socialism. This is explicit in the goals he set for his party, when he proclaimed that the 'Forward Bloc will rally all progressive, radical and anti-imperialist elements in the Congress, whether they be Socialists or not. Through this consolidation, the people will equip themselves for the anti-imperialist struggle that will bring India her birth right of liberty.[21]

When Subhash became the All India Youth Congress President in 1928 introduced a fresh vigour and created a Left wing in the Congress Party to press the demand for more radical measures against the Government. Thus resulted in

ISSN 2250-2769

the call for 'Purna swaraj' at the Lahore annual session of Indian National Congress. Even Gandhi was not in favour of such tall demand. Although His goal was to attain not just political independence, but also social freedom. He was aware that merely achieving political independence would not solve the issues facing future generations, who also require a second wave of the liberation movement.

Denouncements

Hence, it may be summed up that to Netaji Subhash Chandra Bose, as long as the Leftism implied violent, uncompromising anti-imperialist sentiments and bound with the idea of nationalism, it was relevant. In the remaining areas, it was futile for Indian soil, which had deep-rooted and inseparable aspect of spiritualism prevailing among the masses. He knew that it would be very difficult to gain independence from the clutches of the imperial like British, so when the ideological tussle started between the choices of Imperialism and Fascism – he was very clear that the ideological confusion might weaken our national integrity, which urgently required international attention for its freedom in question. Regrettably, post-independence India was unable to provide such a hero with a place to call home. We failed to give a spot to the ideas and thoughts of Bose in post-independence Indian literature and extempore. Several legacies should be credited to our nation's deserving heroes, such as Netaji Subhash Chandra Bose, from the pre-independence era through the post-independence era.

Reference :

1. G.K. Mookerjee, Subhas Chandra Bose, Publications Division, New Delhi, 2010, pp. 21-22
2. M.M.Bipan Chandra, India's Struggle for Independence, London: Penguin UK, 2016.
3. L. A.Gordon, Brothers Against the Raj-Biography of Indian Nationalists, Sarat and Subhas Chandra Bose. Penguin Books India Limited. Gordon, New Delhi, 1990. p. 263
4. S.C.Bose, Indian Pilgrim-An Unfinished Autobiography and Collected Letters (1897-1921). Asia Publishing House, London 1965, pp. 50-51
5. S.C.Bose, Netaji Collected works-III, Netaji Research Bureau, Calcutta, 1981, p.170
6. Netaji Collected Works, Volume IV, Calcutta: Netaji Research Bureau, p.84

7. S.K.Bose, Subhas Chandra Bose India's Spokesman Abroad, Subhas Chandra Bose, Letters, Articles, Speeches and Statements 1933-1937 Netaji Collected Works- Volume VIII. New York, Oxford University Press, Delhi 1994, p. 2
8. L.A.Gordon, Brothers Against the Raj-Biography of Indian Nationalists, Sarat and Subhas Chandra Bose, Penguin Books India Limited, New Delhi, 1990, p. 502
9. S.C.Bose, The Indian Struggle, 1920–1942, Oxford University Press, Bombay, 1998, p. 4
10. S.C.Bose, Netaji Collected Works I-V (Vol. II). (1933, Edited) Netaji Research Bureau, Calcutta
11. S.C.Bose, The Indian Struggle, 1920-1942, Oxford University Press, Bombay, 1998, pp. 27-28
12. S.R.Chaudhury, (2021-1-23). https://thewire.in/history/subhas-chandra-bose-marxism. Retrieved on 21-11-2021, from https://thewire.in
13. S.C.Bose, The Indian Struggle, 1920-1942, Oxford University Press, Bombay, 1998, p. 15
14. L. A. Gordon, Brothers Against the Raj-Biography of Indian Nationalists, Sarat and Subhash Chandra Bose. New Delhi: Penguin Books India Limited, 1990, p.348
15. Ibid. p.166
16. Ibid. p. 146
17. S. C. Bose, The Indian Struggle, 1920-1942, Oxford University Press Bombay, 1998 pp. 352-353
18. Collected Works of Mahatma Gandhi, Gandhi speech at Faizpur, pp. 231-232
19. S. B. Bhattacharjee, Debunking the Popular Myths Concerning Netaji Subhas Chandra Bose. Forward webzine, 2021, pp. 34-36
20. Ibid, pp. 34-36
21. Ibid, pp. 34-36

[1]PhD Scholar,
Central university of Himachal Pradesh
Junior Research Fellow-UGC

[2]PhD Scholar,
Central University of Himachal Pradesh

ISSN 2250-2769

Netaji's contribution and views about India's Freedom

Dr. Hari Mohan Sharma[1]
Hari K. Sharma[2]

Abstract

Subhash Chandra Bose, popularly known as 'Netaji' was one of the most popular and influential leaders during India's freedom struggle. He was popular both inside and outside Congress circles and fondly remembered even now for his famous slogans slogans, 'tum mujhe khoon do, main tumhe aazadi dunga', 'Jai Hind', and 'Delhi Chalo'.During the freedom struggle multiple leaders have different visions for Independent India or the nature of state and political system in post- independence India. They have all fought in their own ways for India's freedom; but Netaji Subhas Chandra Bose's contribution and his efforts to liberate India militarily has a unique place in India's contemporary history. His courage, resolute commitment for India's freedom, leadership, firm determination and vision was unmatched to his contemporaries and probably that was the reason for his popularity among and masses and even among those with whom he had huge ideological differences. Netaji has lead a fierce military campaign against the Briitishers from East Asia and together with the formation of the Provisional Government of Azad Hind, the Indian National Army (INA), which was the military arm of the government give the British sleepless nights through the efficient conduct of their campaign. It has been argued that the Briitishers were actually forced by the mutiny in the Royal Indian Navy and tough military challenged posed by the I.N.A. It was unfortunate that his supreme sacrifices were not duly recognised by the India state in the post-independence period. The present study aimed to highlight the efforts and contribution of Netaji Subhash Chandra Bose in India's freedom movement.

Keywords: *Bose, Netaji, India, Freedom, INA, British, contribution*

Subhash Chandra Bose and India Freedom Struggle

India attained independence from the two centuries old foreign rule in 1947. From the first war of Indian independence in 1857, India remained in a continuous struggle mode against the British. Irrespective of the nature or method such as violent or non-violent, civil or military, open or covert or subversive, at the individual level or collectively, inside the country or outside India the objective of all these struggles was the same- throwing the British out

and attainment of India's freedom. Freedom fighters like Tilak declared Swaraj as our birth right and resolve to have it at any cost. As a youth Subhash Chandra Bose was highly influenced by Gandhiji and joined his Non- cooperation Movement in his initial years in India after coming back from England. Despite having huge differences in terms of the nature, means and direction of the freedom struggle with Gandhi, Bose had huge respect for him that was reflected both in his words and deeds during his lifetime. He acknowledged that 'the Mahatma will not play second fiddle to anyone. But his popularity and reputation does not depend on his political leadership, but largely on his character, unlike other political leaders.' Bose always referred to Gandhi as 'the Mahatma' and it was indeed he who first called Gandhi 'Bapu', Father of the Nation, in a radio address from Singapore in 1943.[1]

As a member of the Congress Party Bose served Congress to the best his capability till the time he could overlook his ideological differences. In 1921, on the day of Christmas Bose and Chittaranjan Das were arrested for successfully organizing a boycott against the Prince of Wales's visit to India, and consequently were sentenced to six months' imprisonment. After his release Bose remained busied himself with flood relief work, editorial services for the publication Forward in Calcutta and work for the Swaraj Party.[2] In 1938, he was elected as the President of the Congress party and initiated the National Planning Committee to lay the foundation of broad industrialization policy of India in future. His economic vision and planning differ from Gandhian economic principles. He was looking for some radical reforms, which took him closer to socialism. In 1939 he formed the Forward Bloc due to his prolonged differences with some of the topmost leader of Congress party. Bose's popularity can also be judged from the fact that Rabindra Nath Tagore had referred Bose as Deshnayak i.e. country's national hero, while Mahatma Gandhi called him as 'Patriot of patriots.'[3]

During the freedom struggle Bose and Nehru were the only two leaders who took an active interest in international relations. Towards the end of his address at the Haripura Congress Bose has touched upon the foreign policy interests of a subject nation and urged the Congress to take advantage of the favorable international situation. He argued that India's foreign policy should not 'be influenced by the internal politics of any country or the form of its state.' Refereeing to other countries he said that every country had men and women sympathetic to the cause of Indian freedom, and he wanted to mobilize their support systematically with the help of trusted representatives of the Congress in different countries and continents. He underlined the global significance of

ISSN 2250-2769

India's freedom: '*Ours is a struggle not only against British Imperialism but against world Imperialism as well, of which the former is the keystone. We are, therefore, fighting not for the cause of India alone but of humanity as well. India freed means humanity saved.*'[4]

Netaji Subhash Chandra Bose was a visionary leader with a realistic perspective. For him India's freedom was non-negotiable. He knew it well that the Second World War could be the most appropriate opportunity to liberate India with the help of axis powers. Netaji travelled to different countries and met leaders of different ideological hues; but above all his priority was always India's freedom and he was ready to take the help of all like-minded countries including Germany during the second course of Second World War. He was also quite sure that without a strong military campaign from outside oran internal armed revolt the British will not leave India. Only the enemies of British Empire could actually help India in its efforts for freedom. Much like Aurobindo, Bose had agreed to eschew violence as a strategic necessity, though not on grounds of political morality. For Bose, it was not a question of choice; but of necessity to resort to violent means as the opponent was mighty British Empire.

British Empire in India thrives primarily on two key pillars: the Indian Army and its flourishing economy. Exploitation of India's economy served it economic interests within and outside Britain and Indian army guards it political and strategic interest inside and outside India. Any strong blow to any one of the two could force them to withdraw from the Indian soil. Netaji preferred a revolt in British Indian armed forces from inside and military attack with the help of enemies of British Empire from outside.

Role of I.N.A. in India's Freedom

Bose arrived in Singapore on 2 July 1943 at the invitation of noted revolutionary and veteran nationalist exiled in Japan Rash Bihari Bose.[5] Two days later, he assumed leadership of the Indian Independence League (IIL) and Indian National Army (INA). He took over from Rash Bihari Bose as leader of the Indian Independence League in East Asia. With his electrifying speeches, leadership and Charismatic personality Bose quickly revived the demoralised IIL and INA. The popularity and consequently the strength of INA grew doubled and many Indians from diverse professional and occupational background have joined INA with no military experience. Addressing soldiers of the Indian National Army (INA) on July 5, 1943, Bose said: *'Comrades! You have voluntarily accepted a mission that is the noblest that the human mind can conceive of. For the fulfilment of such a mission, no sacrifice is too great—not evens the sacrifice of one's life. You are today the custodians of India's national*

honour and the embodiment of India's hopes and aspirations. So conduct yourselves that your countrymen may bless you and posterity may be proud of you.'[6]

'*On 21 October 1943, Bose announced the formation of the Provisional Government of Azad Hind (Free India), with himself as the Head of State, Prime Minister and Minister of War.*'[7] The provincial government enabled Bose to bargain hard in the negotiation process with the Japanese authorities and also facilitated the mobilization in East Asia, encourage them to join and support the INA. The provincial government soon got recognition from various countries that have enhanced its credibility and legitimacy.

In a very short span of time Netaji won the trust of Japanese and started playing a crucial role between Japan and other occupied countries of East Asia. He convinced Indians to utilize this golden opportunity with his well-articulated arguments and honesty of purpose. The words 'Netaji will not sell our country to the Japanese' resonated in everybody's ears. Netaji's popularity was not restricted to Indians only and soon he emerged as the most popular figure among different nations of East Asia. His dynamic personality and fearless conduct was appreciated across countries and his simplicity and honesty win hearts of people.[8]

Relationship of INA to the Indian army

Noted scholar Stephen P. Cohen argued that one of the less explored aspect of I.N.A. relates to its relationship with both the British and Indian soldiers of the Indian Army. He said that, '*The attitude of most nationalist Indians was relatively sympathetic toward the I.N.A. and Bose, whereas that of most British Indian officials was resolutely hostile (especially those in the Indian Army officer corps), but in between were a group of men who were committed in varying degrees to both the nationalist movement and the British-led Indian Army- the Indian officers. The I.N.A. was organized and led by men in the latter group who had been in the Indian Army'*. Cohen further argued that '*The British, both in England and in India, were understandably hostile to the I.N.A. as a movement and to its members, particularly its officer corps. Their antipathy toward the I.N.A. ranged from tolerance born out of necessity to bitterness derived from hostility.*'[9]

Among others, one of the key reasons for Indian soldiers to join I.N.A. was to act in the interest in India or least to attempt to protect those interests. Many Indian officers were inspired by the national movement and the sacrifices of the common people and they have taken it as an opportunity to serve their motherland. Colonel P. K. Sahgal in his autobiography has stated: '*My father*

ISSN 2250-2769

had taken an active part in the I920-21 non-co-operation movement and from him I inherited an intense dislike for the alien rule. Added to this my own study of History and Political Science taught me that complete freedom was the birth right of every human being and it was the sacred duty of every India to fight for the liberation of the motherland.'[10]

The trust, credibility and leadership of Netaji Subhash Chandra Bose were the major attraction for the soldiers and their will to readily sacrifice their lives in the service to nation. According the propaganda Minister of I.N.A., S. A. Ayer Bose's 'magnetic personality' and his 'hypnosis' had an instantaneous and electric effect on both the officers and soldiers.[11]

The British authorities were particularly very concerned about his popularity and potential to destabilize British Imperial rule in India. '*The British rulers acknowledged, with serious concern, Netaji as the most dynamic and influential political leader in all sections and religious groups of the country. They saw how Netaji's ideas always inspired young idealists to fight more strongly for freedom and saw in this firebrand charismatic leader a fearsome adversary*.'[12]

Who got India Freedom?

Contrary to what has been taught and believed it the impact of Subhash Chandra Bose's Indian National Army that made the British panic and leave India. Based on the declassification of Netaji files one of the recent books titled 'Bose: An Indian Samurai' by Indian military historian General G.D. Bakshi has referred quotes from a conversation between former British Prime Minister Clement Attlee and the then Governor of West Bengal Justice PB Chakraborthy. He argued that in 1956 Clement Attlee had come to India and stayed in Kolkata as a guest of the then governor. It pertinent to note here that Clement Richard Attlee was the man, who as leader of the Labour Party and British Prime Minister between 1945 and 1951, signed off on the decision to grant Independence to India. While PB Chakraborthy was the Chief Justice of the Calcutta High Court at that time and was also serving as the acting Governor of West Bengal. Chakraborthy wrote a letter to the publisher of RC Majumdar's book, A History of Bengal. In this letter, the Chief Justice wrote, '*When I was acting Governor, Lord Attlee, who had given us independence by withdrawing British rule from India, spent two days in the Governor's palace at Calcutta during his tour of India. At that time I had a prolonged discussion with him regarding the real factors that had led the British to quit India*.'[13]

In that letter Chakraborty claimed that he asked some direct questions to Attlee like, "was that since Gandhi's Quit India movement had tapered off quite

some time ago and in 1947 no such new compelling situation had arisen that would necessitate a hasty British departure, why did they had to leave?' He adds that '*In his reply Attlee cited several reasons, the principal among them being the erosion of loyalty to the British crown among the Indian army and Navy personnel as a result of the military activities of Netaji*.'[14]

Chakraborthy further wrote that '*Toward the end of our discussion I asked Attlee what was the extent of Gandhi's influence upon the British decision to quit India. Hearing this question, Attlee's lips became twisted in a sarcastic smile as he slowly chewed out the word, m-i-n-i-m-a*-l!'[15] This startling conversation was first published by the Institute of Historical Review by author Ranjan Borra in 1982, in his piece on Subhas Chandra Bose, the Indian National Army and the war of India's liberation.

His Vision for Independent India

Netaji Subhash Chandra Bose was not merely aiming at freedom; he wanted a united free India. Both Subhas Chandra Bose and Sarat Chandra Bose were vehemently opposed the partition of the country and believed that India had to fight for freedom and freedom could not be achieved by negotiation. Probably that was the reason Netaji chose the path of armed struggle against the mighty British Empire. Netaji had said that '*In order to inspire our countrymen with fresh vigour, we have to place before them the new and integral image of freedom.*'[16] Like a true visionary leader Netaji looked beyond independence and freedom and want to liberate people not only from political bondage; but from all forms of bondage. Netaji kept before himself the goal of the removal of the triple bondage- political, economic and social oppression. He said that the principal aim of our freedom struggle is to build a free and classless society. Netaji also aspires to build a modern nation on the basis of India's old culture and civilization. It exhibits his deep love for Indian ethos, values and culture. Contrary to Gandhiji's economic and political views Netaji fervently supports modern industries, modern armed forces and everything that would be necessary to preserve India's existence as a civilization and its freedom under global conditions.

Bose was a truly remarkable leader whose vision for modern India seems to be getting realized under broader goal of India's current political leadership. The goal of 'Ek Bharat, Shreshtha Bharat' is nothing but the realization of the dreams of our freedom fighters, a tribute to their sacrifices and a key milestone of India's path to glory.

References

1. K.Radhakrishna, 'Bose, 'Prince Among the Patriots'.' Deccan Herald, 22 Jan. 2022, www.deccanherald.com/opinion/in-perspective/bose-prince-among-the-patriots-1073329.html.

2. Heng And Ong Wong, Subhas Chandra Bose | Infopedia. 22 Jan. 2005, eresources.nlb.gov.sg/infopedia/articles/SIP_745_2005-01-22.html.
3. Chandrachur Ghose, “Past Forward: Tagore Called Subhas Bose 'Deshnayak' but Both Frequently Argued Over Nationalism.” News18, 29 May 2022, www.news18.com/news/opinion/past-forward-tagore-called-subhas-bose-deshnayak-but-both-frequently-argued-over-nationalism-5177377.html.
4. “Path to Greatness.” Netajisubhasbose, www.netajisubhasbose.org/ups-and-downs. Accessed 26 Oct. 2022.
5. Raghvendra Singh, . “Netaji at India Gate: The Revolutionary's Due.” The Indian Express, 8 Sept. 2022, indianexpress.com/article/opinion/columns/netaji-at-india-gate-how-the-indian-national-army-nearly-triumphed-8137490.
6. Vikhar Ahmed Sayeed, ‘Bose in Singapore.’ Frontline, 8 Dec. 2017. https://frontline.thehindu.com/the-nation/bose-in-singapore/article23596329.ece
7. {Indian National Army? : Revival} www.nas.gov.sg/archivesonline/online_exhibit/indian_national_army/revival.htm. Accessed 26 Oct. 2022.
8. The Hindu. “Netaji Bose and the Indian National Army: Freedom Movement in East Asia.” The Hindu, 29 Mar. 2016, www.thehindu.com/news/national/tribute-to-netaji-bose-in-the-1947-independence-day-of-the-hindu/article7540562.ece.
9. Stephen P. Cohen, “Subhas Chandra Bose and the Indian National Army.” Pacific Affairs, vol. 36, no. 4, JSTOR, 1963, p. 411. https://doi.org/10.2307/2754686.
10. Ibid.
11. Ibid.
12. Colonel S. K.Bose, “Impact of INA on India's Struggle for Independence.” Journal of the United Service Institution of India, vol. Vol. CXLI, no. No. 585, July-September 2011, usiofindia.org/publication/usi-journal/impact-of-ina-on-indias-struggle-for-independence.
13. Rahul Kanwal, “EXCLUSIVE: Attlee Told Bengal Governor, Netaji, Not Gandhi, Got India Freedom, Claims Book.” India Today, 28 Jan. 2016, www.indiatoday.in/india/story/exclusive-attlee-told-bengal-governor-netaji-not-gandhi-got-india-freedom-claims-book-305512-2016-01-25.
14. Ibid.
15. Ibid.
16. Chandra Kumar Bose, ‘Patriot of Patriots: Subhas Chandra Bose.’ The Pioneer, 23 Jan. 2018, www.dailypioneer.com/2018/columnists/patriot-of-patriots-subhas-chandra-bose.html

[1]Associate Professor in Political Science
Satyawati College (Evening),
University of Delhi

[2]Assistant Professor in Political Science
Lady Shri Ram College for Women,
University of Delhi

ISSN 2250-2769

The Crusader of Indian Freedom - Netaji Subhash Chandra Bose

Dr. Sumer Khajuria

Abstract

The concept of famous shouts 'Jai Hind' 'Bharat Mata Ki Jai' 'VandeMataram' as is still alive in blood of every patriotic Indian, the origin of which goes behind the crusader of Indian Freedom, Netaji Subhas Chandra Bose for his famous attractive call expressing 'Chalo dilli' or 'Tum Mujhe Khoon Do Main Tum he Azadi Dunga'. To understand the true concept behind, one has to travel back to 1857 to understand how this our holy motherland Bharat faced lakhs of wounds in sacrificing her patriotic sons having selflessly come in place with sole mission of independence of our revered motherland Bharat. Indians serving in the British Armed Forces were inflamed by the Red Fort trials. In February 1946, about 20,000 Sailors of Royal Indian Navy serving on 78 ships mutinied against the British Empire. They went around Mumbai with Patriots of Netaji Subhash Chandra Bose and forced British to shout Jai Hind and other Indian National Army slogans. The rebels even brought down the Union Jack flags on their ships and refused to obey the orders of their British masters. Military intelligence reports in 1946 indicated that the Indian soldiers were inflamed and could not be relied upon to obey their British officers.

Keywords : *Bharat Mata, Chalo Dilli, Indain National Army, Jai Hind, Vande Mataram*

Introduction

Netaji Subhas Chandra Bose, a towering personality whose patriotism for motherland Bharat, has left an indelible mark on the hearts of every son of this soil. The founder of the organizations like Azad Hind Fauz, All India Forward Bloc, Indian Legion, Azad Hind Radio, Free India Center, and Azad Hind Bank, Bose was born on January 23, 1897 in Cuttack, Orissa to Smt. Prabhavati Bose and a famous Lawyer Jankinath Bose, who was the Government Pleader at the time[1, 2].Netaji, as a fervent nationalist with a defiant patriotic conviction regarded as one of the greatest freedom fighters in Indian history. He is credited with distinguishing the Indian National Army from the British Indian Army, the vital organ responsible for propelling the freedom

struggle.[3] Although Netaji born in a well privileged and wealthy family of the time but in contrary to the British Privileges in wait for him, opted the path of a true son of the soil i.e. freedom of India, despite qualifying the British Civil Services Examination in England in 1920.[4] Netaji regarded as one of India's greatest freedom fighters because he was a fervent nationalist with a defiant patriotic conviction. He is credited with distinguishing the Indian National Army from the British Indian Army, which was instrumental in propelling the freedom struggle.[5] Which forced the British Government to leave India with lock stock and barrel on the 15th day of August 1947.[6] Earlier also an attempt to form a Government of free India in exile was made by Raja MahendraPratapas the President and MoulviBarkatUllah as Prime Minister at Kabul on 1st December 1915 but such an attempt though left footprints for future reference could not last long.[7] With the sole mission of becoming free from slavery and achieving independence for our revered motherland Bharat, once the leader of the universe in all accounts and fields.[8] A shocking notion contained in a song composition '*Mil Gayi Hame Azadi Bena Khadag Bina Dhal… Sabarmati Ke Sant Tune Kar Diya Kamal'* pricks the souls of our lakhs of martyrs who went to the gallows with a smile. Being highly influenced by Vivekananda's teachings[9] and considering him his spiritual Guru and political mentor Shri Chittaranjan Das,[10] Netaji Subhas Chandra Bose stood for unqualified PurnSwaraj (complete independence)by opposing Motilal Nehru's report restricting the status of dominion India.He also actively participated in salt satyagrah of 1930 and vehemently opposed the suspension of Civil Disobedience Movement and signing of the Gandhi-Irwin Pact in 1931. Although he was closely associated with left politics within Congress along with Jawahar Lal Nehru and M.N. Roy. He became Congress President in 1938 in presidential elections held at Haripura and again in 1939 at Tripuri against the wishes of Gandhiji. Due to ideological differences in Congress, he resigned and left the Congress Party. Dr. Rajendra Prasad was appointed at his place as Congress President. Netaji Bose founded a new party, the Forward Bloc with the objective to consolidate the political left and major support base in his home state Bengal.[11] Bose believed that the Bhagavad Gita was a great source of inspiration for the struggle against the British.[12] Swami Vivekananda's teachings on universalism, his nationalist thoughts and his emphasis on social service and reform had all inspired Netaji from the days of his very young age. The fresh interpretation of the India's ancient scriptures had appealed immensely to him. Some Scholars are of the view that Hindu spirituality formed an essential part of Netaji's political

ISSN 2250-2769

and social thought. As historian, Leonard Gordon explains 'inner religious explorations continued to be part of his adult life.'[13] In 1928 Netaji organized a volunteer corps in uniform, its officers were even provided with steel-cut epaulette, his uniform being General Officer commanding, Congress volunteer corps was made by a firm of The British tailors in Calcutta, Harman's. In 1930, he rose to the position of Mayor of Calcutta.[14] In the mid of1930s Bose traveled for Europe, visited Indian students and European politicians including Benito Mussolini. In this period he also researched the first part of his book 'The Indian Struggle' which covered the country's independence movement between the years 1920-1934, though it was published in London in 1935. The British Government banned the book in the colony out of fear that it would encourage unrest. However, the Indian central European Society organized by Otto Faltis from Vienna supported Bose in Europe. On the outbreak of World War Second, Bose advocated a campaign of mass civil disobedience to protest against Viceroy Lord Linlithgow's decision to declare a war on India's behalf without consulting the Congress leadership. Having failed to persuade Gandhi, of the necessity for this Bose organized mass protests in Calcutta calling for the removal of the 'Holwell Monument' which then stood at the corner of the Dalhousie Square in memoriam of those who died in the Black Hole of Calcutta. He was thrown in jail but released following seven days' hunger strike and his house at Calcuttawas kept under surveillance.

Escape to Nazi Germany

16th January 1941, the night of his escape, Netaji Subhas Chandra Bose dressed as a Pathan while wearing brown long coat, a black fez type corset and broad payjama to avoid being identified. He escaped being under British surveillance from his Elgin Road Housein Calcutta on the night of 16-17th January 1941 accompanied by his nephew Sisir Kumar Bose later reaching Gomoh railway station now called Netaji Subhas Chandra Bose Railway Station then in Bihar (now in Jharkhand) India.[15] As advised by Ras Bihari Bose, leader in exile at Japan, Subhas Chandra Bose met Veer Savarkar also who advised Bose to get the Prisoners of War in Germany and Japan recruited in the force for igniting freedom movement besides the detailed strategy was secretly discussed and planned in Mumbai. He thereafter calling on Vir Savarkarat Mumbai undertook journey for Peshawar, where he met Akber Shah, Mohammed shah, and Bhagat Ram Talwar. Bose was taken to the house of Abad Khan, a trusted friend of Akbar Shah. On 26 January 1941, Bose began his journey to reach Russia through British India's North-West Frontier with Afghanistan. For this

reason, he enlisted the help of Mian Akbar Shah, then a Frontier Bloc Leader in the North-West Frontier Province. Shah had been out of India en-route for Soviet Union and suggested a novel disguise for Bose to assume, that is to pose deaf and dumb and let his beard grow to mimic those of tribesmen. Bose's guide Bhagat Ram Talwar, unknown to him, was a Soviet agent. Supporters of Agha Khan helped Netaji to cross the border into Afghanistan and by an Abwehr unit who helped his passage across Afghanistan via Kabul to the border of Soviet Union. Bose then changed his guise and travelled Moscow on the Italian passport of an Italian noble man 'Count Orlando Mazzotta'. From Moscow, he reached Rome and from there he traveled to Nazi Germany.[16] In Germany, he was attached to the Special Bureau (Tutelage) for India under Adam Von Trottzusolz (tutelage)which was responsible for broadcasting on the German sponsored Azad Hind Radio.[17] Bose founded the 'Free India center' in Berlin and created the Indian Legion(consisting of 4500 soldiers) out of Indian Prisoners of war who had previously fought for the Britain in North Africa prior to their capture by Axis forces. Beginning in January 1942, Bose and other Indians who had gathered in Berlin sponsored Azad Hind Radio while speaking in English, Hindi, Bengali, Tamil, Telugu, Gujarati, and Pashtu.[18] Little more than a year after Japanese invasion in South east Asia, Bose left Germany traveling by submarine UI 80 around the 'cape of good hope' to the South east of Madagascar, where he was transferred to the I-29 for the rest of the journey to Imperial Japan. This was the only civil transfer between two submarines of two different navies in World War II. Indian National Army (INA) a brainchild of Japanese Major (post war Lieutenant General) Lwaichi Fujiwara,head of Japanese intelligence. Fujiwara, whose mission was to raise an army, which would fight alongside the Japanese army. He first met Pritam Singh Dhillon;the President of the Bangkok chapter of the 'Indian Independence League' and through his network recruited a captured British Indian army Captain Mohan Singh on the western Malayan Peninsula in December 1941. The First Indian National Army was formed because of discussions between Fujiwara and Mohan Singh in the second half of December 1941 and both Fujiwara and Mohan Singh chose its name in the first week of January 1942. However, the said First Indian National Army was disbanded in December 1942 after disagreement between Mohan Singh and Hikari Kikan and Mohan Singh who came to believe that Japanese High Command was using the Indian National Army as merely a pawn and propaganda tool. Mohan Singh was taken into custody and the troops taken back to prisoners of war camp. However, the idea of an independence army was revived with the arrival of Bose in the East

ISSN 2250-2769

in 1943. On July 4, 1943 in a meeting in Singapore, Ras Bihari Bose handed over the control of the organization to Netaji. Bose was able to recognize the fledgling Army and garner massive support among the expatriate Indian population in South-East Asia. Their support was both by enlisting in the Indian National Army as well as financially in response to Bose's call. The Indian National Army had a separate women unit called the Rani Jhansi Regiment named after Rani Lakshmi Bai, and was headed by Captain Lakshmi Swaminathan, which was seen first of its kind in Asia.[19] Even when faced with military reverses, Bose was able to maintain support of the Azad Hind Movement. Spoken as a part of a motivational speech for the Indian National Army at a rally of Indians in Burma on 4 July1944 Bose's famous quote was 'Give me blood, and I shall give you freedom'.[20]

It was on 21 October 1943, at the Cathay Theater at Singapore, Netaji did proclaim the establishment of the Arzi Ha kumat-e-Azad Hind (The Provisional Government of Free India). In his speech, he said 'India's Army of Liberation was drawn up in military formations on the battle field of Singapore which was once the bulwark of the British Empire. He envisioned the Army of liberation as the future National Army of free India and exhorted the people with battle cry be ‘ChaloDilli.' How many of us will individually survive this war of freedom, I do not know. However, I do know that we shall ultimately win and our task will not end until our surviving heroes held the victory parade on the graveyard of British Empire - The Lal Qila or Red Fort of Delhi. He further said 'As soldiers you have to cherish and live up to the three ideas of faithfulness, duty and sacrifice. Soldiers always remain faithful to the nation, who perform their duty under all circumstances and who are always prepared to sacrifice their lives are invincible. The mission of independence for India was noblest, the human could conceive. I assure you that I shall be with you in darkness and sunshine, in sorrow and in joy, in sufferings and victory. For the present, I can offer you nothing except hunger, thirst, forced marches and death. However, if you follow mein life and in death- as I am confident, you will- I shall lead you to victory and freedom.' Under the Provisional Government Netaji was the head of the State, the Prime Minister and Minister of war and Foreign Affairs. Captain Lakshmi Sehgal headed the publicity and propaganda wing. Revolutionary Wing leader Ras Bihari Bose was designated as the Supreme Advisor. The Provisional Government was also formed in the Japanese occupied Andaman and Nicobar Islands. This Government led by Netaji was supported by the Axis powers of Imperial Japan, Nazi Germany, the Italian Republic and other allies and

ISSN 2250-2769

recognized by more than nine countries namely Japan, Germany, Italy, Singapore, Malaya, Manchuria, Mongolia, Russia, Independent State of Croatia and Wang Jingwai Government, Thailand, the State of Burma, Manchukuo and second Philippines Republic[22]. Soon after the formation of the Government, the Azad Hind proclaimed authority over Indian civilians and Military personnel in South-East Asian British colonial territory and prospective authority over Indian Territory to fall to Japanese forces and Indian National Army during the Second World War. This Azad Hind Government under Bose had in fact its own currency, civil code and Stamps. After declaration of the formation of the Provisional Government of Azad Hind and declaration of names of the Cabinet Ministers who signed the said proclamation provided fillip to the freedom struggle and claimed allegiance of every Indian irrespective of castes or creeds and all were to be treated equals with their equal rights in all respects. Netaji ended with the same with a stirring appeal;

' In the name of God, in the name of bygone generations, who have welded the Indian people in to one nation, and in the name of the dead heroes who have bequeathed to us a tradition of heroism and self –sacrifice. We all upon the Indian people to rally round our banner and strike for India's freedom. We call upon them to launch the final struggle against the British and their allies in India and to prosecute that struggle with valor in Final victory- until the enemy is expelled from Indian soil and the Indians are once again a Free Nation.' Then the ceremony of taking the oath of allegiance took place in an emotionally charged atmosphere. Amidst cheers, Netaji read out the oath;

'I, in the name of God, I take this sacred oath that to Liberate India and 38 crores of my fellow citizens, I, Subhas Chandra Bose, will continue the sacred war of freedom until last breath of my life….' His voice failed and he wiped his eyes with his handkerchief. He tried to overcome his emotions and with great difficulty resumed in a steady voice, 'I shall always remain servant of India and look after the welfare of 38 crores of Indian brothers and sisters. This shall be for me my higher duty. Even after winning freedom I shall always be prepared to shed the last drop of my blood for the preservation of India's freedom'. Then other members of the Provisional Government took oath to liberate India and to remain faithful to their leader Netaji. Actually, these martyrs remained committed to this oath until end of their life and their immortal life will always remain an eternal source of inspiration and enlightenment to all.

The enrolled soldiers also took oath as contained in a certificate confirming pledge in the identity card been issued by the Azad Hind Fauz, the

ISSN 2250-2769

contents of such pledge of the soldiers is read as;

1. I pledge allegiance to the flag of the Union of India and to the Republic for which it stands, one nation indivisible with Justice, Liberty, Equality and Fraternity for all.
2. I shall always faithfully serve Indians and will guard the boundary and territory to the best of my ability, persevere, protect and defend the constitution of the Republic of India.
3. India is my country, all Indians are my brothers and sisters. All persons are equally entitled to freedom of conscience and right to profess, practice and propagate religion freely. I shall work for the cause of glory of India.
4. Whenever my country proclaim a state of emergency, I shall voluntarily come forward to enroll myself as sacred duty to sacrifice my life either in Army or in any other capacity .
5. I do solemnly declare that I shall honor and practice spirituality the golden principles told us by our beloved Netaji, Subhash Chandra Bose.
6. Unity, faith, sacrifice and keep flag of independence flying forever' Jai Hind.

After the formation of Indian National Army, the British had adjudged that further troop may deflect in consequence of which a ban was imposed and propaganda campaign called 'Jiffs' took start, in order to preserve British loyalty of the sepoy. Azad Hind declared war against Britain and the United States on 23 October 1943 and as its formal commitment came with the opening of Japanese offensive towards Manipur, code named U-Go, in the initial plans for invasion of India. The advanced headquarters of Azad Hind was moved to Rangoon in anticipation of success. Initially, it sought to obtain arms and increase its ranks by inducing British-Indian soldiers to defect, which were expected to defect in large numbers. Col. Prem Sehgal, a former Military Secretary to Netaji Subhas Chandra Bose who was tried in the First Red Fort Trials, explained the INA strategy to Peter Fay; 'Although the war was hung in the balance and no one knew if the Japanese would win, launching a popular revolution with broad support within India would ensure that even if Japan eventually lost the war, Britain would be unable to reassert its colonial authority. It was planned that once Japanese forces had broken through British in Imphal, the INA would cross the hills of North- East India into the Gangetic plains, where it would work as a guerrilla army. This army was expected to live off the land with captured British supplies, support and personnel from local population. In April1945, the

ISSN 2250-2769

Combined Services Directorate of Investigation Corps interrogated a total number of 16000 out of the INA's 43000 army men. The number of prisoners necessitated this selective policy, which anticipated trials of those with strongest commitments to Bose's ideologies. By July 1945, a large number had shipped back to India. At the time of fall of Japan, the remaining captured troops were transported to India via Rangoon. A large number of local Malayan and Burmese volunteers, including Rani Jhansi Regiment recruits, were unidentified and returned to civilian life. Lord Mountbatten, a colonial administrator and related of British Royal family, i.e. born in the prominent 'Battenberg family' of England and was uncle of Prince Philip, Duke of Edinburgh and second cousin of King George VI. He was appointed Supreme Allied Commander in South-East Asia Command in Second World War, headquartered at Singapore and known as 'Master of Disasters'. It was his proposal to launch an ambitious assault near Rangoon, being Supreme Allied Commander of South East Allied Asia Theater. While overseeing the recapture of Burma from Japanese by General Sir William slim. A personal high point was the receipt of the Japanese forces in the region led by General Itagaki Seishiro on 12 September 1945.South East Asia Command was disbanded and Mountbatten returned home with a substantive rank of real admirals. Cunningly, Mountbatten covertly garnered the support of Pandit Nehru and others already in sour relations with Netaji Subhas Chandra Bose since 21 October 1943, by formation of Arzi Hakumat- e- Azad Hind and his declarations as Prime Minister of India.

To exactly quote Chandra Prakash Bose '...it was the Indian National Army and the subsequent INA trials which were held at the Red Fort in 1946, completely destroyed the loyalty and allegiance of the British forces to the British High Command. This is all known but to reiterate what General Auchinleck wrote to the viceroy, what Clement Attlee who signed “The Transfer of Power” documents as the British Prime Minister in 1947, there is another story that is not yet told'. He writes my father Amiya Nath Bose had the opportunity to meet the last Viceroy of India Lord Mountbatten in 1976. Firstly, the secretariat told my father that Lord Mountbatten is not too well. He is also hard of hearing. So kindly ask not more than two questions to Mountbatten. My father said, 'I will ask just one question' so they agreed.

Lord Mountbatten spoke very softly, the reply was very clear, and specific 'He said off course Indian National Army and the INA trials which was the main reason why we had to relinquish India'.According to Justice PB Chakraborty the then Chief Justice of Calcutta High Court and the Governor of

the state of West Bengal, when he made a direct question to Clement Attlee the then Prime Minister of England in 1947, while being on visit to India (Kolkata) after independence in 1956, as to why they left India in haste? In reply, Attlee cited several reasons, the principal among them being erosion of loyalty to the British Crown among the Indian Army and Navy personnel because of Netaji's attempts. Chakraborty added 'Towards the end of the discussion, I asked Attlee what was the extent of Gandhi's influence upon the British decision to Quit India? Hearing this question, Attlee's lips became twisted in a sarcastic smile as he slowly chewed out word 'm-n-i-m-u-m'. The Institutions of Historical Review by author Ranjan Bora first published this startling conversation between Justice PB Chakraborty and Mr. Attlee in 1982 in his piece on Subhash Chandra Bose, the Indian National Army and War of Indian Liberation. Another book on Netaji by Dr Kalyan De published by Garuda Prakashan is based on authentic documents from the British Archives, declassified in 1971. 'These documents are in the form of carefully selected letters, reports, and minutes exchanged between the main protagonist of the British Raj in India- the Viceroy Field Marshal Vicount Wavell, the Commander-in- Chief of the British Indian Army General Sir Claude Auchinleck, and other functionaries, such as the Governors of various states and the intelligence Department on the one hand and the Secretary of State on the other' writes Brg. R S Chikara in the Foreword to the Book. In all 60,000 strength of the Indian National Army 20,000 lost their life in the battle. During the trial mutiny had broken out in the Royal Indian Navy, of about 20,000 soldiers in 78 ships, followed by Royal Air Force and British Indian Army as well. They all forced the British to abandon the trial of the said INA soldiers by cashiering and forfeiture of their pay and allowances.

References :

1. Hayes Romaim, Subhas Chandra Bose in Nazi Germany: Politics Intelligence and Propaganda 1941- 1943, Oxford University Press, 2011, page 1
2. L A, Gordon, Brothers Against Raj : A biography of Indian nationalists Sarat and Subhas Chandra Bose, New York, Columbia University Press, 1990 page 539- 542
3. Sisir Bose, Sugata Bose, Subhas Chandra Bose : Azad Hind writings and speeches, articles and letters. 1941- 1943. Netaji Research Bureau (2002)
4. L A, Gordon, Brothers against Raj, a biography of Indian nationalists Sarat and Subhas Chandra Bose, New York and Oxford Columbia University Press, 1990, page 56
5. Bose Sisir, Bose Sugata, Subhas Chandra Bose : Azad Hind Writings and speeches'. Articles and Letters 1941-1943, Netaji Research Bureau, 2002
6. Indian Independence Act 1947

7. K H, Ansari *Pan Islam and making of Early Indian Muslim Socialist Modern Asian Studies*, Cambridge University Press Vol.20 No 3,1986, page 509- 507,51
8. Nasta Susheila, India in Britain: South Asian Networks and connections (1858-1950), New York Palgrave Macmillan, 2013
9. Vedanta Kesari, January 2017 (Complete Works of Swami Vivekananda 5.15)
10. Times of India dated January 24,2022
11. CR, Mishra Forward Bloc. In Islam, Sirajul, Jamal,Ahmed A(ed) Banglapedia National Encyclopedia of Bangladesh (2nd Edn) Asiatic Society of Bangladesh, 2012
12. R. B. Cribb and Narangoa Imperial Japan and National Identities in Asia (1895 - 1945, Routledge, 2003
13. Chaudhuri Nirad, Thy and Great Anarch: India 1921- 1952 Chatto and Windus, 1987
14. Vipul Singh, Longman History and Civics Lose 10, Pearson Education India, 2009, page 116
15. Manogya, Loiwal (19 January 2017) Netaji Subhas Chandra Bose"s favorite car restored; Unveiled in Kolkata, India Today and on 18th January 2017, the President Pranab Mukherjee unveils Netaji's 1937 wanderer in Kolkata.
16. Subodh Markandeya, Subhash Chandra Bose, Netaji's passage to immortality, Arnold Publishers, 1990
17. Encyclopedia Britannica 2016
18. Thomson, Mike (28 September 2004) Hitler's secret Indian Army.
19. Subhash Bose , Azad Hind writings and speeches, 2002, 1941- 1943
20. H P, kratoska and Goto Tensions of Empire, National University of Singapore press, 2003, page 57- 58
21. Ibid.
22. Fay, Peter w (1993) Forgotten Army, India's Armed Struggle for independence (1942- 1945) University of Michigan Press page 436.

Advocate
Ward No 2,Indira Nagar
Udhampur 182101
Jammu and Kashmir

ISSN 2250-2769

A Study of the role played by Netaji Subhash Chandra Bose in Azad Hind Fauj.

Dr. Ankush Bhardwaj[1]
Shivam Sharma[2]

Abstract

This paper attempts to explore the role played by Netaji Subhash Chandra Bose to free India from British rule by forming the Indian National Army. The paper briefly covers his initial years, which shaped his outlook towards his life and then covers his association with Congress and subsequently his deterioration of relations with Mahatma Gandhi. An exhaustive study has then been done in relation to Indian National Army, with its formative stage under the leadership of Rash Bihari Bose and then Captain Mohan Singh. It goes without saying that Indian National Army achieved its relevance and a sense of equality with the imperial Japanese Army only with the coming of Subhash Chandra Bose.

Keywords : *World War II, Subhas Chandra Bose, Nationalism, Indian National Army.*

Great personalities are often the products of their own times. Political, Social, Economic and Cultural environment mould them and they, in turn, remould it. It is also said that some make history and some are made by history. 'The role which a man plays,' wrote Subhas Chandra Bose, while writing on the role of Mahatma Gandhi in Bharatiya History, 'in history depends partly on his physical and mental equipment, and partly on his environment and the needs of times in which he is born.'[1]

Subhash Chandra Bose was the one radical whose contributions stands out among all other politicians for his clarity of though, strong will and realistic perceptions towards international events. His mind was deeply influenced by Swami Vivekananda and Aurobindo Ghosh during his formative years.[2] He was schooled in a Protestant European school and later in the Ravenshaw Collegiate School at Cuttack till 1913.[3] He was then enrolled in the Presidency College at Calcutta with Honours in Philosophy,[4] until the 'oaten incident' happened in the college.[5] The 'Oaten incident' pertains to Mr E.F.Oaten, who served as professor of History in the Presidency College. The said Professor was involved in two unsavory incidents, in which, he had made disparaging remarks against the

ISSN 2250-2769

Bharatiya, in consequence of which, he was beaten up by the students. Subhash Bose was the leader of the students who had beaten up Mr Oaten, and consequently he was expelled from the college.[6] This event had a far reaching consequence on the young Bose at that time, for it inculcated in him a feeling of rising against the wrong He was expelled from the college and later he wrote in his autobiography:' Little did I realize the inner significance of the tragic events of 1916. My principal had expelled me, but he had made my future career. I had established a precedent for myself from which I could not easily depart in future. I had stood up with courage and composure in a crisis and fulfilled my duty. I had developed self-confidence as well as initiative, which was to stand me in good stead in future. I had a foretaste of leadership-though in a very restricted sphere- and of the martyrdom that it involves. In short, I had acquired character and could face the future with equanimity.[7] He was then let in the 'Scottish Church College' and took his honours degree in Philosophy in 1919.[8] He was then send to England by his father to appear for Indian Civil Services in 1920, for which he secured 4th rank in the order of merit.[9] Facing a moral dilemma of opposing the British on one side and serving them via Civil Services, he resigned from I.C.S and returned to India to join the Non-Cooperation movement under the mentorship of Deshbandhu Chitta Ranjan Das.[10] He met Mahatma Gandhi on July 16,1921 and found his ideas to be impractical.[11] He later wrote in his autobiography, 'I desired to obtain a clear understanding of the details- The successive stages of his plan, leading on step by step to the ultimate seizure of power from the foreign bureaucracy. There were three points which needed clarity. First, how were the different activities conducted by the Congress going to culminate in the last stage of campaign, namely, the non-payment of taxes. Secondly, how would the non-payment of taxes or civil disobedience force the government to retire from the field and leave us with our freedom. And, lastly, how could the promise of Swaraj fructify within one year.[12] Subhash Bose later wrote that the promise of Swaraj within one year was childish and unwise.[13] However, both Subhash Chandra Bose and his mentor, C.R. Das whole heartedly participated in the Non-Cooperation movement in Bengal and were imprisoned for the same in the Alipore Central Jail.[14] He was released in the mid of 1922 and by that time, had started to emerge as a major national level politician. He was made the secretary of the Bengal Provincial Congress Committee in 1923[15] and stood as a Swarajist candidate in the Calcutta Municipal Corporation. Das was elected as a Mayor and Bose was made the Chief Executive officer in April 24, 1924.[16] Bose was again arrested on October 25, 1924 due to his perceived links

ISSN 2250-2769

with revolutionaries and exiled to Mandalay Jail.[17] A great tragedy befell him when in jail, he learnt about the death of his mentor C.R. Das on 16th June, 1925.[18] His health deteriorated and he was released in May, 1927[19] and went to Europe to recuperate. There, he continued his political activities and met Mussolini but his attempts to met Hitler came a cropper.[20] He returned to active political life and in November 1927 was elected the president of the Bengal Provincial Congress Committee.[21] He was also elected as the President of the Maharashtra Provincial Conference at Poona in 1928, where he made a soul stirring speech advocating rights for the labour class and encouraging the students to form their own organizations for social and political activities.[22] His jail run-ins continued till 1931, when he was finally released from Jail on March 8th 1931.[23] His differences with Gandhiji again showed up when the latter came back from London after the Second Round Table Conference empty handed. He remarked characteristically that "The Mahatma had failed, because the strength of a leader depends not on the largeness but on the character of one's following. With a much small following, other leaders have been able to liberate their country– while the Mahatma with a much larger following has not. He has failed, because while he has understood the character of his own people– he has not understood the character of his opponents.[24] His health, always precarious, again gave way, and he sailed to Europe to recuperate in 1933, where he stayed till 1936 and was arrested immediately after landing in Bombay on 8th April 1936.[25] He was released in March 1937 and put up at the Elgin Road, Calcutta, which was to be his residence till January 1941.[26] In 16 February 1938, he became the Congress President at Haripura.[27] He also won election to the exalted chair the subsequent year at Tripuri, when he defeated Mahatma Gandhi's nominee, Pattabhi Sitaramiya by 1582 to 1375 votes.[28] Friction was seen between the two stalwarts on many issues related to economic, political and social issues, with the result that Subhash Bose was forced to resign from the presidentship on 29 April 1939[29] and formed a separate party known as 'Forward Bloc'. He was again arrested on 2 July 1940 for participating in a procession, which demanded the removal of the memorial build in the memory of Black hole massacre, and placed under house arrest.[30] He made his daring escape in the early morning of 17 January 1941[31] and went to Kabul and then Germany, hoping to persuade the *Fuhrer* [Hitler] to support his just cause of Indian Independence.

The changes in international politics at that time, with the rise of *Third Reich* under Hitler and Fascist Italy under Mussolini, had implications and profound impact on world events at that time. The Bharatiya political scenario

during this time was of passivity, with Congress in doldrums after the revolt by Netaji. This period also saw the rise of Japan as a major imperial power of the East, out to impose its imperial 'virtues' upon the Asian nations. The start of the horrific World War II on 1 September 1939 had put the two belligerents groups against one another, each out to impose their order upon the world. India, at this time, was made to support British as she was under the latter's tutelage. The defeat of the British Indian Army in Malaya on 11 December 1941 saw an active Japanese propaganda, with leaflets being dropped upon the fleeing soldiers promising them emancipation from the white man's rule,[32] with slogans like "Kick out the white-devils from the East" being heavily used in the propaganda.[33] It had its desired effect, with a British Indian Army officer, Captain Mohan Singh of the 14th Punjab, along with his associate, Swarn Singh, helped by a civilian Saudagar Din, sending a message to the Japanese. The message has been reproduced below.

'An Indian Army officer wants to meet you and discuss with you his plans of fighting the British to achieve the freedom of Bharat. As Britain is our common enemy, if you assist him, it will also be helpful to you. He has one condition; a British Colonel, who is with him should not be killed'.[34] On 15th Dec, 1941, he was met by the Japanese officials,[35] who after satisfying themselves, gave him go ahead to form a force consisting of 'Prisoner of Wars', which was immediately named 'Indian National Army' by Captain Mohan Singh.[36] Around 20,000 Indian soldiers were placed by the Japanese under the latter, with the Japanese stating that 'General Officer Commanding Captain Mohan Singh shall have powers of life and death over you'.[37] A conference to streamline the functioning and its relation with the Japanese was organized at Tokyo from 28 to 30 March 1942, with Major Fujiwara representing the Japanese and the Rash Bihari Bose and Pritam Singh representing the Indian side. Other Indian members were N. Raghvan, K.P.K Menon, K.A.N Ayer and S.C. Goho from Malaya, Pritam Singh and Swami Satya Nand Puri from Thailand and representing the Army were Mohan Singh, N.S.Gill, Mohammed Akram.[38] The conference had a bad start, with the second plane carrying Pritam Singh, Swami Satya Nand Puri , N.K.Puri and Akram Khan crashing in South Japan and killing everyone on board.[39] Inspite of the initial setback, the process of completing the modalities continued unabated and it was decided to form the Indian Independence League with 'Unity, Faith, Sacrifice' being its motto.[40] The following decisions were taken in the conference.

ISSN 2250-2769

1. To expand and strengthen the Indian Independence League throughout the Far-East, where two million Indians were residing, and safeguard their interest and fair treatment.
2. To form under the overall control of the Indian Independence League an Indian National Army, based primarily on the Indian Prisoners of War.
3. To invite Subhash Chander Bose to come over from Europe to lead the movement, thereby strengthening it and giving it due status.
4. To hold a conference of the representatives of Indians from the whole Far-East at Bangkok in June to consolidate these and allied decisions so as to launch a struggle from overseas for attainment of India's freedom at the earliest date by invading India from Burma.
5. All our efforts must be in accordance with the wishes and plans of the Indian National Congress and its leaders.[41]

The Indian National Army was organized after this conference as a number of Indian Prisoner of War's, totaling about 45,000 were given to Captain Mohan Singh.[42] An Indian National Army specific conference was organized at Bangkok on 15th June 1942 under the chairmanship of Rash Bihari Bose.[43] The conference ratified the earlier passed resolutions at Tokyo and "it appealed to the Japanese Government to use its good offices to obtain the necessary permission and conveniences from the Government of Germany to enable Subhas Chandra Bose to reach East Asia Safe."[44] The task of management of Indian Independence League would be handled by three committees, namely, [a] Council of Action; [b] A Committee of Representatives [c] Local Branches.[45] The formative Indian National Army was organized as on 1 September 1942 into three guerilla regiments named after Gandhi, Nehru and Azad,[46] apart from an intelligence wing, a sabotage unit known as Bahadur Group and an infantry unit called No. 1 Hind Field Force Group.[47] But relations deteriorated after the Japanese refused to honour the Bangkok resolutions and it became clear to Mohan Singh that the Japanese intended to treat the Indian National Army as merely an auxiliary force. Consequently, he was arrested in 1942 and the First chapter of Indian National Army ended with a whimper.[48]

While in Germany, Subhash Chandra Bose had organized 'Free India Center', 'Azad Hind Radio', and the 'Indian Legion'. The salutation of 'Jai Hind' was also conceived in Germany.[49] The reverses suffered by Germany during the course of World War made Bose to rethink his strategy and he proceeded to Japan and reached there in June, 1943.[50] The Japanese officially announced the arrival of Netaji and the latter addressed a press conference on

19th June, 1943, where he decried the Non-violent struggle as preached by the Congress and urged the Indian people to receive the baptism of fire in order to achieve freedom.[51] With the earlier Indian National Army attempt having been fizzled out, the ailing Rash Behari Bose exhorted Netaji to take over the leadership of the Indian Independence League, which was formally done on 4th July, 1943 at a function in Singapore[52] A message send from the Japanese premier Tojo was also read.

On 6th July 1943, the Indian National Army was inspected by the Japanese Premier Tojo,[53] who promised an unshakeable support to the Indian people in their fight for freedom.[54] In a rally on 9th July 1943, he gave the soul stirring slogan of "Total mobilization for a total War" and promised his countrymen residing in South-East Asia a second front of the India struggle.[55]

On 25th August 1943, he took over the leadership of Indian National Army and became its Supreme Commander. The Indian National Army had strength of 40,000 at this time, with training centers in Malaya and Burma.[56] Netaji visited Burma on 1st August, 1943, when Japan granted independence to Burma and in the independence ceremonies that followed, stressed upon the fact that the emancipation of Burma had given a fillip to the independence movement in India.[57] However, the tide of the war was slowly turning against the Axis powers, with Germany and Italy suffering serious reverses in Russia and Europe respectively, while Japan was pushed back in Asia. At this time, Netaji was in the process of formation of the Provisional Government of Free India. He probably felt that a Provisional Government was the need of the hour as it would then be internationally recognized and therefore, it could declare war upon the Allied forces. Taking this into consideration, the Provisional Government of Free India was formed on 21st October 1943 at Singapore, with Netaji as the Head of the State and Supreme Commander of the Armed forces. The proclamation, talks through the struggle against the British, which has been going unabatedon since 1857 and has reached a decisive stage at this time, with Germany and Japan gaining an upper hand against the British.[58] It exhorted the Indian people to take advantage of the prevailing international situation and support the Indian National Army in its just cause of Indian liberation.[59]

This Government was recognized by Japan, Germany, Italy, Manchukuo, Nanking, The Philippines, Thailand and Burma.[60] On 6th November 1943, the 'Greater East Asia Conference' was held in Tokyo, where the Japanese PM Tojo made the announcement of handling over the Andaman and Nicobar

ISSN 2250-2769

Islands to the Provisional Government.[61] The handling was, however, accompanied by senseless cruelties by Japanese upon the local population.[62] Bose visited these islands on 29 December 1943 and renamed them as 'Shaheed' and 'Swaraj' Islands[63] and appointed Lieutenant Colonel Loganathan as the Chief Commissioner on 22 February 1944.[64]

Once the armed forces and Provisional Government had been organized, Netaji went for an all out war with the support of imperial Japan for Indian Liberation. He moved the Headquarters of Indian National Army and Provisional Government to Rangoon in January 1944.[65] The Japanese had planned their long delayed offensive in the Arkan and Imphal sector and were reluctant to the idea of having Indian National Army fighting along with their forces. After arduous negotiations between the two sides, the following propositions were made and adhered to.

1. The Indian National Army formation should not be smaller than a battalion.
2. The Indian National Army units should only be commanded by Indian officers.
3. The Indian National Army and the Japanese forces should follow a common strategy which had been approved by Netaji and Japanese Commander-in-Chief.
4. The Indian National Army was to be allotted an independent sector of the front.
5. The liberated Indian territory would be handed over to the provisional Government of Free India for administration.
6. Only the Indian Tricolour would fly over the Indian territories liberated from British control.[66]

As a result of the above agreement, about 7,000 soldiers of Indian National Army took active part in the operations along the Arakan, Imphal and Kohima Sector during the initial phase. On the eve of its departure on 3rd February 1944, Netaji made a farewell speech which exhorted the soldiers of Indian National Army to 'not waste any time and take up your arms as the road to Delhi is the road to freedom.'[67] The next day, the I.N.A launched its offensive in the Arakan Sector of Burma[68] and distinguished itself when it cut off the 7th Indian Division in Mayu valley, with Netaji visiting the said area on 9th February and stated to the soldiers that.

The eyes of the whole world are now focused on the Arakan Front, where events of far-reaching importance are taking place today. The glorious and brilliant actions of the brave units the Azad Hind Fauj working in close concert with the forces of the Imperial Nipponese Army have helped to foil all attempts by the Anglo-American forces to start a counter-offensive in this sector.

The Indian National Army was fighting freedom's battle on eight Sectors of Burma-Indian border, on the plains of Imphal and in the neighbouring of Kohima. In the matter of hours news was expected of the fall of Imphal to India's army of liberation. This would have meant the death-knell of British empire in India.[69] The Indian National Army was only seven miles away from Imphal as on 2nd 1944, but nature played havoc with it with torrential rains disrupting communications and supplies, with sustained aerial bombings by the Allied forces forcing them to move out of the Imphal sector and positioning themselves to the east of Chindwin river.[70] The precarious situation was amply demonstrated by the twoIndian National Army proclamations which were issued on 4th April, 1944.[71]

As had been stated earlier, the continuous air bombings and floods had made a mess of the Indian National Army and Japanese operations. This resulted in the suspension of the Imphal Campaign by the latter on July 26 1944, with the Japanese loosing 54,000 out the 1,00,000 troops involved in the battle and Indian National Army casualties numbering to 4,000.[72] Netaji, too, in a speech on 13 August 1944, made a mention about the 'strategic' withdrawal made only due to heavy rainfall.

We started the operations too late. The monsoon was disadvantageous to us. Our roads were submerged. River traffic had to be against the current. Against this the enemy had first class roads. Our only chance was to take Imphal before the rains started: and we would have succeeded if we had more air support and if the enemy forces in Imphal had not special orders to make a stand to the last man. If we had started in January we would have succeeded. In all sectors, till the rains began, we either held the enemy or advanced. In the Arakan Sector, the enemy was held. In the Kaladan sector, we routed the enemy and advanced. In Tiddim, we advanced. In Palel and Kohima also, we advanced. In the Hake sector, we held them. And all this inspite of the numerical superiority that the enemy had, plus equipment and rations.

When the rains came, we had to postpone the general assault on Imphal. The enemy was able to send mechanized divisions and thus was able to retake

ISSN 2250-2769

the Kohima-Imphal Road. The question then arose where we should hold the line. There were two courses open, either to hold on to the Bishanpur-Palel Line and not allow the enemy to advance; or to fall back and hold a more advantageous position.[73]

In order to boost the sagging morale of the soldiers and prepare them for further future actions, Netaji had addressed the soldiers on August 14, 1944. He stated, "In addition to the present slogan of the Indian National Army, namely 'Chalo Delhi', another slogan willbe added from today, and that will be "Khoon,Khoon, Khoon (Blood, Blood, Blood)". This means that we shall shed our blood for the freedom of 38 crores of people in India. Similarly,we shall shed blood of the enemy for the same cause. The slogan for the Indian civilians, who are in the south will be: 'Karo Sabnichhawar, bano sab fagir' (sacrifice everything, become all paupers).[74]

Inspite of the adverse situation prevailing at that time and with the lack of Japanese support, the Indian National Army continued to fight but desertions had started taking place due lack of faith in victory. Netaji took active hard measures to stop cowardice by issuing a special order on 13 March 1945, which among other things, stated unequivocally that 'treachery will not be tolerated and hoped for the full support of his fellows'.[75] However, the situation continued to worsen for him, with the British Army appearing near Rangoon and surrender by Col.P.K Sehal in the last weak of April, 1945.[76] Rangoon was captured on 4 May 1945 by the Allied forces and about 5000 soldiers and officers ofIndian National Army surrendered on that day.[77] Colonel Shah Nawaz and Colonel Dhillion surrenderd on 16th May 1945.[78] Netaji had earlier left for Bangkok on 24th April, 1945[79] and was at Malaya when the Japanese had surrendered on 14th August 1945.[80] In his address made on 15th August 1945, he urged his soldiers to behave in a dignified and disciplined manner.[81] With Japanese surrender, his followers advised him to leave for Singapore and then to Saigon.

Conclusion

He was reportedly killed on 16th August 1945, when his plane crashed enroute to Tokyo. With this ended the glorious chapter on history of freedom movement of India. Netaji name would be written in golden words whenever there is any mention of freedom fighters fighting for freedom of motherland. He patriotic zeal made him to leave a lucrative career in civil services and fight for the emancipation of his land. His alliance with the fascist powers was frowned upon by the nationalist leaders as well as by the left wing politicians. But his zeal

to free his motherland at any cost, whether with the help of fascist powers or anyone, is to be studied in the context of international relations at that time. He was a staunch opponent of British rule and would do anything to make his country free from the shackles of slavery. His political philosophy was of a socialist, a secularist and an advocate of a strong center. Apart from all the contributions made by him, his salutation of 'Jai Hind' is used in still as a symbol of nationalist expression. The formation of I.N.A is at present seen as a major event which led to politicization of the British Indian Army at that time, which finally led the British to leave India. In the midst of his disagreements with Gandhiji over the methods to be used for freedom, one cannot deny that Bose was ahead of his times and had a deep grasp over international affairs, which, according to him, was bound to effect the internal politics of India, and he wanted to take advantage of these events in order to achieve freedom for India. He inspired many with his diverse writings and his daring attitude as seen during the 'oaten incident' or his escape from his home in 1941. His Indian National Army was seen as a novel concept at that time. Contrary to the popular perception that he eulogized Nazism, he only admired their strict adherence to discipline and their total dedication towards their country. His adventurous life and total dedication towards his country are to be applauded in a great spirit and suffice it to say that his endeavors for freedom are to seen in an objective light taking into the account the happenings during that time.

References:

1. Subhash Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942, Asia Publishing House, Netaji Research Bureau, Calcutta, 1967, p. 293.
2. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose, Radha Publications, New Delhi, 1998, p.5.
3. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], op.cit., p.7.
4. Sisir K. Bose , Subhash Chandra Bose, Netaji Collected Works, Netaji Reseach Bureau, Calcutta, 1980. p.75.
5. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.8.
6. Hiren Mukherjee, Bow of Burning Gold A study of Subhas Chadra Bose, op.cit., p.11.
7. Sisir K. Bose , Subhash Chandra Bose, Netaji Collected Works, pp. 79-80.
8. Hiren Mukherjee, Bow of Burning Gold A study of Subhas Chadra Bose., op.cit, p.12.

ISSN 2250-2769

9. Subhash Chandra Bose, An Indian Pilgrim: An Unfinished Autobiography and Collected letters, 1897-1921, Asia Publishing House, Netaji Research Bureau, Calcutta, p. 95.
10. Subhash Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942, op.cit., p.64.
11. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], op.cit.,p.26.
12. Subhash Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942, pp. 58-59.
13. ibid., p.59.
14. Dr Asoke Nath Bose, My Uncle Netaji, Esem Publications, Calcutta, 1977, p.8.
15. Leonard A. Gordon, Brothers against the Raj, Rupa Publications, New Delhi, 1990, p.104.
16. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.41.
17. ibid., p. 42.
18. Sisir K. Bose , Subhash Chandra Bose, Netaji Collected Works ,pp. 71-72.
19. Subhash Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942, op.cit, p.175.
20. S.N. Bhattacharyya, Subhash Chandra Bose in Self-Exile, His Finest Hour, op.cit, Chapter.iii.
21. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.47.
22. ibid., p. 48.
23. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.55.
24. Subhash Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942, op.cit, p.295.
25. Dr Asoke Nath Bose, My Uncle Netaji, op.cit.p.129.
26. ibid., p. 135.
27. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.80.
28. Hiren Mukherjee, Bow of Burning Gold A study of Subhas Chadra Bose., op.cit, p.53.
29. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.85.
30. Hiren Mukherjee, Bow of Burning Gold A study of Subhas Chadra Bose., op.cit, p.65.
31. ibid.,p.71.
32. Mohan Singh, Soldier's Contribution to Indian Independence, Army Educational Stores, Delhi, 1974, p.56.
33. ibid.,p.65.
34. ibid.,pp. 69-70.

35. Kesar Singh Giani, Indian Independence Movement in East Asia, Singh Brothers, Lahore, p.26.
36. Niranjan Singh Gill, Story of I.N.A, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Delhi, 1985, p.26.
37. Hiren Mukherjee, Bow of Burning Gold A study of Subhas Chadra Bose., op.cit, p.87.
38. Mohan Singh, Soldier's Contribution to Indian Independence, Army Educational Stores, Delhi, 1974, p.116.
39. Niranjan Singh Gill, Story of I.N.A, op.cit.,p.27.
40. Kesar Singh Giani, Indian Independence Movement in East Asia, op.cit., p.44.
41. Niranjan Singh Gill, Story of I.N.A, pp. 28-29.
42. ibid.
43. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], op.cit., p.58.
44. Radhanath Rath, Rash Bihari Bose, His struggle for India's Independence, Calcutta, 1963, p.94.
45. Kesar Singh Giani, Indian Independence Movement in East Asia, op.cit., p.85.
46. Mohan Singh, Soldier's Contribution to Indian Independence, op.cit.,p.136.
47. ibid.,pp 136-137.
48. Niranjan Singh Gill, Story of I.N.A, op.cit.,pp. 37-38.
49. S.N. Bhattacharyya, Subhash Chandra Bose in Self-Exile, His Finest Hour, op.cit., p.53.
50. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], op.cit., p.59.
51. ibid.,p.59.
52. ibid.
53. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], op.cit., p.60.
54. Kesar Singh Giani, Indian Independence Movement in East Asia, op.cit., p.22.
55. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], op.cit., p.60.
56. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.121.
57. ibid.,p.121.
58. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,pp. 345-348.
59. ibid.
60. Hiren Mukherjee, Bow of Burning Gold A study of Subhas Chadra Bose., op.cit, p.89.
61. Hari Hara Dass. Subhash Chandra Bose and Indian National Movement, Sterling Publishers Private Ltd, Delhi, 1983, p.288.
62. Hiren Mukherjee, Bow of Burning Gold A study of Subhas Chadra Bose., op.cit, p.91.
63. Kesar Singh Giani, Indian Independence Movement in East Asia, op.cit., p.113.

ISSN 2250-2769

64. Hari Hara Dass. Subhash Chandra Bose and Indian National Movement, op.cit.,p.288.
65. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], pp. 60-61.
66. Shah Nawaz Khan, My Memories of I.N.A and its Netaji, Rajkamal Publications, Delhi, 1946, pp. 108-110.
67. Hugh Toye, Subhash Chandra Bose [The Springing Tiger] A Study of a Revolution, Jaico Publishing House, Calcutta, 1984, p.106.
68. Shridhar Charan Sahoo, Subhas Chandra Bose [Political Philosophy], op.cit.p. 61.
69. S.A. Ayer, Selected Speeches of Subhash Chandra Bose, op.cit.p.22.
70. Mohan Singh, Soldier's Contribution to Indian Independence, op.cit.p.321.
71. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose., pp.349-353.
72. Mohan Singh, Soldier's Contribution to Indian Independence, op.cit.p.321.
73. S.A. Ayer, Selected Speeches of Subhash Chandra Bose, op.cit.p.236.
74. Kesar Singh Giani, Indian Independence Movement in East Asia, op.cit., p.140.
75. S.A. Ayer, Selected Speeches of Subhash Chandra Bose, op.cit.p.244.
76. Mohan Singh, Soldier's Contribution to Indian Independence, op.cit.p.337.
77. ibid.
78. ibid.
79. V.P. Gupta Mohini Gupta, The Quest for Freedom A Study of Netaji Subhas Chandra Bose.,op.cit.,p.123.
80. Ibid. p.124.
81. ibid.,p.364.

[1]Associate Professor, Department of History,
Himachal Pradesh University, Shimla

[2]P.hd Scholar, Department of History,
Himachal Pradesh University, Shimla

ISSN 2250-2769

Netaji: Idea of Bharata and Bhartiya Nationalism

Deepesh Chaturvedi

Abstract

This paper will try to analyze Netaji Subhash Chandra Bose's idea of Bharata[1] and hisconception of nationalism and how it was deeply rooted in the traditional Bhartiya viewof welfare state. Netaji's political philosophy and intellectuality stood far more than his prosaic and eloquent speeches. He wasn't merely a magician of words but had a vision for Bharata and ability to transform it into reality. His ideas and philosophy for free Bharata could be seen in his speeches and writings like 'The Indian struggle', 'An Indian pilgrim' and 'Dreams of youth'. He was a genius and rationalist thinker who continued to work for nation-buildingprogrammes like industrialization, women emancipation, social-reform, education, political movements, and most importantly 'Azad Hind Fauz'.

Netaji's idea of Bharatvarsha was deeply inspired from the traditional and spiritual antecedents of Bharata. Hebelieved in spirituality and had profound impact of Shankaracharya, Brahmosamaj, Ramkrishna Paramhansa and Swami Vivekananda on his political philosophy. Though, he considered religion to be a private affair but took inspirations from Sanskrit scriptures to uphold one's dharma and follow your duty. His ideas of nationalism were inclusive and broad based which he mentioned were inspired from highest ideals of human existence, i.e. satyam, shivam, sundaram. He considered nationalism to be political as well as ethical movement.He considered communists as anti-national and even criticized Tagore's shallow internationalism. He frequently advocated the socialist principles in traditional aspects of his political mentor Deshbandhu C.R Das and Vivekananda to work for eradication of poverty and welfare of masses. He believed in the indigenous roots for the ideas and its implementation whether it was socialism or nationalism. His ardent patriotic zeal led to his social consciousness and commitment to deal with insurmountable problems which could only be solved by invoking indigenous ideas and philosophy.

Keywords: *Bharatvarsha, Communism, Nationalism, Netaji and Socialism.*

Introduction

A child who felt 'thoroughly insignificant being'[2] was born as ninth child to Jankinath and Prabhabati Bose on 23rd Jan 1897 and lived as Shubash Chandra Bose, the most charismatic leader of Bhartiya independence movement. He hailed from a family who has given Bengal from preceding 27 generations man of letters who were of unimpeachable character, greatly revered, full of compassion, kindness, religious and philanthropic attitude. Being nurtured in this atmosphere, he became a staunch nationalist, he showed perseverance in adversaries and took inspirations from the greatest thinkers and revolutionaries. He entertains as well as negates different ideas by critically analyzing their effects on himself and society at large. Some of the greatest events and revolutionaries who inspired and molded his personality were his own parents, Beni Madhab Das (Headmaster), teachings of Ramakrishna Paramhansa, Swami Vivekananda, Aurobindo Ghosh, teachings from Sanskrit literatures and Bhagwat Gita, *Deshbandhu* C.R. Das, Lenin, Mustapha Kemal Pasha, De Valera, Joseph Mazzini, Count Cavour, Garibaldi, and the impact of freedom movements in other countries such as American War of Independence, Italian struggle for unification and Irish struggle for freedom.[3] Within these background his empirical understanding of individual, society, nation and its political frameworks were formulated to liberate Bharata from its shackles of oppressions. He showed glimpses of past, present and future of Bharata in his writings, speeches and letters, also his political philosophy and ideology got formulated in this course of struggle.

Netaji got his primary education in Cuttack and then left for Calcutta's prestigious Presidency college for his degree in philosophy. He regularly visited different philanthropic societies and also came up in contact with different secret societies. He frequently had arguments with Europeans in college or in public places which often ended up in manhandling. He even got expelled for assaulting a British teacher who often pass discriminatory remarks on indigenous students. Later, he went to London for preparing for I.C.S examination where he secured 4th rank but left as he thought the idea of serving alien race in his own motherland was not reconcilable with his conscience. His belief in *nishkaam karma*[4] compelled him to serve country without holding any office for which he wrote to his brother that his 'national and spiritual aspirations are not compatible with obedience to civil services condition'.[5] And later also affirmed his father that a 'life of sacrifice to start with, plain living and high thinking, whole-hearted devotion to the country's cause…. All these are highly

ISSN 2250-2769

enchanting to my imaginations and inclinations'.[6] He then resigned and came Bharata to join agitation for *swaraj* under the mentor ship of *Deshbandhu* C.R Das.

Thus, achieving freedom was his main objective and as a result the idea of national freedom which would open the door for a prosperous future of Bharata dominated his political ideals. His political thinking had a spontaneity that is inextricably linked to his upbringing as a devout Hindu and busy political schedule. And for this he never failed to admit his unapologetic love for glorious Bhartiya past by invoking symbols cultural nationalism. And he also attributed the three organizations of Hindu revivalism like Ramkrishna mission, Arya samaj and Brahmosamaj as important factor in developing self-pride and spirit of nationalism.[7]

Idea of Bharata

Netaji considered Bharitya history to be organic and got inspired from Aurobindo's theory of cyclical history of nation and civilization. He gave an interpretation of Bhartiya history and claimed that it needed to be written down in thousands, not in decades or centuries. Bharata has experienced several vagaries of fortune. A career, growth, and prosperity cannot be sustained for either the individual or the country. Similar things may be said for Bharata, which has always been distinguished by a very high degree of culture and civilization, even in 3000 BC Harappa civilization unmistakably proved that.[8] Then, Vedic era marked the phase of non-monarchial tribal democracy and later culminated into full-fledged centralized Mauryan empire; which for the first time united whole Bharata politically and further Gupta era marked the all-round development in the field of art, architecture, literature, trade, industry and military power. Excellent political literatures like *Mahabharata, Dharamshastras and Arthashastra* were written which are storehouse of knowledge and information.[9] Inmedieval era under Muhammadans marked the synthesis of culture with occasionally some fanatic rulers who had attempted proselytization.[10] Later on, Maratha and Sikh rule showed benevolent despotism, marked by excellent civil administration where state worked continuously for the betterment and uplifting the masses. In short, Bhartiya civilization before the English showed continuity in culture with cyclical decline and upheaval which was due to physical and intellectual despondency.

Negating the divisive policy of English men, Netaji pondered upon the remarkable unity in Bharata which was due to Hinduism as its important cementing factor.[11] Wherever one travel in Bharata he can find similar beliefs,

ISSN 2250-2769

religious ideas, culture and tradition. Ramayana, Mahabharata and Shankracharya ideas played important role in spreading this unity in distinctiveness. Later, Muhammadans as invader also got synthesized in prevailing culture with some distinctiveness and relative policy of non-interference. He opined that Muslim aristocracy never ceased to play an important role in the public life of the country, whether before or under British rule. But English men were altogether aliens, followed Mohammedan's autocracy with policy of interference in local affairs and tried to dominate Bharata.[12] This led to mass revolt and magnitude of upsurge for independence.

He not only gives the coherent views of Bhartiya past and its trajectory to present but also envisioned the future development goal for Bharata. He wanted the socialist development model whose idea should not have coincided with other nation but to be rooted deep into the Bhartiya culture and ethos. Because he believed that transplanting a complete idea or institution to another country would not always have positive or productive outcomes. A national institution is a logical outcome of the history of the individuals involved, their beliefs and ideals, and their daily actions. According to Netaji, social and political institutions cannot be created by neglecting the country's people's history and traditions, in addition to their current circumstances or the dominant way of life. For this, he was unable to concur with the communists in Bharata as their loyalty were lied to an international organization. He believed that Bharata did not fit into the Soviet Union's model of Bolshevik socialist system. Therefore, only those socialistic ideals that are compatible with Bhartiya needs should be assimilated, modified and implemented.

Netaji's uncompromising attitude for glorious Bhartiya past could also be seen when he regularly invoked the glorious Bhartiya past and its institutions by citing references from nationalist historian K.P Jayswal's book of Hindu Polity.[13] As he mentioned that there were 81 different types of republican form of government in ancient Bharata and 'democratic institutions still existed in certain parts of India like Khasi's from Meghalaya choose democratic principalities in electing their head'. Even the civic administration was good in old days under the committee of five headed by *nagarshresthin.* He believed in the prevalence of all types of ideas and institutions in past, like he said 'there was prevalence of communism in India where property had a community ownership with complete absence of private property'.[14] So, the sole purpose of freedom struggle is to retain our lost glory when Europeans were mightily afraid of Asia when it was the top-dog and conquered many parts of it.[15]

He criticized Jawaharlal Nehru for his open admiration of Bolshevik's communism as the best plausible ideology for Bharata's future growth trajectory.[16] Netaji discarded this idea of binary world division between communism and fascism. In addition, he noted in the chapter 'A Glimpse of the Future' in his book 'The Indian Struggle'; 'Despite their opposition, communism and fascism share a number of characteristics. Both fascism and communism believe that the state should come before the individual. Both reject democratic government through parliament. They both support party rule. Both support the party's dictatorship and the merciless repression of any minority groups who disagree with it. Both support the nation's planned industrial reorganization' So he discarded this binary thesis and gave new synthesis for Bharata's future development. The new synthesis would blend of both and will be known as *Samyavada*. Netaji stated, 'It will be the job of India to work out this synthesis'.[17] This notion of *samyavada* is very much different to present discourse as it was according to traditional Shastric version of welfare state. He outlined its guiding principles as:

1. Complete independence for the country and a resolute anti-imperialist fight to get it.
2. A socialist nation that is fully contemporary.
3. Scientific large-scale production for the nation's economic revival.
4. Social control and ownership of the manufacturing and distribution processes.
5. The right of the person to freedom of religion.
6. Everybody has the same rights.
7. Independence in terms of language and culture for all Indian communities.
8. Implementing the egalitarian and social justice principles while establishing a New Order in Free India

Views on Nationalism

He inherited national characteristics from his father who regularly worked for swadeshi and constructive program during independence movements.[18] In his early life, Netaji along with other Bhartiya students faced discriminatory practices in school and colleges for which he became very vocal and revolted. This resulted in his expulsion from Presidency college for which he expressed his feeling of satisfaction, ‘I had rather a feeling of supreme satisfaction of joy that I had done the right thing, that I had stood up for our honor and self-respect and had sacrificed for a noble cause’.[19] Later on, during his stay

in London he again faced the hypocritical attitude of queen's government and benevolence. He then decided to follow the path ofAurobindo which was 'noble, inspiring, lofty, unselfish though thorny' to resign ICS despite securing 4th rank. Aurobindo's synthesis of spiritualism and nationality had immense impact on Netaji. He writes, 'It is not possible to serve one's country in the best and fullest manner if one is chained to the civil service. In short, national and spiritual aspirations are not compatible with obedience to Civil Service conditions'.[20]

Netaji believed that Bhartiya civilization due to its moral virtues and high ethics showed considerable openness and acceptance towards people of different races, cultures and faiths. This resulted in cultural internationalism and development of concept of whole world as one family. Sanskrit literatures and morality imbibed in it greatly nurtured his belief in form of inclusiveness. Like, Netaji embraced the Upanishad concept of *tyaga*, internalized the notion of self-realization through sacrifice, and made a firm commitment to working nonstop for the welfare of the nation and its laboring masses. *Netaji credited his spiritual mentor Swami Vivekananda* to infuse faith in Bharata's past, conviction towards Bharata's future and a spirit of self-confident and self-respect in every individual.

For Netaji, a nation does not exist just to further a few narrowly selfish interests. He spoke to the students from the Central Provinces at Amravati and Berar. 'I've previously suggested that some of our current notions of what is good and evil are going to have to shift. He argued that the current stereotypical way of living needed to be completely overhauled and recast in order to foster true national unity and place India in a position of prominence'.[21] He believed that life only has value or meaning when it is elevated above the ordinary by bigger and nobler ideals. Netaji said that 'if a country has no ambition, it does not need to exist or, alternatively, has no right to exist or survive'. Therefore, we need to rise above the parochial notion of Individualism and give our supreme self as done by Jatin Das for unity and equanimity of Bharata. He said, "And I believe that Jatin Das has through his self-immolation not only roused the soul of India, but has also forged an indissoluble tie between the two provinces, where he was born and where he died. I, therefore, envy your great city which has been the *tapasya-kshetra* - the place of penance - of this modern *Dadhichi.*[22]

In Netaji's view, nationalism should be inclusive and treat individuals equally regardless of their caste, gender or region of origin. For this, he even oversaw the creation of the Azad Hind Radio and to prevent a sense of alienation among the populace, the channel would broadcast news and programmes in

seven Bhartiya languages in addition to English, including Hindustani, Tamil, Bengali, Gujarati, Telugu, Pushto, and Persian. He ordered the use of Hindustani in Roman script as the country's primary language since he was aware of the language barrier in such a large nation. Additionally, he chose Tagore's 'Jana Gana Mana' and formally debuted the 55-second song on September 11, 1942, at the German-Indian Society in Hamburg, in order to foster a sense of unity. The anthem's original language was Bengali, therefore he had it translated into plain Hindustani, producing the phrase 'SabhSukh Chain Ki Barkha.' Its melody, dubbed Quami Tarana, was composed by Captain Ram Singh Thakur. His idea of Bhartiya nationalism also had a place for women who showed him with remarkable courage, immense faith, capability and potential. He was inspired from the greatness of queen of Jhansi. For her, he said 'the same India, which produced great women in the past also produced the Rani of Jhansi at a grave hour in India's history and today while we are facing the gravest hour in India's history, I have confidence that Indian womanhood will not fail to rise to the occasion…for the independence of whole India to liberate 38 crores of Indians, India has to produce and shall produce thousands of Ranis of Jhansi'.[23]

Netaji even defended nationalism from its opposing ideologies and equated Bhartiya nationalism as cultural nationalism with its all-round approach of inclusiveness. He equated nationalism parallel to cultural internationalism. He said 'From the point of view of Cultural Internationalism, Nationalism is sometimes assailed as narrow, selfish and aggressive. It is also regarded as a hindrance to the promotion of Inter- nationalism in the domain of culture. My reply to the charge is that Indian Nationalism is neither narrow, nor selfish, nor aggressive. It is inspired by the highest ideal of the human race, viz., Satyam (the truth), Shivam (the good), Sunderam (the beautiful). Nationalism in India has instilled into us truthfulness, honesty, manliness and the spirit of service and sacrifice. What is more, it has roused the creative faculties which for centuries had been lying dormant in our people and, asa result, we are experiencing a renaissance in the domain of Indian Act'. Thus, he also justified the revivalist tendency of 19^{th} century philosophers, swamis, sanyasis and reformers. Netaji with his inclusiveness also targeted international body and hailed the socialist principle in his nationalist zeal. He said, 'It would be clear to the man in the street that before we can endeavor to reconstruct Indian society on a new basis whether socialistic or otherwise-we should first secure the right to shape our own destiny. As long as India lies prostrate at the feet of Britain, that right will be denied us. It

is, therefore, the paramount duty not only of Nationalists but of all anti-Nationalistic Communists-to bring about the political emancipation of India as early as possible'.[24] So it is the duty of every nationalist individual to rise above his parochial goal of divisive politics and serve the Bharata at large. He therefore criticized many contemporary leaders for their communal loyalty including B.R Ambedkar, whom he considered as the product of British benign just to embarrass Bhartiya national movement.[25]

Views On Communism

In an interview to Rajani Palme Dutt in January 1938, Netaji said 'I should point out also that Communism, as it appeared to be demonstrated by many of those who were supposed to stand for it in India, seemed to me anti-national, and this impression was further strengthened in view of the hostile attitude which several among them exhibited towards the Indian National Congress'.[26] As in his view congress stands for the combined voices of Bharata encompassing all the sections of society including peasants, labor, industrialists, traders and minorities. But if separate them in classes and opt for class-struggle then it definitely led to nation in fragments. He said in his presidential speech 'if the Congress neglects the masses it is inevitable that sectional-and if I may say so, anti-national-movement will come into existence and class-war among our people will appear even before we have achieved our political emancipation. It would be disastrous in the highest degree if we were to launch class-war while we are all bed-fellows in slavery, in order that we may afford amusement to the common enemy. I regret to say that there is at present a tendency among some Indian laborites to belittle the Congress and to condemn the Congress programmes. This recrimination should cease and the organized forces of the Labor and of the Congress should join hands for furthering the economic interests of the masses and promoting the cause of India's political emancipation'. So, need of the hour would be the unity against the raj and whatever strengthens for this purpose is to be welcomed. Whatever weakens is to be eschewed. Unity which ties us to the apron-strings of rightist politicians is by no means a blessing. We might as well induce the Congress to effect unity with the Liberal Federation-if unity is to be desired under all conditions and circumstances. The propaganda of leftist in strong voice were debunked and condemned for its schismatic policy. He accused them for their divisive policy and their leaders like M.N Roy to be a British agent whose sole purpose was to destabilize and be little Bhartiya independence movement.

He identified himself to be leftist i.e. pro-changer and anti- imperialist which were very much different to the contemporary understanding of leftists as communists. He was even criticized by Nehru for this vague definition of leftist[27]. But he explained himself as 'In the present phase of our movement, leftists will be those who will wage an uncompromising fight with imperialism. Those who waver and vacillate in their struggle against imperialism-those who tend towards a compromise with it-cannot by any means be leftists. In the next phase of our movement, leftism will be synonymous with Socialism -but in the present phase the words 'Leftist'? and 'Anti-Imperialist' should be interchangeable'.[28] He even wanted revolution in Bharata but that should not be spontaneously driven but slowly as a part of evolution guided by the principals and ethics of Bhartiya customs and traditions. Therefore, he discarded the future of communism in Bharata as communism has no sympathy with Bhartiya nationalism and the communist international is preoccupied with its own geopolitics and propaganda. And the most important reason is the materialistic interpretation of history done by communists are unqualified in Bharata and so do their atheist appeals.

Conclusion

Netaji Subhash Chandra Bose the most dynamic, charismatic, ferocious and energetic leader of Bharatiya independence movement was the greatest statesman and policy maker. He was the 'prince among patriots' and had an opinion on every aspect of social, economic and political necessities arising in the course of freedom movement. He had written vastly on diverse and topics from Bhartiya history to Italian unification and from future of independent Bharata to communism. He considered Bharata has something original to contribute to the culture and civilization of the world in almost every department of human life. In the midst of her present degradation and slavery, the contribution she has been making is by no means a small one. And the movement he envisaged had spiritual backing which was according to Bharatiya past. He never failed to acknowledge his spiritual backing in form of Sanskrit scriptures, Vedantic monotheism and Aurobindo. He hailed nation above all with its glorious past, high ethics and morality. So, he believed it is the duty of every individual to have uncompromising faith in nation and nationalism which would have evolved with the definite pretext of glorious past. Also, being a humanist in the real term, he remarked love and compassion as binding force for development and progress.

ISSN 2250-2769

References :

1. The author has cautiously used the term 'Bharata' and 'Bhartiya' in place of 'India' and 'Indian' as marks of contrapuntal study to de-hegemonize colonial nomenclature. However, India and Indian are used only when quoting the Netaji's original work.
2. Subhash Chandra Bose, An Indian Pilgrim, Netaji Publication society, 1948, page3
3. Dr. R.C Roy, Social, economic and political philosophy of Netaji Subhash Chandra Bose, Orrisa review, 2004
4. Ed. Sisir Bose and Sugata Bose, letters to EmiliSchenkl, netaji research bureau, 2016.
5. Ibid, P.7
6. Subhash Chandra Bose, An Indian Pilgrim, Netaji Publication society, 1948, page-129
7. Subhash Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1934, Netaji Publication society, 1948, page-22
8. Ibid, P-9
9. Ibid, P-19
10. Ibid, P-18
11. Ibid, P-11
12. Ibid, P-12
13. Ibid, P-14
14. Ed. Ganpat Rai, Famous writings and speeches of Netaji Subhash Chandra Bose, lion press Lahore, 1946 P-60
15. Ibid, P-90
16. Ibid, P-313
17. Ibid, P-314
18. Orrissa review P-6
19. An Indian Pilgrim, P-93
20. Ibid, P-126
21. Famous writings and speeches, P-61
22. Ibid, P-84
23. https://www.siasat.com/subhas-chandra-bose-and-the-idea-of-india-2074139
24. Famous writings and speeches, P-61
25. The Indian struggle, P-32
26. https://www.outlookindia.com/national/netaji-believed-indian-nationalism-was-all-about-the-highest-ideals-of-human-race-news-46813
27. Rudranshu Mukherjee, Bose and Nehru:Parallellifes, Penguin publications.
28. Famous writings and speeches, P-79

JRF, Research Scholar, Dept. of History
CUHP, Dharamshala, (H.P.)

ISSN 2250-2769

वैदिक गणित

APPLICATIONS OF VEDIC MATHEMATICS IN ALGEBRA

Pankaj Kumar[1]
Lavlesh Kumar[2]

Abstract

Vedic mathematics is a branch of Mathematics that was discovered in the early twentieth century by Jagadguru Shankaracharya Sri Bharati Krishna Tirthaji based on sixteen sutras and thirteen sub-sutras.Vedic Mathematics has many wonderful applications in the theory of numbers, Arithmetical computations, factorization, algebraic operations, compound multiplications, simple quadratic and higher order equations, simultaneous quadratic equations, and partial fractions. In this paper, we explain the application of Vedic Mathematics in the field of algebra. It shows the existence and knowledge of algebra and shows how it saves us lots of time and effort in doing problems.

Keywords: *Vedanta, Sutras, Vedas*

Introduction

Vedic Mathematics was discovered by Jagadguru Shankaracharya Sri Bharati Krishna Tirthaji Maharaja of Govardhana Matha, Puri (1884-1960). He was born on 14 March of 1884 to an orthodox and well-learned Brahmin family. Because of his knowledge of the subject, he was honored with the title of Saraswati when he was only 16 years old. He did his masters from the American College of Sciences in Rochester, New York. After his eight-year study and practice of Vedanta, he became a monk. During those years, while studying Vedas and scriptures, he found these sixteen sutras and thirteen sub-sutras that were too useful for mental mathematics. Therefore it's known as Vedic Mathematics as it's derived from Veda, especially from the part parisita of Atharva Veda.

Vedic Mathematics has many wonderful applications in the theory of numbers, arithmetical computations, factorization, algebraic operations, compound multiplications, simple quadratic and higher order equations, simultaneous quadratic equations, partial fractions, calculus, squaring, cubing, square root, cube root, integrations, Pythagoras theorem, Apollonius theorem, analytical conics, cryptography and coordinate geometry etc

The sixteen sutras and sub-sutras simplify the algebraic and arithmetic

ISSN 2250-2769

operations and apply them to almost every branch of Mathematics. In this paper, we discussed only those sutras and sub-sutras which are applicable in algebra.

1.1. Sixteen Sutras of Vedic Mathematics [1].

Sr. No	Sutras	Translation
I	एकाधिकेन पूर्वेण Ekadhiken Purven	By one more than the previous one
ii	निखिलं नवतश्चरमं दशतः Nikhilm Navatashcharmam Dashtah	All from 9 and the last from 10
iii	ऊर्ध्वतिर्यग्भ्याम् Urdhva-Tiryagbyham	Vertically and crosswise
iv	परावर्त्य योजयेत् Paravartya Yojayet	Transpose and adjust
v	शून्य साम्यसमुच्चये Shunyam Samyasamuchye	When the sum is same then sum is zero
vi	(आनुरूप्ये) शून्यमन्यत् Anurupyena-Sunyamanyat	If one is in ratio, the other is zero
vii	संकलनव्यवकलनाभ्याम् Sankalan-Vyavkalanabhyam	By addition and by subtraction
viii	पूरणापूरणाभ्याम् Purnapurnabyham	By the completion or Non-completion
ix	चलनकलनाभ्याम् Chalan-Kalanabyham	Differential Calculus
x	यावदूनम् Yavadunam	Whatever the extent of its deficiency
xi	व्यष्टिसमष्टिः Vyastisams-stih	Part and Whole
xii	शेषाण्यंकेन चरमेण Shesanyanken Charamen	The remainders by the last digit
xiii	सोपान्त्यद्वयमन्त्यम् Sopantyadvayamantyam	The ultimate and twice the penultimate
xiv	एकन्यूनेन पूर्वेण Ekanyunen Purven	One less from preceding one
xv	गुणितसमुच्चयः Gunitasamuchyah	The product of the Sum is equal to the Sum of the product
xvi	गुणकसमुच्चयः Gunitasamuchyah	The product of the Sum is equal to the Sum of the product

ISSN 2250-2769

1.2 Thirteen Sub-Sutras (1)

Sr. No	Sub Sutras	Meaning
I	अनुरुपयेना Anurupyena	Proportionately
ii	सिस्यते सेससमजनाः Sisyate Sesasamjnah	The remainder remains constant
iii	अद्यमद्येनंत्य-मंत्ये-नः Adyamdyenantya-mantye-na	First one from the first and last from last
iv	केवलैः सप्तकम गुण्यति Kevalaih Saptakam Gunyat	143 is multiplicand for 7
v	वेस्तानम Vestanam	By Osculation
vi	यवदुनम तवदुनाम Yavadunam Tavadunam	Lessen by the deficiency
vii	यवदुनं तवदुनं वर्गांका योज्येत Tavadunman Tavadunam Varganca Yojayet	Whatever the Deficiency lessen by that amount and set up the Square of the deficiency
viii	अंत्ययोर्डसाके Antyayodasake pi	Last totalling 10
ix	अंत्योरेवा Antyayoreva	Only the Last Terms
x	समुक्कायगुणित Samuccayagunitah	The Sum of the coefficients in the product
xi	लोपनस्थपनाभ्यम् Lopansthpanabhyam	By Alternate Elimination and Retention
xii	विलोकनाम Vilokanam	By observation
xiii	गुणितस्मुक्कायः समुक्कायगुणितः Gunitasmuccayah Samuccayagunitah	The product of the sum is the sum of product

2. Multiplication of Polynomials

In this section we demonstrate how Vedic sutras assist us in multiplication of algebraic expressions in simple and faster ways. This made multiplication more easy and interesting to each of us.

By Ūrdhva-Triyagbhyam Sutra:

The word Urdhva-Triyagbhyam means ‘vertically and crosswise’.

ISSN 2250-2769

This sutra is commonly operated for multiplication [3][8].
First we take the product of two terms **(px^2+qx+r) *(ux^2+vx+w).**

By using the above Sutra :

$$px^2+qx+r$$
$$ux^2+vx+w$$
$$pu.x^4+qu.x^3+pvx^3+pwx^2+qv.x^2+rux+qwx+rvx+rw$$
$$= pu.x^4+(pv+qu).x^3+(pw+qv+ru).2x^2+(qw+rv)x+rw$$

1. Coefficient of x^4, which is 'pu' acquired from vertical multiplication of x^2 coefficient.

$$px^2+qx+r$$
$$ux^2+vx+w$$
$$pux^4$$

2. Coefficient of x^3, $(pv+qu)$ acquired form crosswise way by taking the product of the coefficient and adding them.

$$px^2+qx+r$$
$$ux^2+vx+w$$
$$pvx^3+qux^3=(pv+qu)x^3$$

3. The coefficient of x^2 is attained from the product of the first coefficient ($px^2 + qx + r$) which is p and the last of ($ux^2 + vx+ w$) which is w; from center one to center which is q to v and the last one r with first u as shown below.

$$px^2+qx+r$$
$$ux^2+vx+w$$
$$pwx^2+qvx^2+rux^2=(pw+qv+ru)x^2$$

4. x coefficient is attained from the crosswise product of the second and third term coefficient

$$px+qx+r$$
$$ux+vx+w$$
$$qw.x+rv.x=(qw+rv)x$$

5. At last alone terms are attained from the vertical product, which is r and w

$$px^2+qx+r$$
$$ux^2+vx+w$$
$$rw$$

Therefore the end result can be expressed as

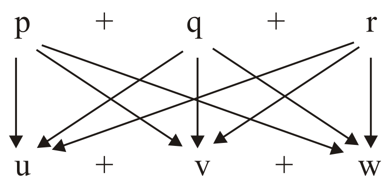

Some examples based on it :

1. $(6x^2+5x+2)(3x^2+4x+7)$

Solution : Step 1 :

$$\begin{array}{l} 6x^2+5x+2 \\ 3x^2+4x+7 \\ \hline 18x^4 \end{array}$$

Step 2 :

$$\begin{array}{l} 6x^2+5x+2 \\ 3x^2+4x+7 \\ \hline 24x^3+15x^3 \end{array}$$

Step 3 :

$$\begin{array}{l} 6x^2+5x+2 \\ 3x^2+4x+7 \\ \hline 42x^2+20x^2+6x^2 \end{array}$$

Step 4 :

$$\begin{array}{r} 6x^2+5x+2 \\ 3x^2+4x+7 \\ \hline 35x+8x \end{array}$$

Step 5 :

$$\begin{array}{r} 6x^2+5x+2 \\ 3x^2+42+7 \\ \hline 14 \end{array}$$

Therefore, $(6x^2+5x+2)(3x^2+4x+7) = 18x^4+39x^3+68x^2+43x+14$ [16].

2. $(2x^2+5x+2)(3x^2+4x-15)$ [3]

Solution :

$$\begin{array}{l} 2x+5x+2 \\ 3x+4x-15 \\ \hline 6x^4+8x^3+15x^3-30x^2+6x^2+20x^2-75x+8x-30 \end{array}$$

$$= 6x^4+23x^3-4x^2-67x-30$$

2.1 Second Method for the Multiplication of Binomial

Let the product of two terms (x+2y) and (3x+4y)

By conventional method : $(x+2y)(3x+4y) = 3x^2+4xy+6xy+8y^2$

$= 3x^2+10xy+8y^2$

Whereas by using Vedic sutra

$(x+2y)(3x+4y)$

$= 3x^2+10xy+8y^2$

x		y
1		2
3		4
3	4+6	8

2. $(5x+9y)(7x+6y)$

$= 35x^2+93xy+63y^2$

x		y
5		9
7		6
35	30+63	54

Thus the above solution shows how fast and simple the method is and it can be used and is used in daily life for long and time-consuming multiplications of polynomials.

3. Division of polynomials

Division of the polynomials is a bit of a harder and lengthy task form the beginning. Still, the forth sutra (paravartya Yojayet) of vedic mathermatics has made it everyone's cup of tea. The sutra means 'transpose and apply' by using which one polynomial is divided from another. We substitute sign and operate from the title (Transpose and apply). The sum will transit into difference and product into quotient or vice versa.

Let's have a look at this with the help of an example :

Example : Divide $\dfrac{x^3+7x^2+9x+11}{x-2}$ **[1]**

Solution : Step 1 : We will modify the divisor by placing it first left side and then writing - 2 below it with the changed sign and dividing the first term with the first one.

$$\frac{x-2}{2} \qquad \begin{array}{l} x^2+7x^2+9x+11 \\ \underline{x\qquad\qquad\qquad\qquad} \\ x^2 \end{array}$$

Step 2 : Now, multiplying 2 with be coefficient of x, which is I and $1*2=2$, now on adding it from 7 we get 9

$$\begin{array}{l} x^2 + 7x^2 + 9x + 11 \\ \quad + 2 \\ \hline \quad + 9x \end{array}$$

Step 3 : Now, on multiplying the 2 with a coefficient of x, which is 9 we get 2*9 = 18 and on adding it with 11 we get 11 + 18 = 27

$$\begin{array}{l} x^2 + 7x^2 + 9x + 11 \\ \qquad\quad + 18 \\ \hline \qquad\quad + 27 \end{array}$$

Step 4 : In the last step, multiply 2 with the independent term, which is 27 and adding with last term gives remainder. 2 * 27 = 54, 54 + 11 = 65

$$\begin{array}{l} x^3 + 7x^2 + 9x + 11 \\ \qquad\qquad + 54 \\ \hline \qquad\qquad + 65 \end{array}$$

Thus Quotient = $x^2 + 9x + 27$ and Remainder = 65

Another example : Divide $x^3 - 3x^2 - 10x - 7$by (x-4) [6]

$$\begin{array}{c} x-4 \\ \hline 4 \end{array} \qquad \begin{array}{cccc} x^3 & -3x^2 & -10x & -7 \\ & +4 & +4 & +24 \\ \hline x^2 & +x & +6 & +17 \end{array}$$

Here **Q = x^2+x+6 and R=17.**

Example : Divide $2x^4 - 3x^3 - x^2 + 2x - 1$ by (x^2-2x+1)

$$\begin{array}{c} x^2 - 2x + 1 \\ \hline 2 + 1 \end{array} \qquad \begin{array}{ccc|c} & +4 & -2 & \\ & & +2 - 1 & \\ & & -2 & +1 \\ \hline 2x^2 & +1x & -1 & -x + 0 \end{array}$$

Therefore, Q = $2x^2$+ x - 1 and R = - x [1]

4. Factorization

Factorization means dissociating an operation (e.g., number or polynomial) into the product of further factors, which by multiplying, gives the original number value. In vedic mathematics, factorization is don e with the use fo two sutras.

1. Anurupeyena (which means proportionality)
2. Aadhyamadyanantyemantye (Means ; First by first and last by last)

Example :

Factorise

$4x^2 + 12x + 5$

1. Anurupyena : On splitting central term coefficient 12 into two parts

s.t. $4x^2 + 2x + 10x + 5$

Now first and second terms are in (2:1)

Therefore the first factor is $2x + 1$ (2:1)

2. Adyamadyenantyamantya : Now on dividing the $4x^2/2x$ and 5/1

we get the second factor : $2x + 5$

Example : Factorise $9x^2 + 15x + 4$

$9x^2 + 12x + 3x + 4$

The first and second terms are in 3:4

First factor $(3x + 4)$

$= 9x^2/3x \quad 4/4$

$= 3x+1$ is second factor .

4.1 Gunitasamuccya

Which means the product of the total coefficient of factors [6]

Example : $3x^2 + 10x + 8 = (x+2)(3x+4)$

Now the total of coefficient of given equation is $3+10+8 = 21$

and a total of the coefficient of factors is $(2+1)(3+4) = 21$

This method is quite useful when only one term is unknown to us, we can easily calculate it.

4.2 Lopanasthapanabhyam

Lopanasthapanabhyam is 'an alternate elimination and retention' method [6].

Suppose we have a quadratic equation $px^2+qy^2+rz^2+sxy+tyz+uzx$ having variables x,y,z and by using this sub-sutra, we can eliminate the difficulty and make factorization easy.

We have to fellow some steps to do it :

STEP 1 : Removing z by substituting it equal to zero $z = 0$ and factorizing the remaining x and y equation by "adyamadena sutra."

STEP 2 : Now, following the same procedure by vanishing x and y, we will get the factors.

Example : $x^2+2y^2+3xy+2xz+3yz+z^2$

STEP 1 : Putting $z = 0$ we got above equation as $x^2 + 2y^2 + 3xy$ which is equal to $(x+y)(x+2y)$

STEP 2 : Similarly putting $y = 0$, $x^2 + 2xz + z^2 = (x+z)(x+z)$

STEP 3 : On filling the slot we get $(x+y+x)(x+2y+z)$

4.3 Factorization of the cubic equation

Solving cubic equations is a hectic task as they are long and consume time, but these sutras have made it simple for everyone.

Factorise $x^3 + 8x^2 + 19x + 12$

Solution : By Ganitasammuccaya, We have the sum of coefficient = 40 whose factors are 1,2,4, 5,8,20,40 and the last term is 12 factors of it are 1, 2,3,4,6,12

Now 1,3 and 4 are factors of it as their sum is equal to the coefficient of x^2

and product similar to the last term.

Now to confirm ab+bc+ca = (1*3) + (3*4)+(4*1) = 19 equal to coefficient of x.

Hence **$x^3+8x^2+19x+12 = (x+1)(x+3)(x+4)$ [2]**

5. Highest Common Factor

HCF means the highest common factor or it's also known as greatest common divisor. Finding the Highest Common factors between two equations by conventional method is tedious and time -consuming.

But whereas using the Vedic sutra Lopanasthapana (elimination and retention), we can easily calculate the HCF.

Example : Find HCF of x^3-$3x^2$-4x+12 and x^2-$7x^2$+16x-12 [1]

$$\left.\begin{array}{l} x^3+3x^2-4x+12 \\ -(x^3-7x^2+16x-12) \\ \hline 4)4x^2-20x+24 \\ \hline \quad x^2-5x+6 \end{array}\right\} \text{Subtraction} \qquad \left.\begin{array}{l} \quad x^3-7x^2+16x-12 \\ +\ (x^3-3x^2-4x+12) \\ \hline 2x)2x^3-10x^2+12x \\ \hline \quad x^2-5x+6 \end{array}\right\}$$

: (x2-5x+6) is HCF.

2) **$4y^4+11y^3+27y^2+17y+5$ and $3y^4+7y^3+18y^2+7y+5$[1]**

$$\left.\begin{array}{l} 12y^4+33y^3+81y+51y+15 \\ 12y^4+28y^2+72y^2+28y+20 \\ \hline 5y^3+9y^2+23y-5 \\ 5y^3+20y^2+45y+50 \\ \hline -11) \quad 11y^2-22y-55 \\ \hline \quad y^2+2y+5 \end{array}\right\} \quad \text{Subtraction}$$

$$\left.\begin{array}{l} 4y^4+11y^3+27y+17+5 \\ 3y^4+7y^3+18y^2+7y+5 \\ \hline x)\ y^4+4y^3+9y^2+10y \\ \hline 3y^3+4y^2+9y+10 \\ 10y^3+18y^2+46y-10 \\ \hline 11y)\ 11y^3+22y^2+55y \\ \hline y^2+2y+5 \end{array}\right\} \quad \text{Addition}$$

Therefore y^2+2y+5 is H.C.F.

6. Simple Equations

In this section, we are going to deal with different types of equations by using the Vedic Mathematics technique paravartya Yojayet (Transpose and apply) [1][2].

ISSN 2250-2769

1) Solving equations having one binomial factor on each side [7]:

$$ax+b = cx + d$$

$$x = \frac{d-b}{a-c}$$

Example : **2x +5 = x + 9**

6x + 5 = 2x + 7

$$x = \frac{2}{4} = 1/2$$

2) Two binomial Factors on each side [6]

(a+j) (a+k) = (a+l) (a+m)

$a^2 + ka + ja + jk = a^2 + am + 1a + 1m$

a (j + k) + jk - a (1+ m) = 1m

a (j + k) - a (1 + m) = 1m - jk

a(j + k - 1 -m) = lm - jk

$$\boldsymbol{a} = \frac{\mathbf{lm\text{-}jk}}{\mathbf{j + k - l - m}}$$

Example : (x+1) (x+2) = (x - 5) (x-4)

$$x = \frac{20 - 2}{3+9} = \frac{18}{12} = \frac{3}{2}$$

3) $$\frac{\mathbf{px + q}}{\mathbf{rx + s}} = \frac{\mathbf{u}}{\mathbf{v}}$$

v(px + q) = u (rx + s)

vpx + vq = urx + us

vpx - urx = us - vq

x (vp-ur) = us - vq

$$\mathbf{x} = \frac{\mathbf{us\text{-}vq}}{\mathbf{vp\text{-}ur}}$$

Example : **2x + 1/3x + 2 = 4/5**

x = 8-5/10 - 12 = 8/-2 = -3/2

4) $$\frac{\mathbf{m}}{\mathbf{y + p}} + \frac{\mathbf{n}}{\mathbf{y+q}} = \mathbf{0}$$

m (y+q) + n (y+p)/(y+p) (p+q) = 0

m (y+q) + n (y+p) = 0

y (m+n) + mq + np = 0

y (m + n) = - mq - np

$$\mathbf{y} = -\frac{\mathbf{mq - np}}{\mathbf{m + n}}$$

Example : **2/(x + 3) + 9/(x + 8) = 0**

by comparing

ISSN 2250-2769

$$x = -\frac{mq - np}{m + n}$$

$= -(16 - 27)/11 = 9/11$

7. Quadratic Equation

A quadratic equation can be expressed in the structure $px^2 + qx + r = 0$, where x is unknown and p q r are known terms where p =/ o

The Vedic method to simply quadratic equation :

1) ***Vilokanam*** means by obserbation.

2) ***Sunyam Samya samuccaya*** means when the samuccaya is the same and equals zero.

3) ***Anurupye sunyamayat,*** if one is in ratio, the other is zero.

7.1. By Vilokanam

Example : $\mathbf{\frac{x+2}{x+1} + \frac{x+1}{x+2} = \frac{37}{6}}$

In this problem by the above method, we are going to observe it as step 1

We keep that L.H.S is a aggregate of reciprocals, so we are splitting R.H.S into two fractions.

$$\frac{x+2}{x+1} + \frac{x+1}{x+2} = 6 + \frac{1}{6}$$

Now on equating $\frac{x+2}{x+1} = 6$ or $\frac{x+2}{x+1} = \frac{1}{6}$

$6x + 6 = x + 2$ or $6x + 12 = x + 1$

or $6x - x = 1 - 12$

$\mathbf{x = -4/5}$ $\mathbf{x = -11/5}$

7.2. By Sunyamsamuccaya

$$\frac{3a+4}{6a+7} = \frac{5a+6}{2a+3}$$

Here we get the value by adding the numerator term with the numerator and the denominator term with the denominator.

$N2 + N2 = 3a + 4 + 5a + 6 = 8a + 10$

$D2 + D2 = 6a + 7 + 2a + 3 = 8a + 10$

a = -5/4 [1] find the Value of a putting

$8a + 4a = 0$

8. Cubic Equation

We can solve the cubic equation by using sutra Paravarta and Sum Sutra "*Puran-apuranbhyam"* [1]

The steps of this method are given below

ISSN 2250-2769

Step 1 : Select the nearest cubic term i.e. (x+A)3 for the assigned cubic equation.

Step 2 : Subtract the selected term with the given equation.

Step 3 : Difference in step 2 will add both side in the given equation.

Step 4 : The equation gets in step 3 contains common terms on both side of the equation replace the common term with new variable.

Step 5 : The Values which satisfies the condition are taken as roof of the equation.

Example : $\mathbf{X^3 + 6x^2 + 11x + 6 = 0}$

1. The selected cubic equation is $(x + 2)^3$
2. $(x^3 + 6x^2 + 11x + 6) - (x^3 + 6x^2 + 12x + 8) = x + 2$
3. Add x+2 on both side of given equation
   $(x^3 + 6x^2 + 11x + 6) + (x + 2) = x+2$
   $(x+2)^3 = x+2$
4. Put $x+2 = y$
   $= y^3 = y$
   $y = 0, 1, -1$
   $y = x + 2$ than $x = -2, -1, -3$

Another method to solve cubic equations is given below.

Example : $\mathbf{y^3 + 12y^2 + 44y + 48}$

Here in the equation, the sum of the coefficient is 105, which has factors 1,3,5,7,15,21,35 and 105. Here the last term is 48, so elements are 1, 2, 3, 4, 6, 8, 12,16,24 and 48. From the equation, we can see that sum of roots is equal to 12 as $a + b + c = 12$ and product is equal to 48 $a*b*c = 48$

And $ab + bc + ca = 44$ so 2,4 and 6 are verifying all 3 condition so

(y+2) (y+4) and (y+6) are factors of it and $y = -2, -4, -6$ [1][7]

Conclusion : Vedic mathematics is an ancient technique, which has the power to simplify addition, subtraction, multiplication, squaring, cubing, divisibility, square and cube roots and complex numbers. Vedic sutras and sub-sutras correlated with all branches of Mathematics and make it easier to understand better. This paper discussed the Vedic sutra and sub- sutras related to Algebra and their applications for algebraic methods.

References :

1. B.K.T.Maharaj , "Vedic Mathematics or sixteen simple mathematical formula from Vedas" Motilal Banarsidas, Varanasi (India, 1965)

ISSN 2250-2769

2. R.K.Thakur , "Advanced Vedic Mathematics" Rupa Publications India (2019).
3. www.vedamu.org
4. www.vedicmaths.org
5. www.mathslearner.org
6. S. Devi, Application of Vedic Mathematics in Algebra, International research journal on advance science hub.
7. Dhanave M.N, Kangale M.A., " The implementation of Vedic Mathematics to Algebra and Geometry, Brahmdevdada Mane Institute of Technology, maharashtra.

[1]Assistant Professor,
Srinivasa Ramanujan Deptt. of Mathematics
Central University of Himachal Pradesh
Shahpur, Kangra (HP)

[2]Student
Central University of Himachal Pradesh
Shahpur, Kangra (HP)

ISSN 2250-2769

गांव का इतिहास

सिरमौर का ऐतिहासिक गांव : झकान्डो

बी.आर. ठाकुर

शोध सारांश

भारत गाँव में बसता है और गाँव भारत की विविध व विशिष्ट संस्कृति के परिचायक हैं। भारत की मूल संस्कृति की जड़ें सदैव ग्रामीण परिवेश में सिंचित होती रही इसलिए विदेशी आक्रान्ताओं की लाख कोशिशों के बावजूद भी हमारी संस्कृति फली-फूली और शाश्वत रही। हिमाचल प्रदेश के जिला सिरमौर के दक्षिणी-पूर्वी भाग में स्थित गाँव झकान्डों ठेठ हाटी-जौनसारी संस्कृति को दर्शाता है चूँकि यह जौनसार-बावर और गिरिपार सिरमौर के संगम स्थल मीनस पर स्थित हैं और सदियों से 'मौण' (देवता के झंडे तेल वीर जुलुस) जैसे प्रत्यक्ष वीरता संघर्ष का अगुवा रहा है। गाँव की अनूठी बसावट और विभिन्न समुदायों के मध्य सदियों से चली आ रही परस्पर सौहार्दपूर्ण सामंजस्यता शोध का विषय हैं। भौगोलिक विषमता और पृथकता के परिणाम स्वरूप यहाँ विशिष्ट सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आयाम स्थापित हुए। खान-पान, मेले-त्यौहार, वस्त्र-आभूषण, देव परम्परा, लोककलाएँ आदि का अवलोकन करने से इसकी ऐतिहासिकता स्थापित होती हैं।

संकेत शब्द : *गिरिपार, खून्द, मौण, बेड़ा, आल, शणयाठा, शैल, भौड़, बौऊड, ठारी, चौऊंरटा, कोईलू, खुमली, पांशी, टिम्बुर, भातियोज़, बूढ़ी दियाली, जाजड़ा, मितको, जैठोंग-कान्छोंग, भियुंरी, झाम्बे, लामण, सोला, पाथा, धौण ।*

हिमाचल प्रदेश के जिला सिरमौर का गिरिपार क्षेत्र अपनी विशिष्ट व समृद्ध हाटी लोक संस्कृति के लिए विख्यात हैं। गिरिपार क्षेत्र के पूर्व में स्थित है गाँव झकान्डों, जो सिरमौर, शिमला और उत्तराखंड के जौनसार-बावर के संगम स्थल पर स्थित होने के फलस्वरूप मिश्रित सामाजिक-सांस्कृतिक व धार्मिक पृष्ठभूमि का परिचायक है। इस गाँव के मौलिक निवासी झोकटियाल चार खून्दो (युद्ध करने वाला सगोत्रीय समूह) के कुल देवता महासू के संरक्षक और अगवाल होने के कारण मीनस के मौण के अग्रज रहे है। तत्कालीन लादी महल के चार प्रमुख खशों में शुमार झोकटियाल नाऐणे बिशु के संस्थापक रहे हैं। ठारी माता का भूमिगत तिकोना मंदिर और जलहू (जल देवता) देवता का मंदिर गिरिपार सिरमौर के केवल इसी गाँव में विद्यमान होना लेखन विषय को और रुचिकर बनाता है। यह गाँव जौनसारी और हाटी संस्कृति का भी केंद्र बिंदु रहा है। गौरखों के आक्रमण के समय इस गाँव को जलाकर राख कर दिया गया था। यहाँ पर समृद्ध लोक संस्कृति व अनूठी परम्पराएं सुव्यवस्थित व सामजस्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को सदियों से अपनाए हुए हैं। मूड़ा (मुरमुरा), शाकोली (पापड़), तेलपाकी (तेल में पकाई रोटी), गुड़ोली-बैड़ोली (गुड़ के मेशन से बनी रोटी), उलौउले (कई अनाजों को मिश्रित कर भाप में पकाई मेषण रोटी), खेंडा (गुड़ और आटे का बना हलवा), सिडकु (भाप में पकाई मोटी मेषण रोटी), खुबलू (उबले

ISSN 2250-2769

पानी में पकाई गोल मेषण रोटी), सुतौउले (हाटी चाउमीन), खीर-पटान्डे आदि मुख्य व्यंजन व पकवान हैं। बूढी दियाली, बिशु, हरयाल्टी, माघी, पान्ज्वी, खोड़ा, गूगाल आदि त्यौहार व पर्व है। झोकटियाल खुद को पान्शी पक्ष से मानते हैं और मित्रता और शत्रुता को बड़ी शिद्दत से निभाने का इतिहास रहा है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नामकरण : झकान्डो गाँव का नामकरण झोकटियाल खोश के नाम पर पड़ा है जो मौलिक रूप से उतराखंड के कुइंतन नामक स्थान से आए थे और ख़त के लोग इन्हें आज भी कुईन्तनिया कहते हैं। कालान्तर में झोकटियालों के तीन बेड़े (आल) बन गए और शीर्ष भाग में सरियाओली में सौरियाऊ, मध्य में मतियाण और दक्षिण सिरे में गियानेऊ आवासित हुए जिससे झकान्डो गाँव आबाद हुआ।

इतिहास : झकान्डो के झोकटीयालों का इतिहास वीरता और साहस का रहा हैं। पांशी खुंद से सम्बन्ध रखने वाले झोकटीयालों के आगमन और स्थायित्व प्राप्त करने को लेकर कई मौखिक विवरण प्रचलित हैं। आज भी जौनसार बावर के बाईला, शिकान्डो और कुफ्टी तीन ऐसे गाँव हैं जिनके साथ आज भी रोटी-बेटी को रिश्ता कायम हैं। जौनसार के कोईयो गाँव के दशौऊ के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी शत्रुता पोख के माध्यम से शिद्दत से निभाई जाती रही है। जिसमें कई बार काफी संख्या में लोग कटे मरे हैं और आज भी एक-दूसरे के यहाँ रोटी तक खाना वर्जित हैं। इस गाँव की ऐतिहासिकता मीनस के मौण, चार लादी खेलों का बिशु नैनिधार से भी जुडी हैं। इसके अतिरिक्त इस गाँव के खशों ने आताताई गुपाऊ को बुड़ेख लाणा से भगाकर कैरवाल खुंद की सहायता करके उपहार स्वरुप इसे प्राप्त किया जो आज भी झोकटीयालों के पास विद्यमान हैं जबकी राजस्व विभाग में यह श्री क्यारी मौजे में उल्लेखित है। आताताई जोएंटाण को खडकहाँ से भागकर पाबुच को बसाया। खड कहाँ यद्यपि रास्ते के औजौउ ख़त का भाग रहा लेकिन झोकटियालों के हस्तक्षेप से ही इसे पाबुचों को दान स्वरूप दिया गया और देवनल का लाणा औजौउ से उपहार स्वरूप झोकटियालों ने प्राप्त किया है। कांडो गाँव के आताताई दाणा को भागकर दियांडो के कमरऊ से बड़ा लाणी उपहार स्वरुप प्राप्त किया। जिसे बाद में धारवा के थोबौउ को भेंट स्वरुप दिया गया क्योंकि थोबौउ ने कान्डो के दाणा के खिलाफ सहयोग किया था जिसमें झोकटीयालों के १८ लोग और थोबौउ के १६ लोग मारे गए थे। इतना ही नहीं शिमला की चौपाल तहसील में गुम्मा के समीप के राऊत को जानग की कैद से रिहा करवाकर गुम्मा का लाणा भी उपहार स्वरूप प्राप्त किया था। जिसे बाद में इस लाणा को मीनस के मौण के लिए टिम्बुर वाली शीला के एवज में धमरौऊ-बिगरौऊ को दिया गया। इस बात के प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं कि उस शीला पर आज भी झोकटियालों का अधिकार हैं यद्यपि यह शीला शिमला जिले की सीमा में स्थित हैं। १८१४-१५ में गौरखों के आक्रमण के समय गौरखों द्वारा झकांडों के सम्पूर्ण गाँव को जलाकर राख कर दिया गया था इसके पश्चात गाँव वापिस एक स्थान पर आवासित न करके लोगों ने अपने मकान अलग-अलग स्थानों पर स्थापित किए हैं और गिरीपार सिरमौर में यह ही एक ऐसा गाँव है जिसमें २०० घर होने के वाबजूद आज १० उप-गाँव में विभक्त हैं। यहाँ खश, भाट, कोली, चनाल, ढाकी, डूम, डेटि और देवा अपनी अलग-अलग बस्तियों में

रहते हुई भी परस्पर सौहार्द और सांमजस्यता के साथ रहते हैं। चार लादी-झाकंडो के झोकटियाल, कोटि-बौंच के सिन्टोऊ, कीनू पनोग और हल्लांह के जौवाऊ-पौचटा और रास्त के औजौउ ने नैनिधार स्थित गौरखों के किले स्थल पर उत्पन शिवलिंग के कारण सयुंक्त मन्दिर स्थपित करके मैदान को चार भागों में विभाजित किया और सभी चार खुन्दों के स्थान निश्चित किए। हर वर्ष वैशाख की संक्रांति के दिन और दूसरे दिन चार खुन्दों की जातर इस स्थान पर आती थी और विशाल मेले का आयोजन आज भी किया जाता है हालांकि अब उस स्थान पर जातर केवल नैनीधर के महिसाण ही लाते हैं जो उन चार लद्याणों में सम्मिलित नहीं थे। इस गाँव की हाटी सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक पृष्ठभूमि जौनसार-बावर के समरूप है चूँकि इस गाँव का सदियों से जौनसार बावर के साथ जुड़ाव रहा है। पुरातात्विक साक्ष्य में भूमिगत तिकोना ठारी मंदिर महासू, कोलू, कोलाना, चारवीर व पीर आदि की शैल व धातुओं की मूर्तियाँ, घरों व मंदिरों में काष्ठ की नकाशी, माप-तोल के बट्टे, काष्ठ की मूर्तियाँ और देवचिन्ह, देव पालकी, देव छड़ी, घरों में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न औज़ार व हथियार जैसे डांगरा, तलवार, खुखरी, गुप्ती, मृदभांड आदि उपलब्ध है। कुल मिलकर इस गाँव में तीन बेड़े- सौरियाऊ (२५ घर) मातियाण (३५ घर) और ग्यानेऊ (२२ घर) हैं जिनका आपस में दाएचारा-भाईचारा हैं। इसके अलावा देवा (२३ घर), डेटि (७ घर), भाट (२६ घर) चाड (४ घर), कोली (४५ घर), चनाल (१० घर), डूम (७ घर), ढाकी (५ घर) है। यहाँ यह उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक है कि कोली, चनाल, ढाकी, भाट आदि भी अपनी-अपनी खैलों में बंटे हुए हैं। पंचायत रजिस्टर अनुसार गाँव की कुल जनसंख्या १६८० हैं। यहाँ के लोग पहाड़ी बोली 'हाटी' बोलते हैं जिसे 'हाटी बुलावण' कहते हैं। हाटी संस्कृति के परिचायक लोईया, सूथण, ढाटू पहने जाते हैं। कान में तुंगल व मुदडी, नाक में नाथ, गले में हंसुली, कलाई में धागुले व बाजू बंद, सिर पर गैरा आदि जेवरात पहने जाते हैं। स्थानीय व्यंजन में सिडकु, बेडोली, गुड़ोली, सुतोउले, पटाडे, खुबलू, खींडा आदि घी के साथ ही खाए जाते हैं। स्थानीय पेय सूर का प्रचलन था लेकिन अब निषेध हैं। ६०% जनसंख्या मांसाहारी हैं और हर घर में भातियोज के दिन बकरा काटा जाता है।

भौगोलिक परिवेश

झकान्डो गाँव हिमाचल प्रदेश के दक्षिण-पूर्वी जिला सिरमौर की तहसील शिलाई, विकास खंड शिलाई व उप-तहसील रोन्हाट में अवस्थित है। झकान्डो गाँव में नौ उप-गाँव सम्मिलित है– झकान्डो, भटोड़ी, कौऊटा, ठेलेणु, बन्दराह, गुन्दडा, देवनल, भग्नाडी, ककोली। झोकटीयाल ख़त में झकान्डो पंचायत के उपरोक्त नौ उप-गांव के अतिरिक्त दो पंचायतों – धारवा और द्राबिलके पावरी, हकाईना, टापरा, भापिल, शिरोई, शानाईल, द्राबिल, बागनल, नाउतु, कफोटी, धारवा, कांडो, बडालानी, तिलेणु आदि गाँव सम्मिलित रहे हैं। वर्तमान में गाँव की सीमा खडकहाँ, ठुम्बाडी, खाड़ी, नैनीधार, धारवा, द्राबिल आदि पंचायतों के साथ लगती हैं।

झकान्डो गाँव विषम भौगोलिक क्षेत्र में अवस्थित है। ख़त की सीमा रास्ते के ओजौऊ, श्री क्यारी ख़त के कैरवाल, बनोग ख़त के चन्दौऊ, शिमला जिले की चौपाल तहसील के धमरौऊ-बिगरौऊ

ISSN 2250-2769

और उत्तराखण्ड की तीरनौऊ ख़त के साथ लगती हैं। इसके दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में मीनस और दक्षिणी सीमा पर टोंस नदी बहती हैं। राजस्व विभाग के अनुसार इसका कुल क्षेत्रफल ७१५ वर्ग किलोमीटर है।

जलवायु ः झकान्डो गाँव ८०० मी. से १७०० मी. ऊँचाई के मध्य स्थित हैं इसलिए यहाँ शितोष्ण से सम-शितोष्ण जलवायु विद्यमान हैं। इसके ऊँचाई वाले भाग जैसे कुपरण, उपरली भगनाडी, रीछाड, घाले आदि में शीत ऋतु में बर्फ गिरती हैं और मार्च तक कड़ाके की ठण्ड का प्रकोप रहता हैं। मध्य भाग जैसे झकान्डो, कौउटा, ठेलेणु, बन्द्राह, भजावटी व शाल्डॉन में दिसम्बर से फरवरी के मध्य बर्फ तो गिरती हैं लेकिन सम-शितोष्ण जलवायु के कारण अधिक देर तक नहीं रुकती केवल छायाकृत भागों में ही कुछ दिनों तक रहती है। मध्य भाग और उपरी भाग में नवम्बर के पश्चात पाला पड़ता हैं। निम्न भाग में गर्म जलवायु पाई जाती है। अत्यधिक ठण्ड और निरंतर बर्फबारी के समय भी केवल हल्की फुहारें गिरती हैं जो चंद पलों में ही गायब हो जाती है। अधिकांश वर्षा केवल मानसून से ही प्राप्त होती है और अधिकांश खेतीबाड़ी केवल वर्षा पर ही निर्भर हैं हालंकि कुछ समतल भूमि पर कुहल का भी प्रयोग किया जाता है। मार्च अप्रैल में पश्चिमी विक्षोभ के समय होने वाली हल्की वर्षा को कुम्बातरे कहा जाता हैं जब एकाएक धूप और फिर एकाएक बारिश होती हैं।

जीव जंतु व वनस्पति

गाँव के बुजुर्ग श्री गुलाब सिंह कहते हैं कि जब वे छोटे होते थे तो उनके समय नजदीकी जंगल में रीछ, तेंदुआ, जंगली मुर्गा, तितर, चकौर, शाईल, गिद्ध, बाज़, कौवा, घोघथी, कोटलाड़, शटाई, घोरल, काकड़ व जंगली सुअर आदि की भरमार थी। एक बार उनकी नानी पर पानी भरते समय रीछ ने हमला किया था और उनका नाक तोड़ दिया था। पशुओं पर यदा-कदा तेंदुआ हमला करता था इसलिए पशुओं को जंगल में चराते वक्त चौकन्ना रहना पड़ता था। कई बार गांव के लोग आएड़ (सामूहिक शिकार) करने जाते थे किसी खूंखार जंगली जानवर का शिकार करने और शिकार के बाद सभी घरों में बराबर हिस्सा दिया जाता था। मारे गए मृग के सींग स्थानीय मंदिर में कील के साथ लगाए जाते थे और मृग की खाल उस व्यक्ति को दी जाती थी जो शिकार पर पहला वार करता था। शिकार किए गए जानवर या मृग को गाजे बाजे और लिम्बर के साथ सांझे प्रांगन में लाया जाता था। ककड़, घोल, रीछ, बाघ, शाईल आदि का शिकार बड़ी आम बात थी। लेकिन रीछ और बाघ का शिकार मीट के लिए नहीं किया जाता था। यह केवल पालतू पशु के सुरक्षा हेतु किया जाता था। पालतू पशुओं में घरेलू नस्ल की छोटे कद वाली गाय, बैल, भेड़-बकरियां आदि पाले जाते हैं। भैंस को पालने का प्रचलन काफी कम है इसका कारण है विषम भौगोलिक स्थिति और चारे की न्यून उपलब्धता। गाँव में ऊंचाई वाली भूमि पर देवदार, बान, मोएरू, चिलरों और बुराश के जंगल है। मध्य वाली भूमि पर खडिक, बिउल, भजोल, भंडीर, शिन्गुर, कूंईथ, फेगुडा, दूदला, कीमू और निम्न भूमि पर क्यालू, छानण, मालू, गुरियाल, शीशम, नौना, तिरमल, खुनैण आदि की अधिकता हैं। यहाँ पर देवदार के आरक्षित वन और सामन्य वन क्षेत्र भी उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त शामलात भूमि भी है जो चराके (चारागाह) के रूप में प्रयोग की जाती है।

ISSN 2250-2769

आवासीय स्वरूप

गाँव का आरम्भिक मूल स्थान वर्तमान स्थल से उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर ५०० मी. खंडहर के रूप में विद्यमान है। आरम्भ में सौरियाऊ द्वारा सोरियावली में झोकटीयालों को अपने समीप बसने की इजाजत नहीं दी थी और वे जंगल में रहते थे। झोकटीयाल परिवार के साथ एक हरिजन परिवार के सज्जन व्यक्ति जो शौण (भविष्यवाणी) लगता था ने आगाह किया था कि निकट भविष्य में भंयकर अकाल पड़ने वाला हैं इसलिए अनाज बचत रखें। गाँव के जानकार बताते हैं कि अकाल के समय झोकटीयाल का परिवार साधन सम्पन्न था और सौरियाऊ के पास खाने के लिए कुछ भी नहीं था परिणामस्वरूप अनाज के बदले झोकटीयाल परिवार को गाँव के समीप अपने दक्षिणी भाग में बसाया और रिश्तेदारी जोड़ी। कालांतर में झोकटीयाल परिवार दो हिस्सों में बाँट गया मतिया के नाम पर मत्याण और ज्ञानू के नाम पर ग्यानेऊ। गाँव की एक और अनूठी विशेषता यह भी रही हैं कि यहाँ रहने वाली विभिन्न जातियों के लोगों की बसावट अलग-अलग बस्तियों में रही हैं। उत्तरी छोर के शीर्ष पर देवा और शिरगुल का वास, इसके पश्चात सौरियाऊ का बेडा, मध्य में मत्याण का बेड़ा, इसके पश्चात् गियानेऊ का बेडा, तत्पश्चात बिन्याण भाट और दक्षिणतम भाग में कोली जाति और डूम जाति के लोग बसाए गए। पश्चिमी भाग में थोबौउ भोड़ और कोपटियाल, पूर्वी भाग में डैटे और चनाल को बसाया गया था। इस रणनीतिक बसावट के मध्य भाग में झोकटीयाल खूंद द्वारा स्वयं को स्थापित करना सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।

वर्तमान में आवासीय स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य आया है इसका कारण हैं भूमि चकबंदी का प्रदेश सरकार द्वारा लागू किया जाना जिसके परिणामस्वरूप शामलात भूमि का आबंटन किया गया और लोगों ने अपनी जमीन के साथ ही अपना घर बनाया और आज झोकटीयालों के तीनों बेड़े तीन-तीन, चार-चार मकानों के समूह में रहते हैं लेकिन अन्य समुदाय के लोग अभी भी ज्यादातर एक ही स्थान पर उप-गाँव के रूप में रहते हैं।

घर का आकार प्रकार

भौगोलिक बिषमताओं के परिणामस्वरुप जनजीवन कठिन हैं। बुजुर्गों ने टोंस नदी से ब्रिटिश काल में नदियों के रास्ते चलने वाली घाल की लकड़ी अपनी पीठ पर लाद कर चार से छः किलोमीटर खड़ी चढ़ाई चढ़ी और अपने मकान बनाएं। आवासीय घर लकड़ी और पत्थरों से बनाए जाते हैं भूतल,

आवासीय घर (काष्ठ व प्रस्तर कला)

ISSN 2250-2769

जिसे ओबरा कहते हैं, केवल पत्थर से निर्मित किया जाता है जिसमें केवल पशु रखे जाते हैं गोबर और चिकनी मिट्टी का गारा पुताई के लिए तथा गोबर का पतला लेप लिपाई के लिए प्रयोग किया जाता हैं। जिसे गारा-माटा लगाना कहते हैं। उपरी मंजिल, बौउड, केवल देवदार की लकड़ी से निर्मित की जाती हैं और छत ढलानदार होती हैं जिसे छापर कहते है। मकान के बाह्य भाग की लकड़ी को वानिश से रोगन किया जाता हैं ताकि बारिश और जलवायु के प्रभाव से सुरक्षित रखा जा सकें। से मध्य में मकान की ऊँचाई सबसे अधिक होती हैं जहाँ मधोए (छत के बीच का आधार) स्थापित होता है। लकड़ी के फट्टों को ढलान के अनुरूप लगाया जाता हैं जिसे स्लेट से ढका जाता हैं। पुराने मकानों के दरवाजे बहुत छोटे बनाए जाते थे और कोई खिड़की की व्यवस्था नहीं रखी जाती थी। रौशनी के व्यवस्था के लिए केवल छत पर तिकोनी सिनाली (छत का रौशनदान) छोड़ी जाती है जिसे रात के समय छत पर लगे स्लेट से ही ढकी जाती है। तीन या चार कमरों वाले मकान में भी केवल एक ही दरवाजा बनाया जाता है। गाँव के बुजुर्ग बताते है कि ऐसी व्यवस्था सुरक्षा की दृष्टि से और ठण्ड के प्रकोप से बचने के लिए की गई। सबसे अनूठी विशेषता मकानों का भूकंप रोधी होना हैं। पत्थर की दीवार में दो या तीन फुट के अंतराल पर दोहरे लम्बे लकड़ी के स्लीपर बिछाए जाते हैं जिन्हें परस्पर लकड़ी के जोड़ से ही जोड़ा जाता है ताकी भूकंप की स्थिति में पत्थर इधर-उधर न खिसक सकें। उपरी मंजिल की लकड़ी को भी आडू और करवे की मद्द से इस तरह जोड़ा जाता है कि भूकंप की स्थिति में लकड़ी के जोड़ न खिसक सके। सबसे बड़ी विशेषता रही है लोहे की कील का कतई प्रयोग न करना है। बहुत अधिक आवश्यकता होने पर भी केवल लकड़ी के कीलों का ही प्रयोग किया जाता है। निचले मंजिल के ओबरे में दरवाजे अलग-अलग होते है जबकि उपरी मंजिल में प्रवेश हेतु केवल एक ही दरवाजा प्रयोग किया जाता जबकि अंदर के दरवाजे एक ही क्षितिज में बने होते हैं और अंतिम कमरे में प्रविष्ट होने के लिए भी मुख्य दरवाजे से प्रवेश उपरांत अन्य कमरों से गुजरने के बाद ही पहुंचा जाता है। जानकारों का मानना है कि ऐसा केवल सयुंक्त परिवारों के मध्य प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से और सभी कमरों में स्वतंत्र आवागमन हो ताकि घर के बुजुर्ग परिवार के सभी सदस्यों पर नजर रख सके। लकड़ी के बने घर की उपरी मंजिल में रिहायश के साथ-साथ अनाज भण्डारण के लिए कुठारी और कोछू बनाये जाते हैं जिसमे सूखा अनाज जैसे मक्की, गेंहू, धान, कोदा, चोलाई, कावणे, शांवक आदि भंडारित किया जाता हैं और जरूरत के हिसाब से पिसाने के लिए निकाला जाता हैं। कई घरों में कमरे के कोनों में छोटी अलमारियां भी बनाई गई हैं जिसमें बर्तन, कृषि औजार और कपड़े रखे जाते हैं।

जल स्रोत

गाँव में पीने का पानी स्थानीय चश्मों और बावडियों से आज भी प्रयोग किया जाता है और प्रत्येक उप-गाँव का अपना अलग पानी का चश्मा या बावड़ी हैं। देव और पवित्र कार्यो में विशेष रूप से इनके पानी का उपयोग किया जाता है। गाँव का सबसे प्राचीन कुआं झकान्डो की ठारी मंदिर के समीप स्थित हैं और जानकार बताते हैं कि भूमिगत मंदिर के तल से इस कुँए तक जाने का भूमिगत मार्ग उपलब्ध था जिसे पूजा के लिए जल लाने के लिए प्रयोग किया जाता था या फिर शत्रुओं के आक्रमण के

समय गाँव से बाहर निकलने के लिए सुरक्षा मार्ग की तरह इस्तेमाल किया जाता था। इसके अतिरिक्त भटौडी के समीप भी एक कुआँ स्थित है जिससे आज भी मंदिर में पूजा के लिए इसमें जल का उपयोग किया जाता हैं। ठेलेणु के समीप भी एक बावड़ी विद्यमान है। कौउटा उप-गाँव के समीप भी एक बावड़ी आज भी ठंडा पानी इस्तेमाल हेतु विद्यमान हैं। देवनल, भागनाड़ी, गुन्दडाह आदि स्थानों पर भी बावड़ियाँ उपलब्ध हैं लेकिन अब रख-रखाव न होने की वजह से और पानी का स्तर कम होने से प्रयोग में नही हैं। बन्द्राह के समीप पौन्जौल में सबसे ठंडे पानी का चश्मा विद्यमान है जिसका पानी पूरे गाँव में विख्यात हैं और गर्मी में लोग दूर-दूर से, विशेषकर खेतों में काम करने वाले किसान, दिन में पानी भरने के लिए यहाँ आते हैं।

पूजा स्थल

गाँव के उत्तर-पश्चिमी भाग में जहाँ झोकटियालों की आरम्भिक थाती थी प्रमुख कुल देवता महासू का प्राचीन मंदिर स्थित था जिसे अब जीर्णोद्धार करके भव्य नवीन मंदिर निर्मित किया गया है। इसके साथ ही चार वीर की शिला मूर्ति जिन्हें महासू के पहरेदार माना जाता है अवस्थित है। इस मंदिर से २०० मी. ठीक दक्षिण में ठारी का तिकोना भूमिगत मंदिर हैं और इसके प्रवेश स्थल पर चौऊंरटा स्थित है जिसका जीर्णोद्धार हाल ही किया गया हैं। ठारी मंदिर के ठीक पश्चिम में ३०० मी. की दूरी पर कोईलू देव स्थल पर प्रस्तर मूर्ति एक प्राचीन देवदार पेड़ के नीचे विद्यमान है और किसी तरह का मंदिर निर्मित नहीं हैं। भटोड़ी उप-गाँव में शिरगुल और पीर देवता का मंदिर हैं। देवनल में कुलाणा देव मंदिर है और ऊपरी भगनाडी में शिरगुल का मंदिर हैं जिसे शिरगोल्टी कहा जाता हैं।

थाती मां ठारी का चौंऊरटा - झकान्डो

चौंतरा

चौंतरा की अवधारणा चौन्तारू से निकली है जिनका मुख्य कार्य सामाजिक व परम्परा से जुड़ा बड़ा निर्णय लेना होता था जिसका प्रभाव सम्पूर्ण क्षेत्र या कई खतों पर पड़ता था। आरम्भिक व्यवस्था में जौनसार बावर और गिरिपार सिरमौर में केवल चार चौन्तरू ही रहे हैं दो खश-कनैतों में से और दो भाट-ब्राहमणों में से- जौनसार बावर के धोईराओ के खोश और मुधाण के भाट और गिरिपार से टोरू भेला के अन्ज्वाल खोश और टटीयाणा के भाट। इसी धारणा पर गाँव की सांझी खुम्बिलयाँ आयोजित करने के लिए चौंतरे स्थापित किए गए। गाँव की सार्वजनिक खुम्बलियां और तीनों बेड़ों या सम्पूर्ण गाँव की बड़ी खुम्ब्लियों का आयोजन ठारी के प्रांगण, जिसे आन्यांटी कहते हैं, पर ही किया जाता है यद्यपि इस के समीप बने चौऊंरटे में भी सार्वजनिक बैठकें आयोजित की जाती है। इन बैठकों में प्रत्येक घर से एक व्यक्ति की

ISSN 2250-2769

उपस्थिति सुनिश्चित की जाती है। यदि मसला दो बेड़ों या दो गाँवों या दो खेतों या फिर दो खुन्दों के मध्य का हो या फिर दो पंचायतों के मध्य का हो तो उस समय भी खुम्बली ठारी के प्रांगण में ही की जाती हैं। ठारी के प्रांगण में खुम्ब्ली आयोजित इस लिए भी की जाती हैं ताकि देवी के शक्ति स्वरुप उचित न्याय वांचा जा सके और गलत तथ्य, दलील और कुतर्क देने से लोग परहेज करें। खुम्ब्ली के आरम्भ में ही इस बात को स्पष्ट किया जाता है कि अगर कोई झूठी या गलत मंशा से दलील देता हैं तो वे खुद ही दैवीय दण्ड का भागी होगा।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन

परिवार समाज की प्राथमिक इकाई रही है और यहाँ संयुक्त परिवार सदैव ही वांछित रहा। आज भी यहां २० सदस्यों से लेकर ५० सदस्यों वाले परिवार है। सयुंक्त परिवार में सबसे बड़े बुजुर्ग को ठगड़ा कहते हैं और परिवार के सभी निर्णय करता हैं। यहां चाचा, ताया, ताई, चाची आदि सम्बोधन का लोप हैं बल्कि बाबा/बोबा, माएं, आदि सम्बोधन ही प्रयोग किया जाता है। ममरे नाना-नानी और पैतृक नाना-नानी दोनों के लिए एक जैसा ही सम्बोधन प्रयोग किया जाता है। पुश्तैनी चल-अचल सम्पति में केवल परिवार के पुरुषों का ही हिस्सेदार माना जाता है और सम्पति के बंटवारे के समय न तो विवाहित लडकी को और न ही अविवाहित लड़की को हिस्सा दिया जाता है। सबसे बड़े भाई को जेठोंग (अतिरिक्त हिस्सा) व छोटे भाई को कंछोंग (अतिरिक्त हिस्सा) के रूप में सम्पति का अतिरिक्त भाग दिया जाता हैं। जन्म के समय सूतक तेरह दिन तक माना जाता है और उस घर में पुरुषों का प्रवेश वर्जित होता है। प्रसूता को दोनों वक्त खेंडा, काड़ा व घी दिया जाता है। तेरहवें दिन के बाद बासण छूने की प्रथा प्रचलित है। नामकरण के समय लग्न राशि के अनुसार अक्षर से नामकरण होता है। लड़के के जन्म पर दशरातों दिया जाता हैं जिसमें बकरा काट कर अपने आल में भोज दिया जाता है। मायके की और से सोइतो की रस्म निभाई जाती है। सामाजिक स्थिति में पुरुष की नातेदारी और रिश्तेदारी को अधिक महत्व दिया जाता हैं। एक पीढ़ी में सबसे बड़े पुत्र की बड़ी शादी देना प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है जिसमें सम्पूर्ण ग्रामवासियों को चुला-नियोग दी जाती हैं। बहुपति प्रथा आज भी देखी जा सकती हैं और लगभग हर जाति में व्याप्त रही हैं। आज भी कई घरों में बहुपति प्रथा के प्रमाण उपलब्ध हैं। मृत्यु के समय तेहरवीं का प्रचलन नहीं हैं केवल तीन, पांच या फिर सात दिनों में ही शोक खोल दिया जाता हैं। शोक के समय सम्पूर्ण बेड़ा बिना छोंक और हल्दी के भोजन खाते हैं। इस गाँव में भी आल या बेड़ा सामाजिक इकाई का आधार है और सगोत्रीय विवाह स्थापित नहीं किए जाते हैं। लेकिन मामा की बेटी के साथ विवाह करना बुरा नहीं माना जाता था और दादी और माँ अपनी मायके की भतीजियों से अपने बेटों के विवाह स्थापित करने में प्राथमिकता देते थे

हाटी व्यंजन-उल्लौउले (झकांडो)

हालांकि अब परिस्थितियाँ बदल चुकी है। मांघी, बिशु, हरियालटी, खोड़ा, साजो, बुढी दिवाली, गुगाल आदि प्रमुख त्यौहार व पर्व हैं। मांघी के त्यौहार पर हर घर में बकरा कटता है और बिशु में धार्मिक जातर निर्धारित स्थल पर फुल्निया लगते हुए पहुँचती हैं। बूढ़ी दियाली सामान्य दिवाली के ठीक एक माह बाद सम्पूर्ण गिरीपार में मनाई जाती है जिसका मुख्य आकर्षण हुल्डाच, गी, मुड़ा-शाकोली होती है और तीन से पांच दिन तक मनाई जाती है। लोक कहावतों को अनाणे कहा जाता हैं। जैसे– 'बुड़ा खाला जूण त कमाला कूण' (अगर बुजुर्ग ही अत्यधिक खाएगा तो कमाएगा कौन), खाल न कोरी खोनेअ अर टिम्बे ने कोरी चिनिय' (नाले खुदाई करके नहीं बनाए गए और चोटियां चिनवा कर नहीं बनाई गई)। ये लोक कहावतें वास्तविकता पर सटीक व्यंगात्मक टिप्पणी है। देव कांडी से देव पूजा वाद्य यंत्रों के साथ लय व ताल में भाट समुदाय के लोग करते हैं जिसके एवज में उन्हें देव्था फसल आने के समय दिया जाता है। महासू, शिरगुल, ठारी व पीर की पूजा पद्धति व वाद्य धुन अलग-अलग होती है। देव समिति में माली, ठानी, भण्डारी व पलगार सम्मिलित रहते हैं जिनका कार्य देवता के जागरण के समय पालकी, छड़ी, डोरिया व पाथा उठाना होता है। ये लोग देव कार्य के दिन व्रत रखते हैं और केवल एक ही वक्त भोजन करते हैं। घरेलु चिक्तिसा पद्धति में धन्तुरा, टीम्बुर, फैगुड़ा, नौना, हरड, हड्डा, चिन्ठये, आछू, पाजा, रीठा, कुकुआ व गोंदेली आदि का भरपूर प्रयोग किया जाता हैं। कीम जिसका उपयोग कभी सुर बनाने में किया जाता था घरेलु औषधीय पौधों से ही बनाई जाती थी। उपरोक्त औषधीय पौधों का प्रयोग जुकाम, बुखार, ज्वार, खांसी, चर्म रोग, उच्च रक्तचाप आदि में किया जाता है। गाँव के विभिन्न समुदाय के लोग लोक विद्या के धनी रहे हैं। वाद्य यंत्रों को बनाने और बजाने वाला समुदाय, कृषि उपकरणों को बनाने वाले, टोकरी, घीला, शेकडो, छोएलो, फानणे, दराती, दाच, डांगरो आदि का निर्माण करने वाली लोक विद्या ग्रामीण समाज का सबल पक्ष रहा है।

बूढी दियाली-होलड़ाच

यहां पर महिलाओं की स्थिति सामाजिक रूप से काफी स्वतंत्र रही है। वे अपने पसंद का वर चुनने के लिए वह स्वतंत्र हैं लेकिन सजातीय हों। रिश्ता पक्का करने के लिए वर के पिता वधू के घर जा कर एक रुपया भेंट करता है यदि लड़की उसे उठा लेती है तो रिश्ता स्वीकार्य समझा जाता हैं। स्त्री धन के रूप में विवाहिता के पास अपने थोड़े से जेवर-गहने होते हैं जो विवाह के समय उसे प्राप्त होते हैं। दहेज़ के नाम पर कांसी की थाली, गिलास, दराती और बछड़ी दान स्वरूप दी जाती थी यदपि आज कुछ स्वरूप बदल गया हैं। इस गाँव में बारात का प्रचलन लड़की की ओर से रहा हैं और विवाह के समय लड़की अपने साथ अपने गाँव के लोगों को साथ ले जाती है जिन्हें जाजडू कहते हैं। आज भी परस्पर सहमति से बिना

किसी न्यायालय के हस्तक्षेप से वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद करना सरल और मान्य हैं जिसमं दोनों पक्षों के मौजिज लोग लिखत प्रदान कर विच्छेद को मान्यता देते हैं। गाँव में सस्ता लोक न्याय होता हैं जिसमें दण्ड स्वरुप ६ रू., १२ रू., २४ रू. या फिर अधिकतम १०० रू. दोषी पर लगाए जाते हैं लेकिन यदि जघन्य अपराध या गांव का निर्णय न मानने की दशा में बकरा और पूरे गाँव का ठीला (सहभोज) भी लगाया जाता है।

हाटी गहने (झकांडो)

अर्थव्यवस्था

गाँव व लोगों के आर्थिक संसाधन सीमित हैं। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था कृषि आधारित है और पशुओं का पालन केवल घरेलु उपयोग के लिए होता है। घर का व्यय पूरा करने के लिए लगभग हर परिवार से एक व्यक्ति अभी भी मजदूरी करने शिमला, सोलन, जुब्बल चकराता, रोहड़ू और मंसूरी आदि स्थानों पर जाते हैं। ८८% लोगों का प्रमुख व्यवसाय केवल कृषि है और वो भी परम्परागत मानसून आधारित कृषि पर है। पशुपालन केवल अपनी जरूरत पूरी करने के लिए किया जाता हैं। वर्ष में अदरक, लाल मिर्च, तम्बाकू, काला जीरा और अब टमाटर, आलू, लहसुन, मटर जैसे नकदी फसलें उगाई जाती है। इस गाँव में कोदा, चोलाई, शावक, कावोने, चिनोई जैसी बारीक फसलें आज भी उगाई व उपयोग की जाती है। गाँव के हर परिवार को भूमि का स्वामित्व प्राप्त हैं। जिनके पास अपनी निजी भूमि नहीं थी उन्हें सरकार ने भूमिहीन योजना के तहत पाँच बीघा जमीन गाँव की शामलात भूमि से प्रदान की हैं। इसके अतिरिक्त गाँव की शामलात भूमि पर संयुक्त चरागाह भूमि पर सब का स्वामित्व माना जाता है। गाय, बकरी, भेड़, बैल, घोड़ा, खच्चर, भैंस आदि पशु केवल अपने उपयोग के लिए ही पालते हैं। कृषि के अतिरिक्त बुनकर, बढ़ू, मिस्त्री, लुहार, दर्जी, नाई, दस्तकार जैसे व्यवसाय का भी प्रचलन रहा है। यद्यपि इन व्यवसायों से ग्रामीण समाज में केवल जीवन निर्वाह हेतु आय प्राप्ति होती है। मक्की, गेहूं, कुल्थी, माश, भौट, लोबिया, राजमा, रागी, मसूर, चना, कोदा, चोलाई, शांवक, चेणए, कावणे और धान की पैदावार केवल अपने भरण पोषण तक सीमित है। नकदी फसलें जैसे– अदरक, सौंठ, लाल मिर्च, काला जीरा, लहसुन, टमाटर आदि पर ही गाँव का व्यपार व वाणिज्य आधारित है।

गाँव में माप तोल के साधन व प्रणाली विकसित थी जिनका आज भी प्रयोग किया जाता हैं जैसे–

सोला	- दो सोल्टे के बराबर
छ्टांग	- एक सौ ग्राम
आंगुल	- एक अंगुली, चार आंगुल

पाथा	- लगभग चार सोले के बराबर
सैर	- छह छटांग
बिल्लांत	- एक खुला हाथ
आडो	- चार पाथे
धौण	- चारपंसेरी
पंसेरी	- पाँच सैर

लोक कला एवं वास्तुकला

हारुल खूंदों की बहादुरी का व्याख्यान करने वाली लोकगाथाएं हैं। मीनस का मौण, झोकटियालों की हारुल, जोआऊ-थोबौउ की हारुल में इस गाँव के पांशी खूंद के वीर कार्यों का वर्णन मिलता हैं। दशौऊ के साथ बैर और पौख परम्परा का भी उल्लेख इन्हीं लोकगाथाओं में आता है। इस गाँव का चौरियालटू (चोरी करता दृश्य) लोक नाट्य सबसे अनोखा है जो न केवल सम्पूर्ण गिरिपार और सिरमौर में बल्कि पूरे प्रदेश में देखने को नहीं मिलता है। इसमें दो कलाकार अपने पूरे अर्ध नग्न शरीर पर तवे की जाली लगाकर कमर पर शैल के साथ उल्टा तवा और चिमटा बांधते हैं और घीले के अन्दर सोये पड़े बच्चों के कपडे उत्तार कर चौरी करते हैं। सभी लोग ढोल के थाप के साथ चौरियाल्टू गीत गाते हैं। गांगी-प्रेम रस गीत, लामण-विरह गीत, झूरी-व्यंगात्मक गीत, छोड़े-संदेश गीत, विरसू-वीर गाथा इस गाँव में अक्सर मेले, त्योहारों व विशेष अवसरों पर गाई जाती हैं। बूढ़ा सिंह, रासा, मुजरा, गी, गुगथी आदि प्रसिद्ध लोक नृत्य हैं। जलहू के कथा, दाणा के लोक कथा, सुबनी की कथा आदि लोकप्रिय है।

भूकंप रोधी ढलवां छत के आवासीय स्थल देवदार की लकड़ी और पत्थर से स्थानीय बढ़ई द्वारा निर्मित किए जाते हैं। अधिकतर मकान दो मंजिलें होते हैं और ओबरे में केवल पशुओं को रखा जाता हैं। मकान की लिपाई-पुताई गारे-मिट्टी, गोबर और काकेरू से की जाती हैं। मन्दिर, भवन के अतिरिक्त हल, श्माई, गाण, अटुआ, झाझों, पोणाए, शेकडो, घीला, शेकड़े, डाला, छोईलो, हान्डो, मूसल, धावनी, विभिन्न मूर्तियाँ आदि सब काष्ठ कला के उत्तम उदहारण हैं। छत के स्लेट, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, ओखल, खराने, शील, पौल आदि प्रस्तर कला के नमूने उपलब्ध हैं। विशुद्ध पहाडी शैली में महासू, शिरगुल, ठारी, कुलाना आदि के मंदिर गाँव में निर्मित हैं जिनमें से अधिकतर पैगोड़ा शैली में बने हैं। मंदिरों के प्रवेश द्वार पर उकेरे गए विभिन्न चित्र रामायण व विष्णु पुराण पर आधारित चित्र बनाए गए है। गाँव में ही बढ़ई, बाजगी, मिस्त्री, दरजी आदि कलाकारों की परांगत श्रेणियां हैं और वंशानुगत कला शिक्षण कार्य आगे चलता रहता हैं। यद्यपि गाँव में विशेषज्ञता प्राप्त चित्रकार नहीं है लेकिन बढ़ई लकड़ी के ऊपर चित्र बनाता हैं और गाँव की लड़कियां छीम्ब के रूप में जाली और गेरू से रेखा चित्र बनाती हैं। महासू, शिरगुल, कोईलू, कुलाना, ठारी, चारवीर, नारसिंह आदि की प्रस्तर, काष्ठ और प्रस्तर की मूर्तियाँ विद्यमान हैं जिनका निर्माण गुमनाम कलाकारों ने किया हैं। गाँव के सभी शौक़ीन पुरुष-महिलाएं, लडके-लड़कियाँ संगीत व नृत्य कला में प्रवीण होते हैं उन्हें किसी विशेष प्रशिक्षण के आवश्यकता नहीं होती है और न ही

कोई इसके लिए केंद्र स्थापित है यह तो पीढ़ी दर पीढ़ी प्राकृतिक व स्वाभाविक विरासत के रूप में चलता हैं। गाँव में घरेलु उपयोग हेतु घड़ा, घड़ी, डोल्ले, घड़े, डुले, सुराहे, सैर (घी रखने का छोटा बर्तन), बाटुआ (घी रखने का बड़ा बर्तन), हांडी (मिट्‌टी की छोटी घड़ी), दिवा (दीपक) आदि मिट्टी की वस्तुएं प्रयोग की जाती रही हैं जिनपर विभिन्न प्रकार की नक्काशी और चित्रकारी उपलब्ध हैं लेकिन इस गाँव में मिट्‌टी के बर्तन बनाने वाले कुम्भकार श्रेणी नहीं रहती हैं इसलिए पड़ोसी गाँव श्री क्यारी से लोग इन बर्तनों को खरीदते हैं।

निष्कर्ष

गाँव झकान्डो के विभिन्न पहलुओं का अवलोकन करने से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता हैं कि यहाँ इतिहास की दृष्टि से अभी कई और परते खुलना बाकी हैं। हाटी-जौंसारी संस्कृति का एकीकृत रूप यहाँ सदैव से विद्यमान रहा हैं और आज भी दोनों के मध्य रोटी-बेटी का सम्बन्ध कायम है। गाँव में आधुनिकता का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जैसे बहुपति प्रथा का कम होना और संयुक्त परिवार व्यस्था का लोप होना। परम्परागत फसलों की जगह आज नकदी फसलों को प्राथमिकता दिया जाना इस बात का परिचायक है कि आज गाँव भी वैश्विक परिवेश से जुड़ चुके हैं।

संदर्भ :

१. सिरमौर गज़ेटियर, १६०४, पंजाब सरकार के अधीन लाहौर में मुद्रित १६०७

२. सिरमौर गज़टियर, १६३४, काहन चन्द कपूर द्वारा संशोधित, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, अशोक विहार, नई दिल्ली

३. डॉ. रूप कुमार शर्मा, सिरमौर दर्पण, गायत्री प्रकाशन, जालन्धर, १६८६

४. राजस्व रिपोर्ट, १६३१

५ कंवर रंजौर सिंह, तारिख-ए-रियासत सिरमौर, हिमाचल कला व भाषा अकादमी, शिमला, १६१२

६. साक्षात्कार, श्री गुलाब सिंह, आयु ७५ वर्ष, गांव : बन्द्राह (झकान्डो), तिथि ३ अक्तूबर, २०२२

७. साक्षात्कार, श्री हीरासिंह नम्बरदार, आयु ५६ वर्ष, गांव : भागनाडी (झकान्डो), तिथि ३ अक्तूबर, २०२२

८. साक्षात्कार, श्री बीजा राम, आयु ६२ वर्ष, गांव : झकांडो, तिथि ३ अक्तूबर, २०२२

६. साक्षात्कार, श्री धनीराम बिणयाण, आयु ७८ वर्ष, गांव : भटौड़ी (झकान्डो), तिथि ३ अक्तूबर, २०२२,

सहायक आचार्य - इतिहास
डॉ. यशवंत सिंह परमार
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय नाहन,
सिरमौर (हि.प्र.)

ISSN 2250-2769

पुस्तक समीक्षा

डॉ॰ शिव भारद्वाज

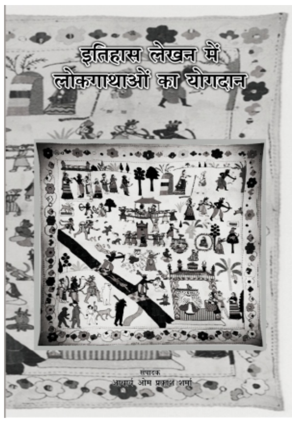

इतिहास लेखन में लोकगाथाओं का योगदान
संपादक : आचार्य ओम प्रकाश शर्मा
प्रकाशक : शोध संस्थान नेरी,
हमीरपुर (हि.प्र.
प्रथम संस्करण : २०२१
पृ. : ३५६, मूल्य : ५००/-

इतिहास लेखन में लोकगाथाओं का योगदान, पुस्तक आचार्य ओम प्रकाश शर्मा द्वारा संपादित तथा इतिहास शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.) द्वारा प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में लोकगाथाओं पर आधारित शोध पत्रों को अध्याय के रूप में स्थान दिया गया है। इतिहास लेखन में जिस प्रकार पुरातात्त्विक खण्डरों एवं परतों में दबे पड़े अवशेष अपने कालखण्ड का प्रमाण एवं चित्रण स्वतः प्रस्तुत करते है। उसी प्रकार लोकगाथाओं में लोक जीवन की अभिव्यक्ति झलकती है। लोकगाथाएं आंचलिक इतिहास लेखन की रक्त वाहिनियाँ हैं। विशेषतः क्षेत्रीय इतिहास की बिखरी कड़ियों को जोड़ने में महत्वपूर्ण सहायक होती है। इस पुस्तक की भाषा एवं लेखन शैली पाठक-ग्राह्य है। कुल ३५६ पृष्ठों की इस पुस्तक में ३५ लोकगाथाओं को संकलित किया गया है, जिन्हें प्रमुखतः चार भागों में निबद्ध किया गया है : (१) धार्मिक गाथाएँ (२) देवी-देवताओं से संबन्धित गाथाएँ (३) वीर कथात्मक गाथाएँ (४) प्रेमाख्यान गाथाएँ। श्रौत परम्परा की वाहक इन सभी लोकगाथाओं में इतिहास के कई अनछुए पहलू समक्ष आते हैं। समाज में घटित कोई भी घटना जब तक लोकमानस में मौखिक रहती है, वह गाथा बनी रहती है और यदि वह घटना लिपिबद्ध होती है, तो इतिहास बन जाती है। इस पुस्तक में शोधपरकीय विविध लोकगाथाओं में जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक पक्षों को सँजोया गया है, वहीं पर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की अनछुए घटनाओं का भी सजीव चित्रण हुआ है। डॉ. जगदीश भारद्वाज ने निरमंड जनपदीय लोहड़ी नाग भारथा के ऐतिहासिक पक्षों को समेटा है। देवाख्यानों में डॉ. दयानन्द गौतम की नीणू ग्राम की नारद गाथा, सुन्दर सिंह ठाकुर की सिरमौर जनपदीय हाब्बण क्षेत्र की टोकरू माता की हार (गाथा), आचार्य विद्यासागर नेगी की किन्नौर जनपदीय सावणीया गाथा, सिद्धेश्वरी यांबूर का बेरिंग्नाग इतिवृत आदि इतिहास के महत्वपूर्ण अवदानों को जोड़े हुए है। जबकि डॉ. ओमदत्त सरोच, छेरिंग दोरजे, डॉ. राजेन्द्र कुमार के लेखों में सृष्टि इतिहास के चरण समाहित है।

रामायण, महाभारत और पुराणों के आख्यान व चरित को अज्ञात रचनाकारों ने लोकगाथाओं में निबद्ध करके ग्राम्य जीवन में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित किया। डॉ. दायक राम का शोध-पत्र करसोग एवं

सराज जनपदीय शिवरात्रि महोत्सव की लोकगाथाएं तथा डॉ. रमेश कुमार का लेख कुल्लू लोकगाथों में रामायनीय, महाभारतीय एवं पौराणिक चरित आदि विशेष महत्व के हैं। समकालिक इतिहास से संबन्धित लोकगाथाओं में डॉ. शिव भारद्वाज की सिरमौर जनपद की प्रसिद्ध नेगी नती राम की हारूल शौर्य की अद्भुत गाथा है, जिसमें मुग़लों के सिरमौर रियासत पर हुए आक्रमण को उल्लेखित किया गया है। डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा द्वारा भारत-चीन युद्ध के गाथागीत में इतिहास तथा डॉ. राकेश शर्मा का शोध-पत्र वजीर रामसिंह पठानिया आधुनिक इतिहास लेखन की कड़ियों को जोड़ने में सहायक हैं। डॉ. चेतराम गर्ग तथा दीपक ठाकुर द्वारा प्रस्तुत लोकगाथाएँ समाज के मार्मिक पक्षों को समेटे हुए हैं।

कुल्लू राजवंश के इतिहास के पूरक रूप में डॉ. सूरत ठाकुर द्वारा लिखित लोकगाथा-कुलूत जनपदीय राजवंश की लोकगाथाओं में इतिहास निश्चय ही हिमाचल प्रदेश के इतिहास लेखन मील का पत्थर सिद्ध होगी। डॉ. संदीप कुमार का शोध-पत्र वीरांगना रानी रुक्मणी के चरित को रेखांकित करती है। सामाजिक अवदानों में समाज के विभिन्न पक्षों को डॉ. लाल चन्द ने मोहणा गाथा, डॉ. हेमराज चंदेल ने वरिणा गाथा तथा डॉ. भगचंद चौहान व डॉ. रोशनी ने माल गाथा में समाहित किया है। हिमाचल प्रदेश से परे रामशरण युयुत्सु की 'हरियाणवी वीरगाथाओं में इतिहास के प्रसंग' तथा डॉ. सुशील कुमार कोटनाला की 'गढ़वाल के माधोसिंह भण्डारी की लोकगाथा में इतिहास'; पुस्तक की प्रासंगिगता को सार्थकता प्रदान करती है। आंग्ल भाषा-भाषी लोगों के लिए पुस्तक के अन्त में तीन लोकगाथाएं संकलित है। लोकगाथाओं में भारत का गौरवशाली इतिहास विद्यमान है और यह पुस्तक लोकगाथाओं को इतिहास लेखन की स्रौत सामाग्री के रूप में उपस्थापित करती है। जिससे भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन को निश्चित ही एक नया आयाम मिलेगा। विविध पृष्ठभूमि की लोकगाथाओं को अनुवाद सहित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की प्रबलता के साथ संपादित करने पर आचार्य ओम प्रकाश निश्चय ही साधुवाद के पात्र है। यद्यपि संपादक महोदय ने हिमालय प्रान्त की पारंपरिक लोकगाथाओं में आंचलिक इतिहास को निबद्ध करने का सराहनीय कार्य किया है। किन्तु इस पुस्तक में सांस्कृतिक व देवाख्यान आधारित लोकगाथाओं का बाहुल्य दिखता है, जबकि समसामयिक इतिहास से संबन्धित केवल पाँच लोकगाथाएँ ही संकलित की गई है। साथ ही इन लोकगाथाओं में निबद्ध इतिहास को पुरातात्त्विक साक्ष्यों से पुष्ट करने की आवश्यकता है।

सहायक आचार्य इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय सोलन
(हि.प्र.)

ISSN 2250-2769

पुस्तक समीक्षा

निरुपमा कुमारी

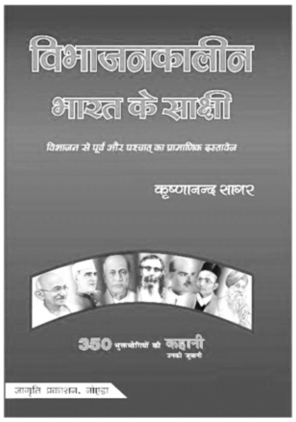

विभाजनकालीन भारत के साक्षी (भाग-१)
संपादक : कृष्णानन्द सागर
प्रकाशक : जागृति प्रकाशन, नोएडा
प्रथम संस्करण : २०२१
पृ. : ४६६, मूल्य : ७५०/-

'विभाजनकालीन भारत के साक्षी' शीर्षक से चार खंडो में एक नवीन पुस्तक है जिसको भारतीय दृष्टिकोण से लिखा गया है। इस पुस्तक में विभाजन से पूर्व और पश्चात के प्रामाणिक दस्तावेजों तथा साक्षात्कारों के आधार पर महत्वपूर्ण घटनाओं का सजीव लेखन किया गया है। इस पुस्तक का लेखन बाबा साहेब आप्टे स्मारक समिति के तत्कालीन उपाध्यक्ष कृष्णानंद सागर ने किया है। चूँकि इनका जन्म जिला- मिंटगुमरी के पाकपट्न, जो की आज के पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त का अंग है में हुआ था इसलिए उस पुस्तक में विषय निष्ठता व सुस्पष्टवादिता की स्पष्ट झलक देखने को मिल रही है। वे इसके पूर्व भी अनेक पुस्तकों का लेखन व संपादन कर चुके हैं। इसमें कुल ३५० भुक्तभोगियों की कहानी उनकी जुबानी वर्णित है। इस पुस्तक के प्रथम खंड के अनुभाग प्रथम में १६ अध्याय हैं जिनमें विभाजन संबंधी कुछ दुर्लभ तथ्यों पर विस्तार से चर्चा की गयी है वहीं अनुभाग द्वितीय में साक्षियों के साक्षात्कार पर चर्चा की गई है। लेखक ने इस खंड के अनुभाग द्वितीय में कुल ६६ व्यक्तियों के साक्षात्कार को संदर्भित करते हुए विभाजन विभीषिका में हिन्दुओं पर हुए भीषण अत्याचरों को सदृश्य करने का सफल प्रयास किया है।

सोलह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक के प्रथम अनुभाग में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की स्थापना क्यों और कैसे अंग्रेज सरकार द्वारा अपने लाभ के लिए की गई इसका वर्णन किया गया है। अध्याय दो में जलियांवाला नरसंहार के सत्य की समीक्षा की गई है। इस अध्याय में यह प्रमाणित किया गया है कि जलियांवाला नरसंहार अंग्रेजों द्वारा की गई सोची समझी साजिश थी जिसमें अंग्रेजों ने झूठी खबर फैलाई की जलियांवाला बाग में कांग्रेस की ओर से सभा रखी गई है। लेखक ने पाकिस्तान की ओर बढ़ते कांग्रेस और मुसलमान तथा विभाजन की ओर बढ़ते भारत का विवरण पुस्तक के तीसरे अध्याय में किया है जिसमें वर्णित है कि सिंध तथा पश्चिमी सीमा प्रांत बहूल-मुस्लिमों के कारण किस तरह से सन् १६२८ में कांग्रेस की मोतीलाल नेहरू कमेटी ने अलग प्रांत बनाने की सिफारिश की और इस प्रकार कांग्रेस स्वयं ही भावी पाकिस्तान की ओर चल पड़ी। अध्याय चार में लेखक ने हिंदूसभा और कांग्रेस पर चर्चा की है, जिसमें वर्णित है कि किस प्रकार विभाजन के उपरांत कांग्रेस का भी विभाजन दो वर्गों में हो गया। विभाजन के बारे में ढुल-मुल रुख रखने वाला वर्ग जिसमें महात्मा गांधी आदि थे तथा दूसरा विभाजन का कटु विरोधी वर्ग जिसमें सरदार पटेल आदि थे। हिंदू सभा ने पटेल वर्ग को समर्थन देना शुरू

ISSN 2250-2769

किया तथा कई पाकिस्तान विरोधी आंदोलन तथा सभाएं आरंभ कर दी। लेखक ने पुस्तक के पंचम अध्याय में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना तथा इसके संघर्षपूर्ण यात्रा को वर्णित किया है। जिसमें विभिन्न स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं के द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन किया गया है। जैसे गुरु गोळवलकर तथा बालासाहब देवरस का पंजाब दौरा के दौरान लाहौर में हिंदू नेताओं की बैठक, जम्मू बैठक आदि। पुस्तक के छठे अध्याय में यह वर्णन किया गया है की किस तरह से विभिन्न विद्रोह से ब्रिटिश सत्ता की कमर टूट गयी और अंग्रेज यह सोचने पर मजबूर हो गए कि उन्हें भारत छोड़ देना चाहिए। वहीं सातवें अध्याय में मुस्लिमों द्वारा किए गए दंगा राजनीति को वर्णित किया गया है जिसमें कोहाट (उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत) से लेकर गुलबर्ग (कर्नाटक) तक और दिल्ली से लेकर इलाहाबाद तक के दंगों में हुए क्रूरताओं का दृष्टान्त दिया गया है। आठवें अध्याय में मुस्लिम लीग द्वारा हिंदुओं को मुस्लिम बनाने तथा संपूर्ण भारत पर मुस्लिम राज्य स्थापित करने को लेकर मुस्लिम लीग द्वारा तैयार कार्यक्रम की छपी हुई व साइक्लोस्टाइट प्रतियों का हिंदी अनुवाद वर्णित किया गया है। नौवें अध्याय में मुस्लिम लीग की सीधी कार्रवाई (डायरेक्ट एक्शन) का वर्णन मिलता है। सीधी कार्रवाई का अर्थ था हिंदुओं का कत्लेआम, हिंदू महिलाओं का अपहरण, हिंदू संपत्ति की लूटपाट और अग्निकांड आदि। लेखक ने पुस्तक में अध्याय दस के रूप में अन्तरिम सरकार के मंत्रियों और सरकार बनने की क्रम में आ रही बाधाओं को वर्णित किया है। अध्याय ग्यारहवें में पाकिस्तान बनने की घोषणा के उपरांत मुस्लिम लीग द्वारा हिंदुओं पर विभिन्न जगहों पर किए जा रहे आक्रमणों के विषय को गंभीरतापूर्वक विश्लेषित किया गया है। वहीं अध्याय बारह में कर्त्तव्य पथ पर स्वयंसेवक के प्राणहुतियों का वर्णन मिलता है। इस अध्याय में तीन घटनाओं का वर्णन है जो की डॉ. कृष्ण कुमार महाजन की जुबानी है जिनमें दयाल सिंह कॉलेज रिलीफ कैंप, एसडी कॉलेज लाहौर के छात्र ललित किशोर सूद की आपबीती तथा तीसरी घटना दिल्ली की है। लेखक ने पुस्तक के तेरहवें अध्याय को दिल्ली पर पाकिस्तानी द्वारा कब्ज़ा करने की योजना के बारे में बतलाया गया है जिसमें १० सितंबर, १९४७ को संसद भवन को उड़ाकर सभी मंत्रियों की हत्या करके लाल किले पर पाकिस्तानी झंडा फहराने के मुस्लिमों की योजना की सूचना स्वयंसेवकों द्वारा सरदार पटेल को देने से संबंधित चर्चा है तथा सैनिकों की कार्रवाई और सरदार पटेल की सूझबूझ से इसे विफल किया गया इसका भी वर्णन मिलता है। अध्याय चौदह में पूर्वी-पाकिस्तान में हुए हिंदुओं पर अत्याचार तथा निष्क्रमण की बात की गई है वहीं इसका कारण नेहरू-लियाकत समझौता को माना गया है तथा नेहरू पर लोगों के अविश्वास और सरदार पटेल पर लोगों के भरोसे का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। अध्याय पंद्रह में एक प्रश्न पर चर्चा की गई है भारत विभाजन का दोषी कौन? जिसके ३ पक्षों पर बात की गई है अंग्रेज, मुस्लिम लीग व कांग्रेस। अंग्रेज और मुस्लिम तो विदेशी थे। अध्याय सोलह पूर्णरूपेण सरदर पटेल का संविधान सभा में दिए गए वक्तव्यों पर आधारित है जिसमें स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि भारत के विभाजन से वह बहुत दुखी थे।

इस पुस्तक के द्वितीय अनुभाग में साक्ष्यों के साक्षात्कारों का वर्णन किया गया है।

स्नातकोत्तर समाजकार्य विभाग
हि.प्र.के.वि. देहरा, कांगड़ा (हि.प्र.)

ISSN 2250-2769

ध्येय-पथ

गतिविधियाँ

ऋषि भारद्वाज

ठाकुर रामसिंह १०७वीं जयंती समारोह

ठाकुर रामसिंह १०७वीं राज्यस्तरीय जयंती समारोह का आयोजन हिमाचल कला भाषा संस्कृति अकादमी शिमला, ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर और वल्लभ पी.जी महाविद्यालय मंडी के संयुक्त तत्वाधान में कलियुगाब्द ५१२३, विक्रमी संवत् २०७८ तदनुसार १५ फरवरी, २०२२ को वल्लभ पी.जी. महाविद्यालय मंडी के सभागार में किया गया। इसमें **'मंडी जनपद का इतिहास और लोक संस्कृति'** विषय पर शोध पत्र वाचन और परिचर्चा भी की गई। कार्यक्रम के मुख्यातिथि के तौर पर हिमाचल प्रदेश सरकार में शिक्षा मंत्री श्री गोविंद सिंह ठाकुर उपस्थित रहे व कार्यक्रम की अध्यक्षता विवेकानंद कॉलेज ऑफ एजुकेशन लखनपुर (जम्मू) के अध्यक्ष डॉ सुदर्शन गुप्ता ने की। इस मौके पर शिक्षा मंत्री श्री गोविन्द सिंह ठाकुर ने कहा कि भारत के इतिहास को प्रमाणित तथ्य और सही परिप्रेक्ष्य में पुनः स्थापित करने में ठाकुर रामसिंह का योगदान अविस्मरणीय है। इतिहास शोध संस्थान नेरी ठाकुर रामसिंह की तपस्या का परिणाम है। ठाकुर रामसिंह ने राष्ट्रीय स्वयंसवेक संघ के प्रचारक के तौर पर इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान में भारतीय इतिहास लेखन की परम्परा को स्थापित करने में अमूल्य योगदान रहा है। देव समाज को समर्पित उनका जीवन सभी के लिए प्रेरणादायी है। उन्होंने युवाओं से महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा लेने और उनके दिखाए रास्ते पर चलकर राष्ट्र निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाने का आह्वान किया। इस अवसर पर शिक्षा मंत्री ने डॉ. चेतराम गर्ग द्वारा संपादित पुस्तक 'पावन पत्राचार' का विमोचन भी किया। उन्होंने मंडी की कला, संस्कृति और इतिहास को भाषा अकादमी के सहयोग से संजोने और बढ़ावा देने

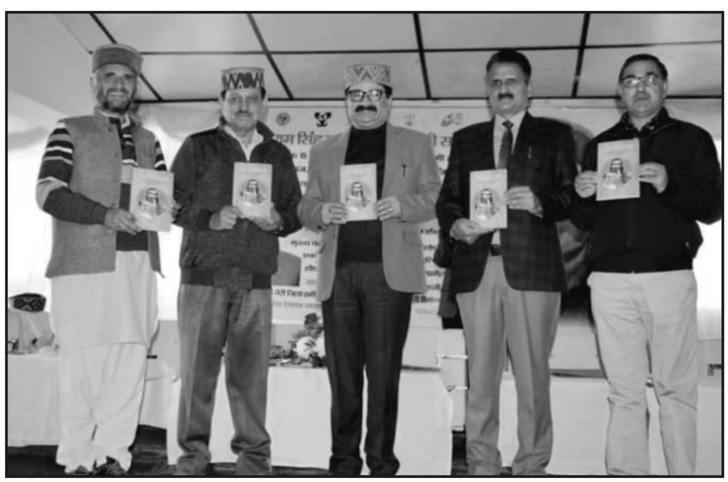

डॉ. चेतराम गर्ग द्वारा सम्पादित 'पावन पत्राचार' पुस्तक का विमोचन करते हुए (बाएं से दाएं) डॉ. चेतराम गर्ग, डॉ. सुदर्शन गुप्ता, माननीय शिक्षा मंत्री श्रीमान गोविन्द सिंह ठाकुर, डॉ. वाई.पी. शर्मा तथा आचार्य ओम प्रकाश शर्मा

के शानदार काम के लिए मंडी के दो लोक संस्कृति कर्मियों दक्षा शर्मा और पारुल को सम्मानित किया। विवेकानंद कॉलेज ऑफ एजुकेशन जम्मू के अध्यक्ष डॉ. सुदर्शन गुप्ता ने इतिहास को सही तरीके से सामने लाने में इस प्रकार के आयोजन और प्रयासों की आवश्यकता पर बल दिया। शोध संस्थान निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने ठाकुर रामसिंह के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि ठाकुर रामसिंह ने भारत के इतिहास को भारतीय विचार, दर्शन और दृष्टि के अनुरूप समझने लिखने का काम किया है। १९१५ में हमीरपुर जिले में जन्मे ठाकुर रामसिंह का संपूर्ण जीवन देश समाज को समर्पित रहा है। वे भारत के इतिहास को सत्यनिष्ठ तथ्यों और सही स्रोतों के साथ प्रस्तुत करने के लिए जीवनपर्यंत काम करते रहे। उनका संघर्ष सभी को राह दिखाने वाला है। कार्यक्रम में वल्लभ महाविद्यालय के प्राचार्य वाई.पी.शर्मा ने सभी उपस्थित मेहमानों का स्वागत किया। इतिहास शोध संस्थान नेरी से प्रकाशित त्रैमासिक शोध पत्रिका इतिहास दिवाकर के संपादक डॉ. राकेश कुमार शर्मा ने संस्थान की गतिविधियों का ब्यौरा प्रस्तुत किया। इस दौरान शोधकर्ताओं द्वारा मंडी जनपद के इतिहास, कला एवं संस्कृति पर ४० शोध पत्र पढ़े गए। कार्यक्रम में दक्षा शर्मा के निर्देशन में स्वतन्त्रता आन्दोलन में अहम भूमिका निभाने वाली रानी खैरागढ़ी के जीवन पर आधारित नृत्य नाटिका भी प्रस्तुत की गई।

ठाकुर रामसिह की जयंती के उपलक्ष्य पर शोध संस्थान नेरी में भी हवन यज्ञ और सभा का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता श्री प्यार चंद परमार, निदेशक मंडल सदस्य शोध संस्थान ने की। इस अवसर पर शोध संस्थान के महासचिव श्री भूमिदत्त शर्मा ने कहा कि ठाकुर रामसिंह ने कठिनाइयों से संघर्ष तक अपने जीवन का सर्वस्व त्याग कर राष्ट्र सेवा का मार्ग चुना था। श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह ने हमेशा भारत के गौरवमयी इतिहास को तथ्यात्मक रूप से लिखने को प्रेरित किया। इस अवसर पर एम. आर. वैरागी ने ठाकुर जी के जीवन पर आधारित कविता भी पढ़ी।

नव संवत्सर परंपरा उत्सव

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नववर्ष अभिनन्दन पर गेयटी थियेटर शिमला में मध्य में माननीय मुख्यमंत्री श्री जयराम ठाकुर, (बाएं) सचिव डॉ. राकेश कंवर (दाएं) डॉ. चेतराम गर्ग सामूहिक चित्र में

हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला के ऐतिहासिक गेयटी थिएटर में कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७९ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तदनुसार २ अप्रैल २०२२ को ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी और हिमाचल कला भाषा संस्कृति अकादमी शिमला के संयुक्त तत्वावधान में भारतीय नव

संवत्सर परंपरा उत्सव पर कार्यक्रम का आयोजन किया । समारोह की अध्यक्षता माननीय मुख्यमंत्री जयराम ठाकुर ने की। इस उपलक्ष्य पर रिज मैदान पर ११,१०० दीप जलाए गए और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के कार्यकर्त्ताओं की ओर से भव्य रंगोली बनाई गई। इस अवसर पर मुख्यमंत्री ने कहा कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का शुभ दिन भारतीय नववर्ष का प्रतीक है। पारंपरिक मान्यताओं के अनुसार चैत्र प्रतिपदा के दिन ब्रह्मांड की रचना हुई है। हिमाचल में चैत्र के महीने का अपना महत्व है और इस महीने लोक गायक घर-घर आकर लोगों को इस पावन अवसर पर बधाई देते हैं। इस अवसर पर शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग, डॉ. रवि आर्य, डॉ. कृष्ण मोहन पांडे और आचार्य ओम प्रकाश शर्मा ने चैत्र शुक्ल प्रतिपदा पर अपने विचार व्यक्त किए। हेमराज चंदेल और डॉ. लालचंद ने नव संवत्सर पारंपरिक गीत, चैती गीत और गोपाल शर्मा धामी ने नलावन और कदरैण गांव में पारम्पिरक रामायण गायन को प्रस्तुत किया। इस मौके पर श्री राकेश कंवर, सचिव हिमाचल कला भाषा संस्कृति अकादमी शिमला एवं डॉ. कर्म सिंह सहित अन्य लोग उपस्थित रहे।

डॉ. आंबेडकर जयंती पर आभासी व्याख्यान

आंबेडकर जयंती के उपलक्ष्य पर हिमाचल कला भाषा संस्कृति अकादमी शिमला की ओर से आभासी माध्यम से व्याख्यान आयोजित किया गया। जिसमें इतिहास शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग मुख्यवक्ता रहे। डॉ. चेतराम गर्ग ने कहा कि बींसवीं शताब्दी में भारत के उलझे हुए सामाजिक ताने-बाने को सुलझाने में डॉ. भीमराव आम्बेडकर का नाम अग्रिम नेताओं में हैं। भारतीय सांस्कृतिक एकीकरण में जो स्थान स्वामी विवेकानन्द का है और राजनीतिक एकात्मकता प्रदान करने में सरदार पटेल का है वही स्थान सामाजिक विषमता से मुक्ति के लिए किए गए प्रयासों में डॉ. भीमराव आम्बेडकर का है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. आम्बेडकर एक महान शिक्षाविद्, राष्ट्र चिन्तक, अर्थशास्त्री एवं प्रसिद्ध न्यायविद् थे। अति सामान्य अस्पृश्य माने जाने वाली महार जाति में पैदा हुए भीमराव आम्बेडकर ने सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक क्षेत्र में अपनी अतुलनीय कार्यक्षमता का लोहा मनवाया। अस्पृश्य समाज में नवचेतना जागरण के लिए उन्होंने अपने सारे अरमान हिन्दू समाज में एकात्मभाव जागृत करने में लगाए। स्वराज संघर्ष में लगे नेताओं को भी आम्बेडकर ने चेतावनी दी जब तक हम सामाजिक एकता निर्माण नहीं कर लेते तब तक हमारी स्वराज प्राप्ति की इच्छा बहुत मायने नहीं रखती है। इसलिए उन्होंने राजनीतिक स्वतन्त्रता से पहले सामाजिक समता को आवश्यक माना। आम्बेडकर ने अस्पृश्य समाज में उच्च वर्ग जैसे शिक्षित, संस्कार तथा साफ-सुथरा रहने के प्रति जागरूक किया। राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूक किया। आम्बेडकर के सामाजिक प्रयासों ने संवैधानिक प्रावधानों के साथ आज स्पृश्य-अस्पृश्य समस्या भारत में खत्म होने लगी है परन्तु उस समस्या के समाधान के लिए बनाए आरक्षण व्यवस्था सत्ता का हथियार बना हुआ है जिसका समाधान मात्र सामाजिक एकता ही हो सकता है।

श्रीमद्‌भागवत पुराण अनुशीलन मासिक सत्र का आयोजन

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी में कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७८

ISSN 2250-2769

तदनुसार १ मई, ५ जून व ३ जुलाई, २०२२ को श्रीमद्भागवत पुराण अनुशीलन मासिक सत्र का आयोजन किया गया। मुख्यवक्ता डॉ. ओमदत्त सरोच सेवानिवृत प्राचार्य संस्कृत महाविद्यालय चकमोह ने श्रीमद्भागवत पुराण के तीसरे स्कन्ध के छठे, सांतवें व अध्याय अध्याय की विस्तार से चर्चा करते हुए बताया कि महाभारत युद्ध के उपरान्त महात्मा विदुर ने सृष्टि उत्पति एवं अन्य विषयों से सम्बन्धित शंकाओं के निवारण के लिए महर्षि मैत्रेय से हरिद्वार में संवाद किया। महर्षि मैत्रेय ने विदुर को सृष्टि उत्पति क्रम में विस्तारपूर्वक उत्तर देते हुए कहा कि समय तत्त्व का पंचतत्त्वों से मिलन होने से २३ तत्त्वों का समूह प्रकट हुआ। २३ तत्त्वों से उत्पन्न भगवान के विराट स्वरूप में चैतन्य रूप आत्मा के एकरूप, दशरूप तथा तीनरूपों का वर्णन किया। ३ जुलाई, २०२२ को गोष्ठी की अध्यक्षता जगवीर सिंह चंदेल, प्रवक्ता हिन्दी, वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय मटाहणी, हमीरपुर ने की। उन्होंने कहा कि सृष्टि उत्पति क्रम को मात्र धार्मिक पक्ष न मानते हुए प्राकृतिक दृष्टि में तथा वैज्ञानिक दृष्टि से भी समझना चाहिए। गोष्ठी में डॉ. चेतराम गर्ग, निदेशक शोध संस्थान नेरी, प्यार चन्द परमार, डॉ. अंकुश शर्मा, नरेश मलोटिया, अनिल शर्मा, राकेश शर्मा एवं वीरेन्द्र शर्मा उपस्थित रहे।

गोष्ठी में उपस्थित विद्वानजन

वार्षिक सुंदरकांड पाठ एवं हवन यज्ञ

इतिहास शोध संस्थान नेरी में कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार १४ मई, २०२२ को वार्षिक सुंदरकांड का पाठ एवं हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत एम.आर. वैरागी द्वारा सुंदरकांड पर लिखित कविता से हुई। कार्यक्रम में सुंदरकांड का पाठ किया गया तथा सुंदरकांड की महिमा का वर्णन किया गया कि किस प्रकार शोक ग्रस्त श्रीराम व माता जानकी के हृदय में हनुमान जी ने हर्ष उत्पन्न किया और लंका को जीतने हेतु आगे का मार्ग प्रशस्त किया। तब से हनुमान जी का नाम सुंदर पड़ गया।

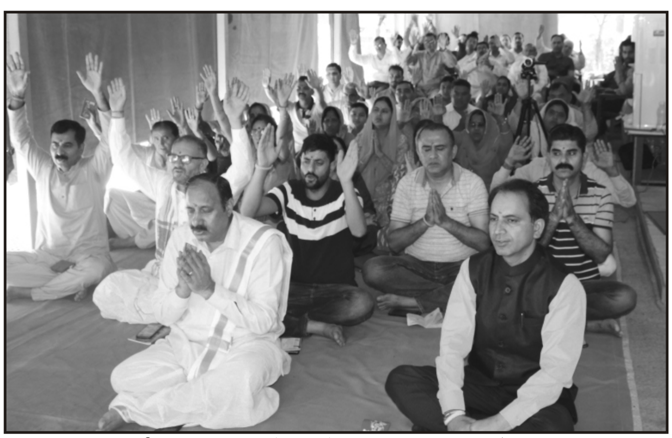

वार्षिक मानसपाठ के आयोजन पर उपस्थित श्रौतागण

ISSN 2250-2769

डॉ. शशि शर्मा सहायक आचार्य संस्कृत द्वारा सुंदरकांड का पाठ किया गया। दिल्ली के प्रतिष्ठित व्यवसायी श्रीमान प्रकाश चंद ने विशेष रूप से हवन यज्ञ में अपनी पूर्णाहुति दी। शोध संस्थान परिवार के लगभग ६० सदस्यों ने सुंदरकांड पाठ का श्रवण किया एवं हवन यज्ञ में आहुति दी। संस्थान निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने कहा कि ऐसे धार्मिक अनुष्ठानों से एक नई ऊर्जा का संचार होता है जो हमें अपने कार्य में सबल प्रदान करता है। उन्होंने बताया कि शोध संस्थान में सुंदरकांड पाठ का मासिक आयोजन होता है जिसका प्रारम्भ प्रो. एम.आर. शर्मा, भूमिदत्त शर्मा तथा प्यार चन्द परमार जी ने की। प्रो. एम.आर. शर्मा का एक निश्चित संकल्प था कि यह मासिक पाठ नियमित करना है। इसके साथ ही वार्षिक हवन यज्ञ का भी आयोजन भी इस टोली ने निश्चित किया।

साधारण सभा बैठक

शोध संस्थान की वार्षिक साधारण सभा बैठक का आयोजन कलियुगाब्द ५१२४, विक्रम संवत् २०७९ (१४ मई, २०२२) को ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी में किया गया। यह बैठक शोध संस्थान के निदेशक डॉ. सुदर्शन गुप्ता की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। बैठक संचालन शोध संस्थान संयुक्त-सचिव डॉ. विकास शर्मा ने किया। वैचारिक पक्ष का वृत शोध संस्थान के वैचारिक पक्ष प्रमुख डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने रखा। वैचारिक पक्ष सह प्रमुख डॉ. भाग चन्द चौहान ने नववर्ष पर आयोजित कार्यक्रम की जानकारी दी और देश के मूर्धन्य विद्वानों की सहभागिता को रेखांकित किया। शोध संस्थान के महासचिव भूमिदत्त शर्मा ने गत् वर्ष साधारण सभा बैठक की कार्यवाही को पढ़ा तथा २०२१-२०२२ में सम्पन्न हुए कार्यक्रमों की जानकारी सबके समक्ष रखी। विभागशः कार्यवृत प्रतिवेदन का पक्ष शोध संस्थान संयुक्त- सचिव डॉ. विकास शर्मा ने प्रस्तुत किया। आर्थिक पक्ष का वृत रखते हुए कोषाध्यक्ष देश राज शर्मा ने गत् वित्त वर्ष का लेखा-जोखा व २०२१-२०२२ के संस्थान का आय-व्यय ब्यौरा प्रस्तुत किया। डॉ. मोती राम शर्मा ने पुस्तकालय वृत, डॉ. राकेश कुमार शर्मा ने इतिहास दिवाकर, प्रचार-प्रसार का वृत ऋषि कुमार भारद्वाज व संगठनात्मक वृत शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग प्रस्तुत किया।

शोध संस्थान नेरी में आयोजित साधारण सभा बैठक में महासचिव श्री भूमिदत्त शर्मा जी गत् वर्ष हुए कार्यों का प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए

निदेशक मण्डल बैठक

शोध संस्थान नेरी की निदेशक मण्डल की बैठक कलियुगाब्द ५१२४, विक्रम संवत् २०७९ (१५ मई, २०२२) को ठाकुर

रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी में वैचारिक पक्ष प्रमुख डॉ. ओम प्रकाश शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस बैठक का संचालन शोध संस्थान संयुक्त सचिव डॉ. विकास शर्मा ने किया तथा कार्यालय का विवरण प्रस्तुत करते हुए भावी आवश्यकताओं की और ध्यान आकर्षित किया। शोध संस्थान महासचिव भूमिदत्त शर्मा ने गत् वित वर्ष निदेशक मण्डल बैठक की कार्यवाही को सबके समक्ष रखा तथा निर्माण कार्य के वृत को प्रस्तुत किया जिसपर विस्तार से चर्चा हुई। आर्थिक पक्ष का वृत कोषाध्यक्ष देशराज शर्मा ने व संगठनात्मक वृत शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने प्रस्तुत किया। अध्यक्षीय संदेश वैचारिक पक्ष प्रमुख डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने दिया। निदेशक श्री नरेन्द्र कुमार नन्दा ने बैठक में सभी सदस्यों का इस बैठक में विविध विषयों पर चर्चा एवं निर्णय करने के लिए धन्यवाद किया।

ठाकुर रामसिंह व्याख्यानमाला

'ठाकुर रामसिंह व्याख्यानमाला' के अंतर्गत वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप की जयन्ती के उपलक्ष्य पर कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार ३ जून, २०२२ को ऑनलाइन व्याख्यान आयोजित किया गया। जिसमें प्रो. नारायण सिंह राव, अधिष्ठाता सामाजिक विज्ञान स्कूल एवं विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय सप्तसिंधु परिसर देहरा मुख्यवक्ता रहे। प्रो. राव ने कहा कि महाराणा प्रताप न मुगलों से हारे थे और न ही उन्होंने अधीनता स्वीकार की। महाराणा प्रताप एक महान योद्धा, कुशल प्रशासक, न्यायप्रिय शासक, महान संगठनकर्ता, महान योजनाकार व दूरदृष्टा थे। उन्होंने कहा कि महाराणा प्रताप ने अपने जीवन में अपने जीवन मूल्यों से कभी समझौता नहीं किया। उन्हें मेवाड़ की समस्त जनता व भील जनजाति के लोगों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने सीमित साधनों के होते हुए भी कभी परिस्थितियों से समझौता नहीं किया। व्याख्यानमाला की अध्यक्षता प्रोफेसर धर्मचंद चौबे, आचार्य एवं विभागाध्यक्ष पूर्वी एशिया एवं वृहत्तर भारत अध्ययन कार्यक्रम इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र नई दिल्ली ने की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय संदेश में कहा कि हमें महाराणा प्रताप के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए। उन्होंने कहा कि महाराणा प्रताप केवल भारत ही नहीं अपितु विश्व के एक महान योद्धा थे। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि डॉ. चेतराम गर्ग निदेशक, इतिहास शोध संस्थान नेरी ने कहा कि हमें ऐसे महापुरुषों के जीवन वृत्त को समाज के बीच में ले जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि यह व्याख्यान चिंतकों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों के लिए अति महत्वपूर्ण रहा। समाज को जागृत करने के लिए ऐसे विषयों पर कार्यक्रमों का आयोजन अवश्य करना चाहिए। कार्यक्रम का संचालन डॉ. राकेश कुमार शर्मा संपादक, इतिहास दिवाकर द्वारा किया गया। उन्होंने आवासीय माध्यम से जुड़े सभी विद्वतजनों का स्वागत व धन्यवाद ज्ञापित किया। व्याख्यानमाला में केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश से प्रो भागचंद चौहान, डॉ.राघवेंद्र यादव, शोधार्थी ऋषि भारद्वाज, लोकेश कुमार, संस्कृत महाविद्यालय डोहगी बंगाणा के आचार्य डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डे सहित विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोधार्थी व इतिहास विभाग नेताजी सुभाष चंद्र बोस स्मारक राजकीय महाविद्यालय हमीरपुर के विद्यार्थी उपस्थित रहे।

हिंदू साम्राज्य दिवस के उपलक्ष्य पर चर्चा

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी में कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६

ISSN 2250-2769

तदनुसार १२ जून, २०२२ को हिंदू साम्राज्य दिवस के उपलक्ष्य पर निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने छत्रपति शिवाजी भोसले के विषय में विस्तृत चर्चा की। निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने बताया कि छत्रपति शिवाजी भोसले १६३० से १६८० तक भारत के एक महान राजा और राजनीतिकार थे। उन्होंने १६७४ में पश्चिमी भारत में मराठा साम्राज्य की नींव रखी। इसके लिए उन्होंने मुगल साम्राज्य के शासक औरंगजेब से संघर्ष किया। १६७४ में उनका राज्याभिषेक हुआ और छत्रपति की उपाधि प्राप्त करने के साथ ही हिन्दवी साम्राज्य की नींव रखी। यह ऐसा समय था जब हिन्दू जनमानस का मनोबल गिर चुका था। उनके पास मुगलों का प्रतिकार करने का कोई जोश नहीं था ऐसे में शिवाजी महाराज का जन्म हुआ। जिन्होंने अपने संघर्ष से न केवल हिन्दू समाज के मनोबल को जगाया अपितु उनके दिलों में उम्मीद की अलख जगाई। शिवाजी महाराज का जीवन आज भी वर्तमान परिस्थिति में लाखों लोगों के लिए प्रेरणा है और आगे भी विश्व में प्रेरणा स्त्रोत रहेगा। डॉ. चेतराम गर्ग ने बताया कि हमें छत्रपति शिवाजी जैसे महान राजा और योद्धा के जीवन से सीख लेनी चाहिए और प्रबंधन एवं जीवन कौशल सीखने चाहिए।

'गांव के इतिहास' विषय पर दो दिवसीय कार्यशाला

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी में 'गांव के इतिहास' विषय पर दो दिवसीय कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार १८-१६ जून, २०२२ कार्यशाला सम्पन्न हुई। जिसमें गांव के इतिहास लेखन पर विस्तार से चर्चा हुई। कार्यशाला की अध्यक्षता करते हुए शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने कहा कि शोध संस्थान द्वारा एक परियोजना के अन्तर्गत गांव के इतिहास पर व्यापक कार्य किया जा रहा है और प्रदेश के बारह जिलों के बारह गांव के सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, धार्मिक, लोकसाहित्य, अर्थव्यवस्था, वास्तुकला व ऐतिहासिकता पर विशेष कार्य किया जाएगा। उन्होंने आह्वान किया कि हम गांव का इतिहास लेखन स्वप्रेरणा व दायित्व से परिपूर्ण करें। डॉ. चेतराम गर्ग ने कहा कि यह किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत कार्य नहीं बल्कि समस्त समाज का कार्य है। शोध संस्थान नेरी समाज के सरोकार के लिए हमेशा तत्पर है और इसके लिए समय-समय पर शोध कार्य जारी रहेंगे।

दो दिवसीय कार्यशाला में उपस्थित विद्वान-जन

वैचारिक पक्ष निदेशक प्रो. ओम प्रकाश शर्मा ने कहा कि भारत का इतिहास और संस्कृति का सही अवलोकन गांव से किया जा सकता है क्योंकि

ISSN 2250-2769

आज भी गांव में पुरातन परम्पराएं व संस्कृति जीवन्त हैं। उन्होंने कहा कि गांव के इतिहास को समाज के सामने लाना हम सभी बुद्धिजीवियों का कर्तव्य है ताकि उस गांव के इतिहास की वास्तविकता को जाना जा सके। डॉ. सूरत ठाकुर अध्यक्ष, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना हिमाचल प्रान्त ने कहा कि हमें यह कार्य मिशन की तरह पूर्ण करना है जिसके लिए हम निष्पक्षता के साथ तत्पर रहें। कार्यशाला में डॉ. शिव भारद्वाज सोलन के जोणाजी गांव, जिला कुल्लू के नग्गर गांव पर डॉ. सूरत ठाकुर व विजय सिंह नग्गर, जिला हमीरपुर के धनेटा गांव पर डॉ. राकेश कुमार शर्मा, किन्नौर के रीबा गांव पर प्रो. रोशनी देवी, जिला बिलासपुर के पंजगाई गांव पर प्रो. दामोदर गौतम, कांगड़ा के नेरटी गांव पर डॉ. विवेक शर्मा व लकी शर्मा, ऊना के डोहगी गांव पर डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय व तिलक राज, मण्डी के चरख्ड़ी गांव पर महेन्द्र सिंह, सिरमौर के झोकाड़ों गांव पर प्रो. बी.आर. ठाकुर, शिमला के बटेबड़ी गांव पर प्रो. ओम प्रकाश शर्मा, लाहौल-स्पिति के गांव गोंदला पर डॉ. राजेश्वर ठाकुर व डॉ. हीरा लाल ठाकुर व चम्बा के सहली गांव पर राजेन्द्र शर्मा लेखन करेंगे। कार्यशाला संयोजन डॉ. अंकुश भारद्वाज ने कार्यशाला प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। मंच संचालन डॉ. शिव भारद्वाज व धन्यवाद प्रस्ताव डॉ. राकेश कुमार शर्मा ने किया।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान का शोध संस्थान में आगमन

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान ने कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार २२ जून, २०२२ को ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर में शोध संस्थान परिसर, पुस्तकालय, अभिलेखगार, ठाकुर रामसिंह संग्रहालय, सभागार व नवनिर्मित भवन का अवलोकन किया व आगामी निर्माण सम्बन्धी परियोजनाओं की जानकारी प्राप्त की। उन्होंने संस्थान के पदाधिकारियों के साथ बैठक की। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा कि ठाकुर रामसिंह शोध संस्थान सभ्यताओं के अध्ययन

माननीय केन्द्रीय शिक्षा और कौशल विकास मंत्री श्रीमान धर्मेन्द्र प्रधान के ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी में शोध संस्थान के विद्वानों व कार्यकर्त्ताओं के साथ छायाचित्र

ISSN 2250-2769

का केन्द्र के रूप में विकसित हो रहा है। उन्होंने शोध संस्थान से प्रकाशन पर संतोष व्यक्त करते हुए कहा कि इस कार्य को निरन्तर आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। श्री धर्मेन्द्र प्रधान ने शोध संस्थान द्वारा गांव के इतिहास लेखन पर किए जा रहे शोध कार्य पर प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि हिमालय क्षेत्र में इतिहास एवं संस्कृति की समृद्ध परम्परा है। उन्होंने कहा कि हिमालय क्षेत्र में लोकगाथाओं में इतिहास की समृद्ध परम्परा व व्यापक पुरातात्विक स्रोत हैं जो भविष्य में इतिहास को एक नई दिशा प्रदान कर सकते हैं, जिनका अध्ययन अति आवश्यक है। शोध संस्थान नेरी के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने संस्थान की विस्तार से जानकारी देते हुए यहां प्रकाशित पावन पत्राचार, इतिहास लेखन में लोकगाथाओं का योगदान, स्वराज संघर्ष में हिमाचल के नेपथ्य-नायक पुस्तकें भेंट की। इस मौके पर डॉ. ओम उपाध्याय निदेशक, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् व उच्च शिक्षा, मंत्रालय भारत सरकार के उप-सचिव वी.के. सिंह विशेष रूप से उपस्थित रहे। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री का संस्थान में पहुंचने पर संस्थान के महासचिव भूमिदत शर्मा, सह-सचिव डॉ. विकास शर्मा, कोषाध्यक्ष देशराज शर्मा, इतिहास दिवाकर संपादक डॉ. राकेश कुमार शर्मा व व्यवस्थापक प्यार चन्द परमार ने स्वागत किया। इस अवसर पर नरेन्द्र कुमार नन्दा, डॉ. सोमदेव शर्मा, डॉ. कंवर चन्द्रदीप, राजेश शर्मा, डॉ. जोगेन्द्र पाल शर्मा, डॉ. मनोज डोगरा, जगवीर चंदेल, कौशल विकास निगम के प्रदेश समन्वयक नवीन शर्मा, कामगार कल्याण बोर्ड के अध्यक्ष डॉ. राकेश बबली भी उपस्थित रहे।

ऋषि चिन्तन परम्परा व्याख्यानमाला

ऋषि चिन्तन परम्परा व्याख्यानमाला के अंतर्गत कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७९ तदनुसार ६ जुलाई, २०२२ को आभासी माध्यम से 'तन्मे मनः शिवसंकल्पुमस्तु' विषय पर व्याख्यान का आयोजन किया गया। जिसमें मुख्यवक्ता डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय, आचार्य, संस्कृत महाविद्यालय ढोहगी, ऊना रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने की। डॉ. पाण्डेय ने अपने वक्तव्य में कहा कि ऋषि शब्द सुनते ही भारतीयता की सुगन्ध आने लगती है। ऐसा लगता है जैसे किसी ने हमारी सम्पूर्ण सांस्कृतिक विरासत को हमारे समक्ष खड़ा कर दिया है। ऋषि भारतीयता के प्राण तत्त्व हैं। ऋषि का नाम आते ही ऐसा लगता है जैसे गंगा में स्नान के बाद रोम-रोम पवित्र हो गया हो। ऋषि नाम से मन की मलिनता धुल जाती है। ऋषि शब्द के श्रवण मात्र से द्वेष और दुर्विचार दूर हो जाते हैं, आत्मा में शुचिता और पवित्रता प्रविष्ट हो जाती है। भारतीय चिन्तन परम्परा के प्रवर्तक की दृष्टि से हम कहें तो सांसारिक जगत तो प्रेरक मात्र है पारमार्थिक दृष्टि से ऋषि ही सांसारिकता का उद्वाहक है। डॉ. पाण्डेय ने बताया कि अपनी इस महती परम्परा को गुरुकुलों में जीवित रखने के लिए अनेक अनुशासन के नियम बनाए गए ताकि अध्ययन पश्चात् गृहस्थ धर्म में भी इस परम्परा को जीवंत रखा जा सके। ऋषियों की ही तपस्या का प्रभाव था कि आश्रमों में सिंह और शावक साथ रहते थे। आधुनिक काल में भारत भूमि पर जन्म लेने वाले अनेक महापुरुष भी इसी ऋषि परम्परा के संवाहक रहे हैं। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए डॉ. चेतराम गर्ग ने कहा कि ऋषि चिन्तन भारतीय का मूल चिन्तन है जिसकी समझ

के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हम सप्त ऋषियों की सन्ताने है इसलिए अपने मूल को समझने के लिए हमे ऋषि चिन्तन को समझना अति आवश्यक है।

त्रिदिवसीय जलरंग चित्रकला कार्यशाला

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी, त्रिगर्त अभ्युदय परिषद, भाषा एवं संस्कृति विभाग जिला हमीरपुर, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, संस्कार भारती हिमाचल व पंजाब प्रांत द्वारा शोध संस्थान नेरी में कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार २२ से २४ जुलाई, २०२२ तक त्रिदिवसीय जलरंग चित्रकला कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला के शुभारम्भ अवसर पर डॉ. चेतराम गर्ग निदेशक, इतिहास शोध संस्थान नेरी ने कहा कि चित्रकला के विभिन्न माध्यमों से मानव ने अपनी मनोवृति को बड़े सुन्दर ढंग से प्राचीनकाल से व्यक्त किया है। कला व मनुष्य का सम्बन्ध अति घनिष्ठ रहा है। कला, धर्म, विज्ञान व संस्कृति एक साथ आगे बढ़े हैं। उन्होंने इस मौके पर निवोदित कलाकारों को बधाई देते हुए आवाह्न किया कि वे अपनी चित्रकला के माध्यम से इतिहास, संस्कृति व समाज को अपने रंगों के माध्यम से जनमानस तक पहुंचाने का प्रयास करें। इस मौके पर कार्यशाला संयोजक विख्यात चित्रकार डॉ. विश्वेश्वरी तिवारी आचार्य लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय जालन्धर में कहा कि इस कार्यशाला का उद्देश्य गांव में उभरते कलाकारों को मंच देना है। उन्होंने बताया कि प्रशिक्षु चयनित स्थलों पर गए व अपने रंगों के माध्यम से ग्रामीण परिवेश व गांव में स्थापित ऐतिहासिक स्थलों का चित्रण भी किया। त्रिदिवसीय जलरंग चित्रकला कार्यशाला के दूसरे दिन चित्रकारों ने ऐतिहासिक शिव मंदिर जसकोट में स्पॉट पेंटिग की। निवोदित कलाकारों द्वारा इस स्थान की ऐतिहासिकता को अपने ब्रश के माध्यम से कागज़ पर चित्रित किया। इस मौके पर कार्यशाला संयोजक विख्यात चित्रकार डॉ. विश्वेश्वरी तिवारी आचार्य लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय जालन्धर, अन्तर्राष्ट्रीय चित्रकार अमित कपूर दिल्ली व जसवीर राम पंजाब ने नवोदित चित्रकारों का मार्गदर्शन किया। कार्यशाला में सुप्रसिद्ध चित्रकार सुरेश चौधरी कांगड़ा, रेशम चित्रकार होशियारपुर, भूपेन्द्र दूती दिल्ली, जगजीत सिंह चण्डीगढ़ ने भी प्रशिक्षुओं मार्गदर्शन किया।

जलरंग कार्यशाला का शुभारम्भ करते हुए शोध संस्थान नेरी के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग

ISSN 2250-2769

त्रिदिवसीय जलरंग कार्यशाला के समापन समारोह के अवसर पर मुख्यातिथि डॉ. देवदत्त शर्मा, उप-कुलपति, सरदार पटेल विश्वविद्यालय मण्डी ने अपने सम्बोधन में कहा कि चित्रकार ग्रामीण क्षेत्र के इतिहास व संस्कृति को प्रदर्शित करता है और निश्चित तौर पर कला के द्वारा उस इतिहास को वर्षों तक अपनी कला के द्वारा जीवित रखता है। उन्होंने कहा कि कला हृदय को समय-समय पर बदलती रहती है और एक कलाकार अपनी कल्पना के साथ समाज की समस्या को भी समय-समय पर उजागर करता रहता है। उन्होंने कहा कि कला को अगर देखा जाए तो समय की स्थिति के साथ बदलती रहती है जैसे एक पालकी में बैठी दुल्हन सामाजिक व्यवस्था को प्रदर्शित करती है वहीं दूसरी तरफ एक झरोखे में बैठी रानी अपनी यादों की कल्पनाओं को बिखेरती है। इन सभी चीजों को लेकर कलाकार समय-समय पर अपनी कला का रूप प्रदर्शित करता रहता है। डॉ. देवदत ने कहा कि कलाकार अपनी कला के माध्यम से समाज के सारे व्याख्यान को प्रस्तुत कर देता है चाहे सुबह की भोर हो या शाम का ढलता समय हो। उन्होंने एक उदाहरण देते हुए बताया कि एक बार चित्रकार खेल के मैदान में चित्रकारी कर रहा था तो एक आदमी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो तो उसने कहा कि मैदान में उगी घास का चित्र बना रहा हूं जिसे घोड़े चर रहे हैं। तब आदमी ने कहा कि यहां पर न तो घास है न तो घोड़े हैं, तो चित्रकार ने कहा कि घास घोड़े ने खा ली है और धूल इतनी उड़ रही है कि घोड़े दिखाई नहीं दे रहे हैं। इससे पूर्व हमीरपुर के उप-मण्डलाधिकारी मनीश सोनी ने कहा कि जो चित्रकार प्रशिक्षुओं ने चित्रकला प्रस्तुत की है वह बहुत ही सराहनीय है। उन्होंने कहा कि वाटर कलर के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के छायाचित्र प्रस्तुत किए है वो बड़े सराहनीय है और इन्हें निरन्तर रूप से आगे बढ़ाना चाहिए। उन्होंने कहा कि संस्थान को इस क्षेत्र में कार्यशाला समय-समय पर करनी चाहिए ताकि कला प्रशिक्षुओं को बढ़ावा मिल सके। कार्यशाला संयोजक डॉ. विश्वेश्वरी तिवारी द्वारा त्रिदिवसीय कार्यशाला का प्रतिवेदन प्रस्तुत रखा। समापन कार्यक्रम में जिला भाषा अधिकारी हमीरपुर निकू राम, संस्कार भारती के प्रान्त महामंत्री आचार्य विजय, संस्थान के निदेशक नरेन्द्र कुमार नन्दा विशेष रूप से उपस्थित रहे। इस मौके पर कार्यशाला संयोजक विख्यात चित्रकार डॉ. विश्वेश्वरी तिवारी आचार्य लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय जालन्धर, अन्तर्राष्ट्रीय चित्रकार अमित

जलरंग कार्यशाला के समापन अवसर पर प्रशिक्षुओं को सम्बोधित करतेहुए सरदार पटेल विश्वविद्यालय मण्डी के कुलपति डॉ. देवदत शर्मा

कपूर दिल्ली व जसवीर राम पंजाब, सुप्रसिद्ध चित्रकार सुरेश चौधरी कांगड़ा, रेशम चित्रकार होशियारपुर, भूपेन्द्र दूती दिल्ली, जगजीत सिंह चण्डीगढ़, डॉ. राकेश कुमार शर्मा, जगवीर चंदेल, रमेश रांगड़ा, वीरेन्द्र शर्मा सहित प्रशिक्षु जसमीन कौर, स्वास्तिका शर्मा, सुजाता, आंचल, तरूणदीप कौर, सिमरन, दिपेन्द्र, अनीषा, विशाल सिंह, कमलजीत, अभय सिंह व आदित्य उपस्थित रहे। मुख्यातिथि एवं अन्य गणमान्यों ने कार्यशाला के दौरान प्रशिक्षुओं द्वारा बनाए गए चित्रों की प्रदर्शनी का अवलोकन भी किया।

स्मारिका (वार्षिक प्रतिवेदन) २०२१-२२ का विमोचन

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान के वार्षिक प्रतिवेदन (स्मारिका) २०२१-२२ का विमोचन कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार २६ जुलाई, २०२२ को माननीय मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश श्री जयराम ठाकुर द्वारा किया गया। स्मारिका में शोध संस्थान नेरी की ओर से वर्ष भर किए गए नियमित कार्यक्रम, ठाकुर रामसिंह एवं शोध छात्र परिषद व्याख्यानमाला के अन्तर्गत करवाए गए

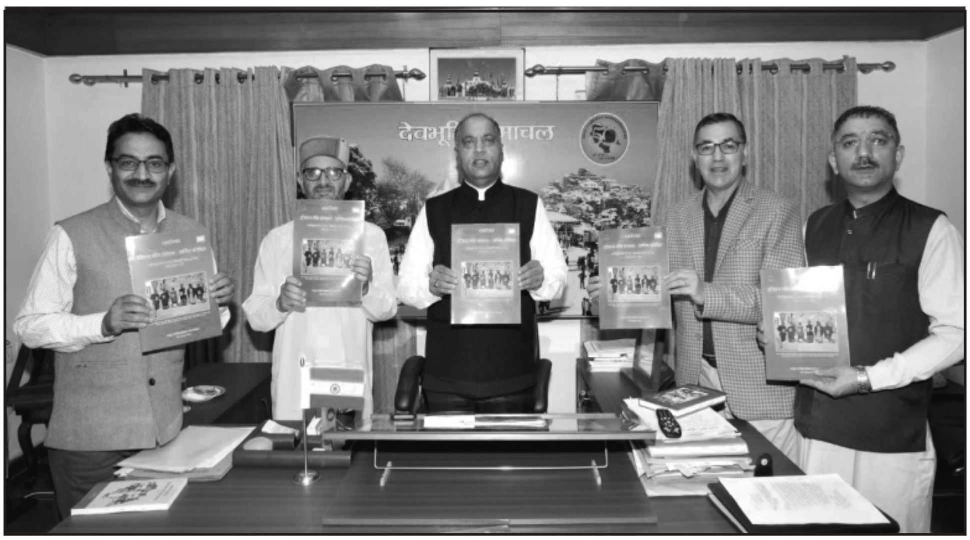

स्मारिका का विमोचन करते हि.प्र. के माननीय मुख्यमंत्री श्रीमान जयराम ठाकुर (बाएं) डॉ. चेतराम गर्ग, डॉ. भाग चन्द चौहान (दाएं) आचार्य ओम प्रकाश शर्मा व शिशुभाई धर्मा

व्याख्यान, पुस्तक प्रकाशन एवं राष्ट्रीय परिसंवाद, मासिक गोष्ठियों सहित सभी प्रकार के कार्यक्रमों की जानकारी विस्तृत रूप से प्रकाशित की गई है। इस दौरान शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने स्वयं सम्पादित पुस्तक 'पावन पत्रचार' एवं वैचारिक पक्ष सह प्रमुख डॉ. भाग चंद चौहान ने 'हिमाचल प्रदेश के नेपथ्य नायक' पुस्तक माननीय मुख्यमंत्री को भेंट की। इस मौके पर मुख्यमंत्री जयराम ठाकुर के विशेष कार्य अधिकारी श्री शिशुभाई धर्मा भी उपस्थित रहे।

हमीरपुर महाविद्यालय में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

'स्वतंत्रता संग्राम में नेताजी सुभाष चंद्र बोस की भूमिका का पुनरावलोकन' विषय पर

ISSN 2250-2769

कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार ६ व १० अगस्त, २०२२ को ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी व कोलकाता के मौलाना अबुल कलाम एशियाई अध्ययन संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में हमीरपुर महाविद्यालय में राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में प्रदेश सरकार में शिक्षा मंत्री श्री गोविंद सिंह ठाकुर मुख्यातिथि उपस्थित रहे। श्री गोविंद ठाकुर ने कहा कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस सरीखे राष्ट्रभक्त विरले ही होते हैं जो अपना सर्वस्व स्वतंत्रता आंदोलन में न्योछावर कर देते हैं। उन्होंने कहा कि देश की प्रथम स्वतंत्र सरकार के प्रधानमंत्री ने रक्षा मंत्री होने का गौरव सुभाष चंद्र बोस को प्राप्त है। उन्होंने आगे कहा कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस के नारे तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा ने भारतीयों की रगों में जोश भर दिया था। राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्देश्य आभाषीय माध्यम से प्रो. सुनील कुमार घोष चैयरमैन मौलाना अबुल कलाम इंस्टीच्यूट ऑफ एशियन स्टडीज, कोलकाता ने प्रस्तुत किया। कार्यक्रम अध्यक्ष विधायक नरेंद्र ठाकुर ने कहा कि ४८ साल की अल्पावधि में नेताजी ने दुनिया के सामने मिसाल पेश की। भारत की स्वतंत्रता पश्चात् नेताजी जिस सम्मान के हकदार थे वो उन्हें नहीं मिला। किन्तु केंद्र में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सरकार आने के बाद उनके बलिदान को सही सम्मान मिला है। ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने बतौर वक्ता अपने संबोधन में कहा कि सुभाष चंद्र बोस ने आईसीएस (**ICS**) सेवा का त्याग कर अपना सर्वस्व स्वतंत्रता संग्राम में झौंक दिया। महाविद्यालय की प्राचार्य डॉ. अंजू बत्ता सहगल ने संगोष्ठी का वृत्त रखा और शिक्षा मंत्री गोविंद सिंह ठाकुर विधायक नरेंद्र ठाकुर व शोध संस्थान निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग को महाविद्यालय परिवार की ओर से सम्मानित किया।

राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन अवसर पर हिमाचल प्रदेश सरकार में ग्रामीण विकास पशुपालन व मत्स्य पालन मंत्री श्री वीरेंद्र कंवर ने बतौर मुख्यातिथि उपस्थिति दर्ज करवाई। उन्होंने कहा कि समाज

राष्ट्रीय परिसंवाद की स्मारिका का विमोचन करते हुए (बाएं से दाएं)डॉ. राकेश कुमार शर्मा, डॉ. चेतराम गर्ग, डॉ. अंजू बत्ता सहगल, माननीय शिक्षा मंत्री श्री गोविन्द सिंह ठाकुर, विधायक नरेन्द्र ठाकुर, डॉ. मधुरस्वर मिश्रा, संजय कुमार

ISSN 2250-2769

वही जीवित रहता है जो अपने इतिहास से सबक लेता है। जनता के समक्ष सही इतिहास को रखना सरकारों की जिम्मेदारी है। निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग ने बतौर विशिष्ट अतिथि अपने संबोधन में कहा कि सुभाष चंद्र बोस का पूरा जीवन संघर्ष में रहा लेकिन उन्होंने कभी भी अपने स्वतंत्रता के संकल्प को नहीं त्यागा। आयोजन सचिव प्रो. सौरव सूद ने संगोष्ठी का वृत्त रखते हुए बताया कि राष्ट्रीय संगोष्ठी में हिमाचल प्रदेश के अलावा जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि से प्रतिभागियों ने भाग लिया। जिसमें ६ तकनीकी सत्रों में ६० शोध पत्र पढ़े गए।

ठाकुर रामसिंह पुण्यतिथि कार्यक्रम

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी में श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह की १२वीं पुण्यतिथि पर कलियुगाब्द ५१२४, विक्रमी संवत् २०७६ तदनुसार २५ अगस्त, २०२२ को हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। ठाकुर रामसिंह भारतीय इतिहास की दृष्टि के प्रखर वक्ता थे। उन्होंने भारतीय कालगणना को वैज्ञानिक माना और नेरी में शोध संस्थान को इतिहास की दिशा देने वाले केंद्र के रूप में स्थापित किया। ठाकुर जी की पुण्यतिथि पर उपस्थित शोध संस्थान से जुड़े गणमान्य लोगों ने हवन यज्ञ में भाग लिया और श्रद्धासुमन अर्पित किए। इस दौरान प्रसिद्ध कवि एम.आर. वैरागी ने ठाकुर रामसिंह के जीवन एवं कृतित्व पर आधारित कविता पढ़ी। प्रोफेसर सोहनु राम ने ठाकुर रामसिंह के व्यक्तित्व से जुड़े अपने अनुभव सांझा किए। जिला भाषा अधिकारी निक्कू राम ने भी ठाकुर रामसिंह के जीवन पर अपने विचार सांझा किए। शोध संस्थान के महासचिव भूमिदत्त शर्मा ने कहा कि ठाकुर रामसिंह ने अपने जीवन के लगभग ७४ वर्ष समाज कार्य के लिए दिए एवं अपने सारे अनुभव को शोध संस्थान की स्थापना का आधार बनाया जो आज हम जैसे अनेकों कार्यकर्त्ताओं को समाज कार्य करने की सतत् प्रेरणा दे रहा है। शोध संस्थान के निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग सहित उपस्थित सभी लोगों ने ठाकुर रामसिंह के श्रीचरणों में पुष्प अर्पित किए।

ठाकुर रामसिंह जी की पुण्यतिथि पर आयोजित हवन-यज्ञ में आहुति डालते हुए

समझौता ज्ञापन

ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी व सरदार पटेल विश्वविद्यालय मंडी के मध्य शिक्षक दिवस के उपलक्ष्य पर एक समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित किया गया। मंडी विश्वविद्यालय के कुलपति

ISSN 2250-2769

प्रोफेसर डॉ. देवदत्त शर्मा एवं प्रोफेसर दीपक पठानिया अधिष्ठाता अकादमिक मामले, प्रोफेसर राजेश शर्मा अधिष्ठाता महाविद्यालय विकास परिषद द्वारा विश्वविद्यालय की ओर से समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए जबकि ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी से महासचिव भूमिदत्त शर्मा शोध संस्थान निदेशक डॉ. चेतराम गर्ग व डॉ. राकेश कुमार शर्मा संपादक इतिहास दिवाकर द्वारा हस्ताक्षर किए गए। दोनों संस्थानों के मध्य व्यवहारिक शैक्षणिक पाठ्यक्रम, परिसंवादों, लघु प्रशिक्षण कार्यक्रमों, संगोष्ठियों के सन्दर्भ में परस्पर सहयोग व दोनों संस्थाओं में शोध कार्य हेतु विद्यार्थियों व विषय विशेषज्ञों के आदान-प्रदान पर सहमति जताई गई। इस मौके पर सरदार पटेल विश्वविद्यालय मंडी के कुलपति प्रो. देवदत्त शर्मा ने हर्ष व्यक्त करते हुए कहा इस समझौता ज्ञापन का लाभ न केवल हमारे संस्थान के बच्चों व शोधार्थियों को होगा अपितु दोनों संस्थाएं आने वाले समय में प्रदेश के इतिहास, कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में साथ मिलकर कार्य करेंगी। जिससे निश्चित तौर पर समाज लाभान्वित होगा।

समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित (बाएं से दाएं) प्रो. राजेश शर्मा, कुलपति प्रो. देवदत्त शर्मा, डॉ. चेतराम गर्ग, भूमिदत्त शर्मा, दीपक पठानिया व डॉ. राकेश कुमार शर्मा

प्रचार प्रमुख
शोध संस्थान नेरी,
हमीरपुर (हि.प्र.)

ISSN 2250-2769

सम्पादक के नाम पत्र

आदरणीय संपादक महोदय

इतिहास दिवाकर अनुसंधान पत्रिका हर बार की तरह इस बार भी बहुत से गहन विषयों को पाठकों के समक्ष रखा है। मैं शुरुआत करुंगा उद्‌बोधन में छपे दो लेखों से जिसमें कि प्रथम लेख श्री राजेंद्र विश्वनाथ आर्लेकर माननीय राज्यपाल हिमाचल प्रदेश का है वही दूसरा लेख प्रोफेसर कुलदीप चंद अग्निहोत्री जी का है दोनों ही विद्वानों के द्वारा इतिहास विषय के बहुत से ऐसे अनछुए पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है जो सही मायनों में पाठकों को एक नई दिशा और दशा प्रदान करते हैं। चिंतन के नए द्वार खुले हैं। विद्वानों का स्पष्ट कथन है कि इतिहास केवल विषय नहीं है सही मायनों में इतिहास हमारी पहचान है हमारा मूल है। जिस पर हमें गर्व होना चाहिए। यह हमारी जिम्मेदारी होनी चाहिए कि इसके सही मायनों को उजागर किया जाए। अन्य विषयों में भारतीय सशस्त्र सैनिकों का स्वतंत्रता में योगदान, जलियांवाला बाग नरसंहार, स्वराज संघर्ष में झांसी जिले का योगदान, क्रांति का गुमनाम सिपाही : पंडित जयराम 'पेंटर' बेगार प्रथा के उन्मूलन : कुन्दामल जैसे अन्य सभी विषय भी ज्ञानवर्धक विषय है। गांव के इतिहास में इस बार गौना गांव का इतिहास एवं संस्कृति विषय बहुत ही रोचक है। शोध संस्थान में वर्ष भर चलने वाली गतिविधियों का क्रमशः विवरण पत्रिका को संपूर्ण बनाता है। मेरा निवेदन रहेगा कि इतिहास विषय पर विद्वानों के लेख निरंतर प्रकाशित किए जाते रहें ताकि इतिहास के सही मायनों को समझा जा सके।

पवन कुमार
शोधार्थी इतिहास विभाग
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला

आदरणीय संपादक महोदय

इतिहास दिवाकर का हर अंक पाठकों के लिए नए रोचक विषयों को लेकर आता है ऐसे विषय जिन्हें पढ़कर पाठकों के मन मस्तिष्क में नए विचारों का सृजन होता है मैं विशेषकर गांव के इतिहास विषय को लेकर यह बात कहूंगा की शोध संस्थान द्वारा चलाई जा रही यह नई पहल स्वागत योग्य है और यह कार्य इसी तरह से आगे बढ़ता रहे ऐसी मैं आशा करता हूं। क्योंकि भारत का मूल अगर कहीं बसता है तो वह हमारे गांव ही है। भारत की पहचान ही हमारे गांव से ही है। इसी कड़ी में इस बार गौना गांव का इतिहास और संस्कृति के बारे में जानने का मौका मिला। इसके साथ साथ उद्‌बोधन में छपे दोनों लेख इतिहास को समझने वह जानने के लिए बहुत ही ज्ञानवर्धक विषय है। इतिहास को जानने से हमारा अभिप्राय है अपनी पहचान को जानना अपने मूल को जानना इन दोनों विषयों का मूल विचार भी यही है। बाकी प्रकाशित आलेख सभी विषय भी अति महत्वपूर्ण है। शोध संस्थान की गतिविधियां संस्थान की प्रगति को दर्शाती है। लगातार नए-नए आयामों को लेकर शोध संस्थान निरंतर आगे बढ़ता जा रहा है। उसी यात्रा में इतिहास दिवाकर का भी अपना अहम स्थान है।

लकेश चौहान
शोधार्थी इतिहास विभाग
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विषयों से सम्बंधित विवरण

फार्म -४ (नियम ८ देखिए)

१.प्रकाशन स्थल	:	ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर
२.प्रकाशन तिथि	:	अप्रैल, जुलाई, अक्तूबर, जनवरी माह का प्रथम सप्ताह
३. मुद्रक का नाम	:	प्यार चन्द परमार
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान गांव व डाकघर नेरी, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
४.प्रकाशक का नाम	:	प्यार चन्द परमार
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान गांव व डाकघर नेरी, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
५.सम्पादक का नाम	:	डॉ. राकेश कुमार शर्मा
क्या भारतीय नागरिक है?	:	हां
पता	:	ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान गांव व डाकघर नेरी, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।
६.उन व्यक्तियों के नाम व पत्ते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के सांझेदार या हिस्सेदार हों।	:	ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान गांव व डाकघर नेरी, जिला हमीरपुर-१७७००१ हिमाचल प्रदेश।

मैं प्यार चन्द परमार प्रकाशक एवं मुद्रक इतिहास दिवाकर एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य है।

हस्ता/-
प्यार चन्द परमार,
प्रकाशक
दिनांक ३१ मार्च, २०२२

इतिहास दिवाकर में शोध पत्र लेखन के लिए दिशा-निर्देश

- इतिहास शोध संस्थान से प्रकाशित 'इतिहास दिवाकर' अनुसंधान शोध पत्रिका है।
- शोध लेखों के प्रकाशन हेतु कोई शुल्क नहीं लिया जाता है।
- शोध लेख नवीन, तथ्यात्मक, मौलिक, अप्रकाशित एवं समुचित विस्तार का होना चाहिए।
- लेखक का नाम शोध लेख के प्रथम पृष्ठ व पता अन्तिम पृष्ठ पर होना चाहिए।
- शोध-निबन्ध/आलेख की शब्द सीमा 3000-5000 के बीच होनी चाहिए तथा लेख में शोध सारांश (200 शब्द) एवं संकेत शब्द 5-7 शब्द का होना अनिवार्य है।
- प्रस्तावित लेख की मूल प्रति हिन्दी फॉन्ट Krutidev 10, साइज 12 एवं अंग्रेजी फॉन्ट Times New Roman साइज 12 में होना चाहिए।
- शोधपत्र को ई-मेल itihasdivakar@gmail.com अथवा पंजीकृत डाक द्वारा संपादक, इतिहास दिवाकर पत्रिका, ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान, गांव व डाकघर नेरी, तह. व जिला हमीरपुर (हि.प्र.) - 177001 पर भेजें।
- विषय विशेषज्ञों द्वारा स्वीकृत होने पर ही शोध निबन्ध 'इतिहास दिवाकर' में प्रकाशित किए जाएंगे। अस्वीकृत निबन्धों को लौटाने का उत्तरदायित्व इतिहास शोध संस्थान नेरी का नहीं होगा।
- विशेषज्ञों के सुझाव पर शोधार्थी को अपने शोध-निबन्ध में संशोधन करना भी अनिवार्य है।
- शोध संस्थान में प्रकाशन के विषय में विशेषज्ञ समिति का निर्णय अन्तिम माना जाएगा।
- पाद-टिप्पणी शोध पत्र के अन्त में निम्नांकित शैली में अंकित किया जाना अनिवार्य है : 'लेखक का नाम, पुस्तक का नाम, प्रकाशक, स्थान, वर्ष एवं पृष्ठ सं.।'

  प्रतिरूप - **पुस्तक :** मीयां गोवर्धन सिंह, हिमाचल का इतिहास, हिमाचल कला भाषा संस्कृति अकादमी, शिमला, २०१६, पृ. २१५

  शोध पत्रिका : डॉ. महेश कुमार शरण, पुरुषार्थ चतुष्ट्य, इतिहास, अंक-६, भाग-१, जनवरी-जून २०२०, पृ. 153-153

  समाचार पत्र : दैनिक जागरण, 10 जून, 1980, पृ. 10

  साक्षात्कार : राम कुमार सुपुत्र राजेश कुमार, गांव व डाकघर नेरी, तह. व जिला हमीरपुर, आयु ६० वर्ष, दिनांक १० दिसम्बर, २०२०

विस्तृत जानकारी के लिए देखें : www.ssneri.com

सम्पादक : डॉ. राकेश कुमार शर्मा

ISSN 2250-2769

इतिहास दिवाकर

पीयर रिव्यूड मूल्यांकित अनुसंधान पत्रिका

सदस्यता - प्रपत्र

व्यक्तिगत/संस्थागत

1. नाम : ....

2. पता : ....

....

....पिनकोड.....................................

3. ई-मेल :..

4. दूरभाष :...

5. व्यवसाय :...

6. कार्यस्थली पता :..

7. विशेषता :..

8. सदस्यता शुल्क (√) : प्रति अंक : रुपये 50/-

: आजीवन : रुपये 2000/- (पन्द्रह वर्ष)

: संस्थागत : रुपये 5000/- (पन्द्रह वर्ष)

9. सदस्यता शुल्क विवरण ....बैंक ड्रॉफ्ट/चेक नं....................

दिनांक.......................... बैंक का नाम .... शाखा ....

10. ऑनलाइन सदस्यता हेतु बैंक विवरण

खाता संख्या : 88510100013661

आई.एफ.एस.सी. : PUNB0HPGB04

हिमाचल ग्रामीण बैंक, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश

निर्धारित सदस्यता शुल्क का डी.डी./मनीऑर्डर ''इतिहास दिवाकर'' के नाम से देय है। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें - इतिहास दिवाकर, ठाकुर रामसिंह इतिहास शोध संस्थान नेरी, तह. व जिला हमीरपुर - 177001 (हिमाचल प्रदेश)

दूरभाष : 01972-262905, 94184-85415, 94181-07730,

ई-मेल : **itihasdivakar@gmail.com, itihasdivakar@yahoo.com**

आवेदनकर्ता के हस्ताक्षर..........................